☐ सम्पादकमण्डल

अनुयोगप्रवर्त्तक मुनि श्रीकन्हैयालालजी 'कमल'
श्रीदेवेन्द्र मुनि शास्त्री
श्रीरतन मुनि
पण्डित श्रीशोभाचन्द्रजी भारिल्ल

☐ प्रबन्धसम्पादक

श्रीचन्द सुराणा 'सरस'

☐ सम्प्रेरक

मुनि श्रीविनयकुमार 'भीम'
श्रीमहेन्द्रमुनि 'दिनकर'

☐ प्रकाशनतिथि

वीरनिर्वाणसवत् २५०८
विक्रम स. २०३९,
ई. सन् १९८२

☐ प्रकाशक

श्री आगमप्रकाशनसमिति
जैनस्थानक, पीपलिया बाजार, ब्यावर (राजस्थान)
ब्यावर—३०५९०१

☐ मुद्रक

सतीशचन्द्र शुक्ल
वैदिक यन्त्रालय, केसरगज, अजमेर—३०५००१

☐ मूल्य . [illegible]

[illegible] परिवर्धित मूल्य

Published at the Holy Remembrance occasion
of
Rev. Guru Sri Joravarmalji Maharaj

Fifth Ganadhara Sudharma Swami Compiled
Eleventh Anga

VIVĀGA-SUYAMA

[Original Text, Hindi Version, Notes, Annotations and Appendices etc]

Proximity
Up-pravartaka Rev Swami Sri Brijlalji Maharaj

Convener & Chief Editor
Yuvacharya Sri Mishrimalji Maharaj 'Madhukar'

Translator
Pt Roshanlal Jain

Editor
Shobhachandra Bharill

Publishers
Sri Agam Prakashan Samiti
Beawar (Raj)

Board of Editors
Anuyoga-pravartaka Munisri Kanhaiyalalji 'Kamal'
Sri Devendra Muni Shastri
Sri Ratan Muni
Pt Shobhachandra Bharill

Managing Editor
Srichand Surana 'Saras'

Promotor
Munisri Vinayakumar 'Bhima'
Sri Mahendramuni 'Dinakar'

Date of Publication
Vir-nirvana Samvat 2508
Vikram Samvat 2039, June 1982

Publishers
Sri Agam Prakashan Samiti
Jain Sthanak, Pipaliya Bazar, Beawar (Raj.)
Pin 305901

Printer
Satishchandra Shukla
Vedic Yantralaya
Kesarganj, Ajmer—305001

Price [illegible]

संशोधित परिवर्धित मूल्य

समर्पण

जिन्होंने जिनशासन के उद्योत मे अनुपम योगदान दिया, लगातार साठ वर्षों तक संयम-जीवन यापन किया, राजस्थान, गुजरात, कच्छ, काठियावाड, मालवा, मेवाड, उत्तरप्रदेश, दिल्ली और जम्मू जैसे सुदूरवर्ती प्रदेशो मे परिभ्रमण करके और भीषण व्यथाएँ समभावपूर्वक सहन करके भी धर्म की अपूर्व ज्योति प्रज्वलित की,

जो ज्ञान और चारित्र की समन्वित मूर्त्ति थे, जिनकी मधुर एवं प्रभावपूर्व वाणी मे अद्भुत ओज और तेज था, उन महान् मनीषी **आचार्यप्रवर श्रीरघुनाथजी महाराज** को स्मृति मे सविनय सादर समर्पित।

—मधुकर मुनि

प्रकाशकीय

विपाकसूत्र पाठकों के कर-कमलों में समर्पित करते हुए अतीव सन्तोष एवं प्रमोद का अनुभव हो रहा है। जिस त्वरामय गति से आगम-प्रकाशन का कार्य सम्पन्न हो रहा है, वह यदि शासनदेव के अनुग्रह से, बिना किसी विघ्न-बाधा के चालू रहा तो समिति अल्प काल में ही सम्पूर्ण बत्तीसी आगम-प्रेमी धर्मनिष्ठ सज्जनों के हाथों में पहुंचा देगी।

सूत्रकृतांग प्रथम श्रुतस्कन्ध, द्वितीय श्रुतस्कन्ध, स्थानांग, समवायांग और प्रस्तुत विपाकश्रुत स्वल्प काल के अन्तर से मुद्रित हो चुके हैं। हर्ष का विषय है कि विशालकाय श्रीव्याख्याप्रज्ञप्ति (भगवती) सूत्र का मुद्रण चालू हो चुका है। आशा है इसका प्रथम भाग शीघ्र पाठकों तक पहुंच सकेगा।

नन्दीसूत्र का मुद्रण पूर्ण हो चुका है। उसके आरंभ का प्रस्तावना आदि का तथा अन्तिम भाग परिशिष्ट का मुद्रण भी होने ही वाला है। वह भी जल्दी ही तैयार हो जाएगा।

औपपातिक सूत्र का मुद्रण भी चल रहा है। राजप्रश्नीयसूत्र और प्रश्नव्याकरणसूत्र संशोधनाधीन हैं। इसी प्रकार आगे का क्रम भी चालू रह सके, ऐसी व्यवस्था की जा रही है।

विपाकसूत्र का अनुवाद जैन समाज के प्रौढ विद्वान् पं. रोशनलालजी जैन ने किया है। किन्तु अपने अस्वास्थ्य के कारण उन्होंने उसे अन्तिम रूप देने में अपनी असमर्थता प्रकट की। अतएव ग्रन्थमाला के सम्पादक सं. श्री शोभाचन्द्रजी भारिल्ल ने शेष कार्य सम्पन्न किया है।

विपाकसूत्र का कर्मसिद्धान्त के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध होने के कारण विश्रुत विद्वान् एवं समर्थ लेखक श्रद्धेय श्री देवेन्द्रमुनिजी म. शास्त्री ने इसकी प्रस्तावना में कर्मसिद्धान्त का विशद विवेचन प्रस्तुत किया है। आशा है स्वाध्यायशील पाठक उससे लाभान्वित होंगे।

प्रस्तुत आगम के प्रकाशन में उदारहृदय श्रीमान् बादलचंदजी सा. चोरडिया का महत्त्वपूर्ण सहकार प्राप्त हुआ। समिति उनके लिए अतीव आभारी है।

श्रमणसंघ के युवाचार्य आगम-निष्णात पण्डितप्रवर मुनि श्री मधुकरजी म. सा. आगमों के मुद्रित होने से पूर्व निरीक्षण परीक्षण करने में अपना जो बहुमूल्य समय दे रहे हैं, हमारा पथप्रदर्शन कर रहे हैं, उनके लिए हार्दिक आभार प्रकट करने के लिए हमारे पास उपयुक्त शब्द नहीं हैं।

उदारचेता आगमप्रेमी अर्थ सहायकों के सहयोग से ही यह पावन अनुष्ठान अग्रसर हो रहा है। वैदिक यन्त्रालय, अजमेर के प्रबन्धक श्री सतीशचन्द्रजी शुक्ल तथा जिनसे प्रत्यक्ष-परोक्ष सहयोग प्राप्त हो रहा है, उनके भी हम आभारी हैं।

जतनराज महेता	रतनचंद मोदी	चांदमल विनायकिया
महामंत्री	कार्यवाहक अध्यक्ष	मंत्री

श्रीमान् सेठ एस. बादलचन्दजी चोरड़िया, मद्रास

[जीवन-परिचय]

राजस्थान के मारवाड़ प्रदेश में नागौर जिले में एक छोटा सा गांव, नोखा चांदावतों का है। यह धनिकों की वस्ती है। यहीं आपका जन्म वि. संवत् १९७९ भाद्रपद कृष्णा ५ को धर्मनिष्ठ सुश्रावक स्व. श्री सिमरथमलजी सा. चोरड़िया के यहाँ हुआ। आपकी मातुश्री का नाम श्रीमती गट्टूबाई था। वे सरलता, दयालुता, एवं निश्छलता की मूर्ति एवं धर्मपरायणा थीं। उनके सभी गुण आप में विद्यमान हैं।

आपका प्रारंभिक शिक्षण राजस्थान में ही हुआ। उसके बाद आप व्यवसाय हेतु आगरा पधार गये।

आपके अग्रज श्री एस. रतनचन्दजी सा. चोरड़िया सुज्ञ श्रावक हैं। आपके अनुज श्री एस. सायरचन्दजी सा. एवं सबसे छोटे भाई स्व. श्री एस. रिखबचन्दजी सा. चोरड़िया का वर्तमान में व्यवसाय केन्द्र मद्रास ही है। आप सभी भाई यहाँ फाइनेन्स के व्यवसाय में संलग्न हैं। आपकी बड़ी बहन पतासीबाई भी भद्र प्रकृति की महिला हैं।

आप सरलमना, गंभीर एवं धार्मिक प्रकृति के हैं। आपकी ही तरह आपकी धर्मपत्नी श्रीमती सुगनकंवरबाई भी धर्मभावना से अनुप्राणित हैं।

अपने विवेकयुक्त पुरुषार्थ एवं प्रामाणिकता की बदौलत आपने फाइनेन्स के व्यवसाय में अच्छी सफलता प्राप्त की और खूब द्रव्योपार्जन किया, और उससे अनेक सामाजिक एवं धार्मिक संस्थाओं तथा संस्थानों को सहायता प्रदान की है।

आप वर्तमान में अनेक संस्थाओं से सम्बन्धित हैं—

उपाध्यक्ष—श्री वर्द्धमान सेवा समिति, नोखा (राजस्थान)
संरक्षक — श्री जैन मेडीकल रिलीफ सोसायटी
श्री एस. एस. जैन एज्युकेशनल सोसायटी
श्री एस. एस. जैन जनसेवा समिति
श्री अखिल भारतीय भ. महावीर अहिंसा प्रचार संघ
सदस्य — श्री दक्षिण भारत स्वाध्याय संघ, मद्रास

श्री आगम प्रकाशन समिति के भी आप महास्तम्भ सदस्य हैं तथा प्रस्तुत आगम के प्रकाशन में आपने विशिष्ट सहयोग प्रदान किया है।

पारमार्थिक कार्यों के लिये आपने एस. बादलचन्द चोरड़िया ट्रस्ट भी बनाया है। सामाजिक, धार्मिक एवं जनहित के कार्यों में भी आप यथाशक्ति अपने द्रव्य का सदुपयोग करते रहते हैं।

परम्परा से ही आपके परिवार की स्वामीजी श्री हजारीमलजी म. सा के प्रति प्रगाढ श्रद्धा-भक्ति रही है। आपकी पूज्य उपप्रवर्तक स्वामीजी श्री ब्रजलालजी म. सा. एवं बहुश्रुत युवाचार्य पं. र. मुनि श्री मिश्रीमलजी म. सा. 'मधुकर' के प्रति अटूट श्रद्धा है।

आपकी धर्मभावना दिनोंदिन वृद्धिगत हो ऐसी मंगल कामना है। □□

आदि वचन

विश्व के जिन दार्शनिको—दृष्टाओं/चिन्तको, ने "आत्मसत्ता" पर चिन्तन किया है, या आत्म-साक्षात्कार किया है उन्होंने पर-हितार्थ आत्म-विकास के साधनो तथा पद्धतियो पर भी पर्याप्त चिन्तन-मनन किया है। आत्मा तथा तत्सम्बन्धित उनका चिन्तन-प्रवचन आज आगम/पिटक/वेद/उपनिषद् आदि विभिन्न नामो से विश्रुत है।

जैन दर्शन की यह धारणा है कि आत्मा के विकारो—राग द्वेष आदि को, साधना के द्वारा दूर किया जा सकता है, और विकार जब पूर्णत निरस्त हो जाते हैं तो आत्मा की शक्तियाँ ज्ञान/सुख/वीर्य आदि सम्पूर्ण रूप मे उद्घाटित-उद्भासित हो जाती है। शक्तियो का सम्पूर्ण प्रकाश-विकास ही सर्वज्ञता है और सर्वज्ञ/आप्त-पुरुष की वाणी, वचन/कथन/प्ररूपणा—"आगम" के नाम से अभिहित होती है। आगम अर्थात् तत्त्वज्ञान, आत्म-ज्ञान तथा आचार-व्यवहार का सम्यक् परिबोध देने वाला शास्त्र/सूत्र/आप्तवचन।

सामान्यत सर्वज्ञ के वचनो/वाणी का सकलन नही किया जाता, वह बिखरे सुमनो की तरह होती है, किन्तु विशिष्ट अतिशयसम्पन्न सर्वज्ञ पुरुष, जो धर्म तीर्थ का प्रवर्तन करते हैं, सघीय जीवन पद्धति मे धर्म-साधना को स्थापित करते है, वे धर्म प्रवर्तक/अरिहत या तीर्थंकर कहलाते हैं। तीर्थंकर देव की जनकल्याणकारिणी वाणी को उन्ही के अतिशयसम्पन्न विद्वान् शिष्य गणधर सकलित कर "आगम" या शास्त्र का रूप देते हैं अर्थात् जिन-वचनरूप सुमनो की मुक्त वृष्टि जब मालारूप मे ग्रथित होती है तो वह "आगम" का रूप धारण करती है। वही आगम अर्थात् जिन-प्रवचन आज हम सब के लिए आत्म-विद्या या मोक्ष-विद्या का मूल स्रोत है।

"आगम" को प्राचीनतम भाषा मे "गणिपिटक" कहा जाता था। अरिहतो के प्रवचनरूप समग्र शास्त्र-द्वादशाग मे समाहित होते हैं और द्वादशाग/आचाराग-सूत्रकृताग आदि के अग-उपाग आदि अनेक भदोपभेद विकसित हुए है। इस द्वादशागी का अध्ययन प्रत्येक मुमुक्षु के लिए आवश्यक और उपादेय माना गया हैं। द्वादशागी मे भी बारहवाँ अग विशाल एव समग्र श्रुतज्ञान का भण्डार माना गया है, उसका अध्ययन बहुत ही विशिष्ट प्रतिभा एवं श्रुतसम्पन्न साधक कर पाते थे। इसलिए सामान्यत एकादशाग का अध्ययन साधको के लिए विहित हुआ तथा इसी ओर सबकी गति/मति रही।

जब लिखने की परम्परा नही थी, लिखने के साधनो का विकास भी अल्पतम था, तब आगमो/शास्त्रो/को स्मृति के आधार पर या गुरु-परम्परा से कठस्थ करके सुरक्षित रखा जाता था। सम्भवत इसलिए आगम ज्ञान को श्रुतज्ञान कहा गया और इसीलिए श्रुति/स्मृति जैसे सार्थक शब्दो का व्यवहार किया गया। भगवान् महावीर के परिनिर्वाण के एक हजार वर्ष बाद तक आगमो का ज्ञान स्मृति/श्रुति परम्परा पर ही आधारित रहा। पश्चात् स्मृतिदौर्बल्य, गुरुपरम्परा का विच्छेद, दुष्काल-प्रभाव आदि अनेक कारणो से धीरे-धीरे आगमज्ञान लुप्त होता चला गया। महासरोवर का जल सूखता-सूखता गोष्पद मात्र रह गया। मुमुक्षु श्रमणो के लिए यह जहाँ चिन्ता का विषय था, वहाँ चिन्तन की तत्परता एव जागरूकता को चुनौती भी थी। वे तत्पर हुए श्रुतज्ञान-निधि के सरक्षण हेतु। तभी महान् श्रुतपारगामी देवर्द्धि गणि क्षमाश्रमण ने विद्वान् श्रमणो का एक सम्मेलन बुलाया और स्मृति-दोष से लुप्त होते आगम ज्ञान को सुरक्षित एव सजोकर रखने का आह्वान किया। सर्व-सम्मति से आगमो को लिपि-बद्ध किया गया।

जिनवाणी को पुस्तकारूढ करने का यह ऐतिहासिक कार्य वस्तुत आज की समग्र ज्ञान-पिपासु प्रजा के लिए एक अवर्णनीय उपकार सिद्ध हुआ। सस्कृति, दर्शन, धर्म तथा आत्म-विज्ञान की प्राचीनतम ज्ञानधारा को प्रवहमान रखने का यह उपक्रम वीरनिर्वाण के ९८० या ९९३ वर्ष पश्चात् प्राचीन नगरी वलभी (सौराष्ट्र) मे आचार्य श्री देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण के नेतृत्व मे सम्पन्न हुआ। वैसे जैन आगमो की यह दूसरी अन्तिम वाचना थी, पर लिपिबद्ध करने का प्रथम प्रयास था। आज प्राप्त जैन सूत्रो का अन्तिम स्वरूप-सस्कार इसी वाचना मे सम्पन्न किया गया था।

पुस्तकारूढ होने के बाद आगमो का स्वरूप मूल रूप मे तो सुरक्षित हो गया, किन्तु काल-दोष, श्रमण-सघो के आन्तरिक मतभेद, स्मृति दुर्बलता, प्रमाद एव भारतभूमि पर बाहरी आक्रमणो के कारण विपुल ज्ञान-भण्डारो का विध्वस आदि अनेकानेक कारणो से आगम ज्ञान की विपुल सम्पत्ति, अर्थबोध की सम्यक् गुरु-परम्परा धीरे-धीरे क्षीण एव विलुप्त होने से नही रुकी। आगमो के अनेक महत्वपूर्ण पद, सन्दर्भ तथा उनके गूढार्थ का ज्ञान, छिन्न-विच्छिन्न होते चले गए। परिपक्व भाषाज्ञान के अभाव मे, जो आगम हाथ से लिखे जाते थे, वे भी शुद्ध पाठ वाले नही होते, उनका सम्यक् अर्थ-ज्ञान देने वाले भी विरले ही मिलते। इस प्रकार अनेक कारणो से आगम की पावन धारा सकुचित होती गयी।

विक्रमीय सोलहवी शताब्दी मे वीर लोकाशाह ने इस दिशा मे क्रान्तिकारी प्रयत्न किया। आगमो के शुद्ध और यथार्थ अर्थज्ञान को निरूपित करने का एक साहसिक उपक्रम पुन चालू हुआ। किन्तु कुछ काल बाद उसमे भी व्यवधान उपस्थित हो गये। साम्प्रदायिक-विद्वेष, सैद्धातिक विग्रह, तथा लिपिकारो का अत्यल्प ज्ञान आगमो की उपलब्धि तथा उसके सम्यक् अर्थबोध मे बहुत बडा विघ्न बन गया। आगम-अभ्यासियो को शुद्ध प्रतिया मिलना भी दुर्लभ हो गया।

उन्नीसवी शताब्दी के प्रथम चरण मे जब आगम-मुद्रण की परम्परा चली तो सुधी पाठको को कुछ सुविधा प्राप्त हुई। धीरे-धीरे विद्वत्-प्रयासो से आगमो की प्राचीन चूर्णियाँ, निर्युक्तियाँ, टीकायें आदि प्रकाश मे आई और उनके आधार पर आगमो का स्पष्ट-सुगम भावबोध सरल भाषा मे प्रकाशित हुआ। इसमे आगम-स्वाध्यायी तथा ज्ञान-पिपासु जनो को सुविधा हुई। फलत आगमो के पठन-पाठन की प्रवृत्ति बढी है। मेरा अनुभव है, आज पहले से कही अधिक आगम-स्वाध्याय की प्रवृत्ति बढी है, जनता मे आगमो के प्रति आकर्षण व रुचि जागृत हो रही है। इस रुचि-जागरण मे अनेक विदेशी आगमज्ञ विद्वानो तथा भारतीय जैनेतर विद्वानो की आगम-श्रुत-सेवा का भी प्रभाव व अनुदान है, इसे हम सगौरव स्वीकारते है।

आगम-सम्पादन-प्रकाशन का यह सिलसिला लगभग एक शताब्दी से व्यवस्थित चल रहा है। इस महनीय-श्रुत-सेवा मे अनेक समर्थ श्रमणो, पुरुषार्थी विद्वानो का योगदान रहा है। उनकी सेवायें नीव की ईंट की तरह आज भले ही अदृश्य हो, पर विस्मरणीय तो कदापि नही, स्पष्ट व पर्याप्त उल्लेखो के अभाव मे हम अधिक विस्तृत रूप मे उनका उल्लेख करने मे असमर्थ हैं, पर विनीत व कृतज्ञ तो हैं ही। फिर भी स्थानकवासी जैन परम्परा के कुछ विशिष्ट-आगम श्रुत-सेवी मुनिवरो का नामोल्लेख अवश्य करना चाहूँगा।

आज से लगभग साठ वर्ष पूर्व पूज्य श्री अमोलकऋषिजी महाराज ने जैन आगमो—३२ सूत्रो का प्राकृत से खडी बोली मे अनुवाद किया था। उन्होने अकेले ही बत्तीस सूत्रो का अनुवाद कार्य सिर्फ ३ वर्ष व १५ दिन मे पूर्ण कर अद्भुत कार्य किया। उनकी दृढ लगनशीलता, साहस एव आगम ज्ञान की गम्भीरता उनके कार्य से ही स्वतः परिलक्षित होती है। वे ३२ ही आगम अल्प समय मे प्रकाशित भी हो गये।

इससे आगमपठन बहुत सुलभ व व्यापक हो गया और स्थानकवासी-तेरापथी समाज तो विशेष उपकृत हुआ।

गुरुदेव श्री जोरावरमल जी महाराज का सकल्प

मैं जव प्रात स्मरणीय गुरुदेव स्वामीजी श्री जोरावरमलजी म० के सान्निध्य मे आगमो का अध्ययन-अनुशीलन करता था तव आगमोदय समिति द्वारा प्रकाशित आचार्य अभयदेव व शीलाक की टीकाओ से युक्त कुछ आगम उपलब्ध थे। उन्ही के आधार पर मैं अध्ययन-वाचन करता था। गुरुदेवश्री ने कई वार अनुभव किया—यद्यपि यह सस्करण काफी श्रमसाध्य व उपयोगी है, अव तक उपलब्ध सस्करणो मे प्राय शुद्ध भी है, फिर भी अनेक स्थल अस्पष्ट हैं, मूलपाठो मे व वृत्ति मे कही-कही अशुद्धता व अन्तर भी है। सामान्य जन के लिये दुरूह तो है ही। चू कि गुरुदेवश्री स्वय आगमो के प्रकाण्ड पण्डित थे, उन्हे आगमो के अनेक गूढार्थ गुरु-गम से प्राप्त थे। उनकी मेधा भी व्युत्पन्न व तर्क-प्रवण थी, अत वे इस कमी को अनुभव करते थे और चाहते थे कि आगमो का शुद्ध, सर्वोपयोगी ऐसा प्रकाशन हो, जिससे सामान्य ज्ञानवाले श्रमण-श्रमणी एव जिज्ञासुजन लाभ उठा सकें। उनके मन की यह तडप कई वार व्यक्त होती थी। पर कुछ परिस्थितियो के कारण उनका यह स्वप्न-सकल्प साकार नही हो सका, फिर भी मेरे मन मे प्रेरणा वनकर अवश्य रह गया।

इसी अन्तराल मे आचार्य श्री जवाहरलाल जी महाराज, श्रमणसघ के प्रथम आचार्य जैनधर्म दिवाकर आचार्य श्री आत्माराम जी म०, विद्वद्रत्न श्री घासीलालजी म० आदि मनीषी मुनिवरो ने आगमो की हिन्दी, सस्कृत, गुजराती आदि मे सुन्दर विस्तृत टीकाये लिखकर या अपने तत्त्वावधान मे लिखवा कर कमी को पूरा करने का महनीय प्रयत्न किया है।

श्वेताम्वर मूर्तिपूजक आम्नाय के विद्वान् श्रमण परमश्रुतसेवी स्व० मुनि श्री पुण्यविजयजी ने आगम सम्पादन की दिशा मे वहुत व्यवस्थित व उच्चकोटि का कार्य प्रारम्भ किया था। विद्वानो ने उसे वहुत ही सराहा। किन्तु उनके स्वर्गवास के पश्चात् उस मे व्यवधान उत्पन्न हो गया। तदपि आगमज्ञ मुनि श्री जम्बूविजयजी आदि के तत्त्वावधान मे आगम-सम्पादन का सुन्दर व उच्चकोटि का कार्य आज भी चल रहा है।

वर्तमान मे तेरापथ सम्प्रदाय मे आचार्य श्री तुलसी एव युवाचार्य महाप्रज्ञजी के नेतृत्व मे आगम-सम्पादन का कार्य चल रहा है और जो आगम प्रकाशित हुए हैं उन्हे देखकर विद्वानो को प्रसन्नता है। यद्यपि उनके पाठ-निर्णय मे काफी मतभेद की गु जाइश है। तथापि उनके श्रम का महत्त्व है। मुनि श्री कन्हैयालाल जी म० "कमल" आगमो की वक्तव्यता को अनुयोगो मे वर्गीकृत करके प्रकाशित कराने की दिशा मे प्रयत्नशील हैं। उनके द्वारा सम्पादित कुछ आगमो मे उनकी कार्यशैली की विशदता एव मौलिकता स्पष्ट होती है।

आगम साहित्य के वयोवृद्ध विद्वान् प० श्री वेचरदासजी दोशी, विश्रुत-मनीषी श्री दलसुखभाई मालवणिया जैसे चिन्तनशील प्रज्ञापुरुष आगमो के आधुनिक सम्पादन की दिशा मे स्वय भी कार्य कर रहे हैं तथा अनेक विद्वानो का मार्ग-दर्शन कर रहे हैं। यह प्रसन्नता का विषय है।

इस सब कार्य-शैली पर विहगम अवलोकन करने के पश्चात् मेरे मन मे एक सकल्प उठा। आज प्राय. सभी विद्वानो की कार्यशैली काफी भिन्नता लिये हुए है। कही आगमो का मूल पाठ मात्र प्रकाशित किया जा रहा है तो कही आगमो की विशाल व्याख्यायें की जा रही हैं। एक पाठक के लिये दुर्वोध है तो दूसरी जटिल। सामान्य पाठक को सरलतापूर्वक आगमज्ञान प्राप्त हो सके, एतदर्थ मध्यम मार्ग का अनुसरण आवश्यक है। आगमो का एक ऐसा सस्करण होना चाहिये जो सरल हो, सुवोध हो, सक्षिप्त और प्रामाणिक हो। मेरे स्वर्गीय गुरुदेव ऐसा ही आगम-सस्करण चाहते थे। इसी भावना को लक्ष्य मे रखकर मैंने ५-६ वर्ष पूर्व इस विषय की चर्चा प्रारम्भ की

थी, सुदीर्घ चिन्तन के पश्चात् वि स २०३६ वैशाख शुक्ला दशमी, भगवान् महावीर कैवल्यदिवस को यह दृढ निश्चय घोषित कर दिया और आगमबत्तीसी का सम्पादन-विवेचन कार्य प्रारम्भ भी। इस साहसिक निर्णय मे गुरुभ्राता शासनसेवी स्वामी श्री व्रजलाल जी म की प्रेरणा/प्रोत्साहन तथा मार्गदर्शन मेरा प्रमुख सम्बल बना है। साथ ही अनेक मुनिवरो तथा सद्गृहस्थो का भक्ति-भाव भरा सहयोग प्राप्त हुआ है, जिनका नामोल्लेख किये बिना मन सन्तुष्ट नही होगा। आगम अनुयोग शैली के सम्पादक मुनि श्री कन्हैयालालजी म० "कमल", प्रसिद्ध साहित्यकार श्री देवेन्द्रमुनिजी म० शास्त्री, आचार्य श्री आत्मारामजी म० के प्रशिष्य भण्डारी श्री पदमचन्दजी म० एव प्रवचन-भूषण श्री अमरमुनिजी, विद्वद्‌रत्न श्री ज्ञानमुनिजी म०, स्व० विदुषी महासती श्री उज्ज्वलकु वरजी म० की सुशिष्याए महासती दिव्यप्रभाजी, एम ए, पी-एच डी, महासती मुक्तिप्रभाजी तथा विदुषी महासती श्री उमरावकु वरजी म० 'अर्चना', विश्रुत विद्वान् श्री दलसुखभाई मालवणिया, सुख्यात विद्वान् प० श्री शोभाचन्द्र जी भारिल्ल, स्व० प० श्री हीरालालजी शास्त्री, डा० छगनलालजी शास्त्री एव श्रीचन्दजी सुराणा "सरस" आदि मनीषियो का सहयोग आगमसम्पादन के इस दुरूह कार्य को सरल बना सका है। इन सभी के प्रति मन आदर व कृतज्ञ भावना से अभिभूत है। इसी के साथ सेवा-सहयोग की दृष्टि से सेवाभावी शिष्य मुनि विनयकुमार एव महेन्द्र मुनि का साहचर्य-सहयोग, महासती श्री कानकु वरजी, महासती श्री झणकारकु वरजी का सेवाभाव सदा प्रेरणा देता रहा है। इस प्रसग पर इस कार्य के प्रेरणा-स्रोत स्व० श्रावक चिमनसिहजी लोढा, स्व० श्री पुखराजजी सिसोदिया का स्मरण भी सहजरूप मे हो आता है जिनके अथक प्रेरणा-प्रयत्नो से आगम समिति अपने कार्य मे इतनी शीघ्र सफल हो रही है। दो वर्ष के अल्पकाल मे ही दस आगम ग्रन्थो का मुद्रण तथा करीब १५-२० आगमो का अनुवाद-सम्पादन हो जाना हमारे सब सहयोगियो की गहरी लगन का द्योतक है।

मुझे सुदृढ विश्वास है कि परम श्रद्धेय स्वर्गीय स्वामी श्री हजारीमलजी महाराज आदि तपोपूत आत्माओ के शुभाशीर्वाद से तथा हमारे श्रमणसघ के भाग्यशाली नेता राष्ट्र-सत आचार्य श्री आनन्दऋषिजी म० आदि मुनिजनो के सद्भाव-सहकार के बल पर यह सकल्पित जिनवाणी का सम्पादन-प्रकाशन कार्य शीघ्र ही सम्पन्न होगा।

इसी शुभाशा के साथ,

—मुनि मिश्रीमल "मधुकर"
(युवाचार्य)

□□

विषयसूची

प्रथम श्रुतस्कन्ध : दुःखविपाक

द्वितीय श्रुतस्कन्ध : सुखविपाक

प्रस्तावना

विपाकश्रुत : एक समीक्षात्मक अध्ययन

जैन साहित्य आगम और आगमेतर—इन दो भागो मे विभक्त है। साहित्य का प्राचीनतम विभाग आगम कहलाता है। केवलज्ञान केवलदर्शन होने के पश्चात् भगवान् ने समूचे लोक को देखा, इस विराट् विश्व मे अनन्त प्राणी है और वे आधि, व्याधि और उपाधि से सत्रस्त हैं। विविध दु खो से आक्रान्त हैं। उनका करुणापूरित हृदय द्रवित हो उठा और जन-जन के कल्याण के लिए अपने मगलमय प्रवचन प्रदान किये। प्रवचन प्रदान करने के कारण वे तीर्थंकर कहलाये।[1] वे सत्य के प्रवक्ता थे। उन्होंने अपने प्रवचनो मे बन्ध, बन्ध-हेतु, मोक्ष और मोक्ष-हेतु का स्वरूप बतलाया।

भगवान् की वह अद्भुत और अनूठी वाणी आगम कहलाई। उनके प्रधान शिष्य गणधरो ने उसे सूत्र रूप मे गू था, अत. आगम के दो विभाग हो गये—सूत्रागम और अर्थागम। ये आगम आचार्यो के लिए निधि रूप थे, अत इनका नाम गणि-पिटक हुआ। उस गुम्फन के मौलिक-विभाग बारह थे, अत उसका दूसरा नाम द्वादशागी हुआ। बारह अगो मे विपाक का ग्यारहवाँ स्थान है। आचार्य वीरसेन ने कर्मों के उदय व उदीरणा को विपाक कहा है।[2] आचार्य पूज्यपाद[3] और आचार्य अकलकदेव[4] ने लिखा है—विशिष्ट या नाना प्रकार के पाक का नाम विपाक है। पूर्वोक्त कषायो की तीव्रता, मन्दता, आदि रूप भावाश्रव के भेद से विशिष्ट पाक का होना "विपाक" है। अथवा द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और भव रूप निमित्त भेद से उत्पन्न हुआ वैश्व रूप्य नाना प्रकार का पाक विपाक

१, "तीर्थं" शब्द अपने मे अनेक अर्थों को समेटे हुए है। उनमे से एक अर्थ प्रवचन है, अत प्रवचनकार को तीर्थंकर कहा जाता था। बौद्ध साहित्य मे इसी अर्थ मे छह तीर्थकरो का उल्लेख है। आचार्य शकर ने ब्रह्मसूत्र के भाष्य मे 'कपिल' आदि को तीर्थंकर कहा है। आचार्य जिनदास गणी महत्तर ने "पर तत्र तीर्थंकर और वय तीर्थंकरा इति ... " लिखा है—देखिए सूत्रकृतागचूर्णि (पृ ४७, पृ ३२२)। प्रवचन के आधार पर ही श्रमण-श्रमणी श्रावक और श्राविका को भी तीर्थ कहा है।

२. कम्माणमुदग्रो उदीरणा वा विवागो णाम। —धवला १४।५ ६,१४।१०।२

३ विशिष्टो नानाविधो वा पाको विपाक। पूर्वोक्तकपायतीव्रमन्दादिभावास्रवविशेषाद्विशिष्ट पाको विपाक। अथवा द्रव्यक्षेत्रकालभवभावलक्षणनिमित्तभेदजनितवैश्वरूप्यो नानाविध पाको विपाक।

—सर्वार्थसिद्धि ८।२१।३९८।३

४ तत्त्वार्थराजवार्तिक ८।२१।१।५८३।१३

है। आचार्य हरिभद्र[5], आचार्य अभयदेव[6] ने वृत्ति मे लिखा है कि विपाक का अर्थ है—पुण्य पाप रूप कर्म-फल, उस का प्रतिपादन करने वाला सूत्र विपाकश्रुत है।

समवायाग[7] मे विपाक का परिचय देते हुए लिखा है—कि विपाक सूत्र सुकृत और दुष्कृत कर्मों के फल-विपाक को बतलाने वाला आगम है। उसमे दु खविपाक और सुखविपाक ये दो विभाग हैं। नन्दीसूत्र[8] मे आचार्य देववाचक ने विपाक का यही परिचय दिया है। स्थानागसूत्र[9] मे विपाक सूत्र का नाम कर्मविपाकदशा दिया है। वृत्तिकार[10] के अनुसार यह ग्यारहवे अग विपाक का प्रथम श्रुतस्कन्ध है।

समवायागसूत्र[11] के अनुसार विपाक के दो श्रुतस्कध है, बीस अध्ययन है, बीस उद्देशनकाल हैं, बीस समुद्देशनकाल है, सख्यात पद, सख्यात अक्षर, परिमित वाचनाए, सख्यात अनुयोगद्वार, सख्यात वेढ नामक छन्द, सख्यात श्लोक, सख्यात निर्युक्तिया, सख्यात सग्रहणिया, और सख्यात प्रतिपत्तियाँ है। वर्तमान मे जो विपाकसूत्र उपलब्ध है वह १२१६ श्लोकपरिमाण है।

स्थानाङ्ग मे प्रथम श्रुतस्कध के दस अध्ययनो के नाम आये हैं, पर दूसरे श्रुतस्कध के अध्ययनो के नाम वहा उपलब्ध नही है। वृत्तिकार का यह अभिमत है कि दूसरे श्रुतस्कन्ध के अध्ययनो की अन्यत्र चर्चा की गई है।[12] प्रथम श्रुतस्कन्ध का नाम 'कर्मविपाकदशा' है।[13]

स्थानाङ्ग के अनुसार कर्मविपाकदशा के अध्ययनो के नाम इस प्रकार है[14] —

(१) मृगापुत्र, (२) गोत्रास, (३) अण्ड, (४) शकट, (५) ब्राह्मण, (६) नन्दिषेण, (७) शौरिक, (८) उदुम्बर, (९) सहस्रोद्दाह आभरक, (१०) कुमार लिच्छई।

उपलब्ध विपाक के प्रथम श्रुतस्कन्ध के अध्ययनो के नाम इस प्रकार है—

(१) मृगापुत्र, (२) उज्झितक, (३) अभग्नसेन, (४) शकट, (५) बृहस्पतिदत्त, (६) नन्दिवर्द्धन, (७) उम्बरदत्त, (८) शौरिकदत्त, (९) देवदत्ता, (१०) अजू।

---

५. विपचन विपाक, शुभाशुभकर्मपरिणाम इत्यर्थ, तत्प्रतिपादक श्रुत विपाकश्रुत।
—नन्दीहारिभद्रीयावृत्ति पृ १०५, प्र —ऋषभदेवजी केशरीमलजी श्वे. सस्था रतलाम, सन् १९२८

६ विपाक पुण्यपापरूपकर्मफल तत्प्रतिपादनपर श्रुतमागमो विपाकश्रुतम्। —विपाकसूत्र अभयदेववृत्ति

७. विवागसुए ण सुकड-दुक्कडाण-कम्माण फलविवागा आघविज्जति, —समवायागसूत्र १४६, मुनि कन्हैयालाल

८ नन्दीसूत्र आगमपरिचय सूत्र ११

९ कम्मविवागदसाण दस अज्झयणा पण्णत्ता
—स्थानाङ्ग, स्थान १०, सूत्र १११,

१० कर्मविपाकदशा, विपाकश्रुताख्यस्यैकादशाङ्गस्य प्रथमश्रुतस्कन्ध
—स्थानाङ्ग वृत्ति पत्र ४८०

११ समवायाग सूत्र १४६, पृ १३३, मुनि कन्हैयालाल 'कमल'

१२ द्वितीयश्रुतस्कन्धोऽप्यस्य दशाध्ययनात्मक एव, न चासाविहाभिमत, उत्तरत्र विवरिष्यमाणत्वादिति
—स्थानाङ्ग वृत्ति पत्र ४८०

१३ कर्म्मण —अशुभस्य विपाक-फल कर्मविपाक तत्प्रतिपादका दशाध्ययनात्मकत्वाद्दशा कर्मविपाकदशा विपाक-श्रुताख्यस्यैकादशाङ्गस्य प्रथमश्रुतस्कन्ध
—स्थानाङ्ग वृत्ति पत्र ४८०

१४ स्थानाङ्ग १०।१११

स्थानाङ्ग मे जो नाम आये हैं और वर्तमान मे जो नाम उपलब्ध है, उनमे अन्तर स्पष्ट है। विपाकसूत्र मे अध्ययनो के कई नाम व्यक्तिपरक हैं तो कई नाम वस्तुपरक-यानी घटनापरक है। स्थानाङ्ग मे जो नाम आये है वे केवल व्यक्तिपरक है। दो अध्ययनो मे क्रम-भेद है। स्थानाङ्ग मे जो आठवाँ अध्ययन है वह विपाक का सातवाँ अध्ययन है और जो स्थानाङ्ग का सातवाँ अध्ययन है वह विपाक का आठवाँ अध्ययन है।

स्थानाङ्ग मे दूसरे अध्ययन का नाम पूर्वभव के नाम के आधार पर "गोत्रास" रखा गया है तो प्रस्तुत सूत्र मे अगले भव के नाम के आधार पर उज्भितक रखा है। स्थानाङ्ग मे तीसरे अध्ययन का अड नामकरण पूर्वभव के व्यापार के आधार पर किया गया है तो विपाक मे अग्रिम भव के नाम के आधार पर 'अभग्नसेन' रखा है। स्थानाङ्ग मे नौवें अध्ययन का नाम सहस्रोद्दाह आभरक या सहस्रोदाह है। सहस्रो व्यक्तियो को एक साथ जला देने के कारण उसका यह नाम दिया गया है जबकि विपाक मे प्रस्तुत अध्ययन की मुख्य नायिका देवदत्ता होने के कारण अध्ययन का नाम देवदत्ता रखा गया है। स्थानाङ्ग मे दसवे अध्ययन का नाम 'कुमार लिच्छई' है। लिच्छवी कुमारो के आचार पर यह नाम रखा गया है जबकि विपाक मे इसका नाम "अजू" है जो कथानक की मुख्य नायिका है। विज्ञो का यह मानना है कि लिच्छवी का सम्बन्ध लिच्छवी वश विशेष के साथ होना चाहिए।

नन्दीसूत्र और स्थानाङ्गसूत्र मे विपाक के द्वितीय श्रुतस्कन्ध सुखविपाक के अध्ययनो के नाम नही आये हैं। समवायाग मे तो दोनो श्रुतस्कन्धो के अध्ययनो के नाम नही हैं। विपाक सूत्र मे सुख विपाक के अध्ययनो के नाम इस प्रकार है—(१) सुबाहुकुमार, (२) भद्रनन्दी, (३) सुजात-कुमार, (४) सुवासवकुमार, (५) जिनदासकुमार, (६) धनपति, (७) महाबलकुमार, (८) भद्रनन्दीकुमार, (९) महाचन्द्रकुमार, (१०) और वरदत्तकुमार।

समवायाग[15] के पचपनवें समवाय मे उल्लेख है कि कार्तिकी अमावस्या की रात्रि मे चरम तीर्थंकर महावीर ने पचपन ऐसे अध्ययन, जिनमे पुण्यकर्मफल को प्रदर्शित किया गया है और पचपन ऐसे अध्ययन जिनमे पापकर्मफल व्यक्त किया गया था, धर्मदेशना के रूप मे प्रदान कर निर्वाण को प्राप्त किया। इससे प्रश्न होता है कि पचपन अध्ययन वाले कल्याणफलविपाक और पचपन अध्ययन वाले पापफलविपाक वाला आगम प्रस्तुत विपाक आगम ही है या यह आगम उससे भिन्न है ?

कितने ही चिन्तको का यह मत है कि प्रस्तुत आगम वही आगम है, उस मे पचपन-पचपन अध्ययन थे, पर पैंतालीस-पैंतालीस अध्ययन इसमे से विस्मृत हो गये है और केवल बीस अध्ययन ही अवशेष रहे है। हमारी दृष्टि मे चिन्तको की यह मान्यता चिन्तन मागती है। यह स्पष्ट है कि समवायाग मे कल्याणफलविपाक और पापफलविपाक अध्ययनो के नाम नही है और वह जीवन की सान्ध्यवेला मे दिया गया अन्तिम उपदेश है। आगम साहित्य मे जहाँ पर श्रमण और श्रमणियो के अध्ययन का वर्णन है वहाँ पर द्वादशागी या ग्यारह अगो के अध्ययन का वर्णन है। यदि विपाक का प्ररूपण भगवान् महावीर ने अन्तिम समय मे किया तो भगवान् के शिष्य किस विपाक का अध्ययन

१५ समणे भगव महावीरे अन्तिमराइयसि पणपन्न अज्झयणाइ कल्लाणफलविवागाइ पणपन्न अज्झयणाइ पावफलविवागाइ वागरित्ता सिद्धे बुद्धे जाव पहीणे —समवायाग समवाय-५५

करते, अत यह स्पष्ट है कि अन्तिम समय मे प्ररूपित कल्याणविपाक पापविपाक के पचपन-पचपन अध्ययन पृथक् हैं। यह विपाक सूत्र नही है।

साथ ही यहाँ यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है कि समवायाग व नन्दी मे विपाक सूत्र की जो परिचय-रेखा प्रस्तुत की गई है जिसमे बीस अध्ययन का उल्लेख है और उसमे जो पदो की सख्या आदि दी गई है उस सख्या से प्रस्तुत वर्तमान आगम की तुलना की जाय तो स्पष्ट है कि उसका बहुत-सा भाग नष्ट हो गया है और उसका आकार अत्यधिक छोटा हो गया है। पर यह स्पष्ट है कि समवायाग के लेखन व देववाचक के नन्दी की रचना करते समय उसका आकार वही रहा होगा। उसके पश्चात् उसमे कमी आई होगी। शोधार्थियो के लिए यह विषय अन्वेषणीय है।

कर्म-सिद्धान्त जैन-दर्शन का एक प्रमुख सिद्धान्त है। उस सिद्धान्त का प्रस्तुत आगम मे दार्शनिक गहन व गभीर विश्लेषण न कर उदाहरणो के माध्यम से विषय को प्रतिपादित किया गया है।

सासारिक जीव जो विविध प्रकार के कर्मों का वध करते हैं उन्हे विपाक की दृष्टि से दो भागो मे विभक्त किया गया है—शुभ और अशुभ, पुण्य और पाप, अथवा कुशल और अकुशल। इन दो भेदो का उल्लेख जैनदर्शन,[16] बौद्धदर्शन,[17] साख्यदर्शन,[18] योगदर्शन,[19] न्यायदर्शन,[20] वैशेषिक-दर्शन,[21] और उपनिषद्[22] आदि मे हुआ है। जिस कर्म के फल को प्राणी अनुकूल अनुभव करता है वह पुण्य है और जिसे प्रतिकूल अनुभव करता है वह पाप है। पुण्य के शुभ फल की तो सभी इच्छा करते हैं किन्तु पाप के फल की कोई इच्छा नही करता। फिर भी उसके विपाक से बचा नही जा सकता।

जीव ने जो कर्म बाँधा है उसे इस जन्म मे या आगामी जन्मो मे भोगना ही पडता है। कृतकर्मों का फल भोगे विना आत्मा का छुटकारा नही हो सकता। प्रस्तुत आगम मे पाप और पुण्य की गुरु-ग्रन्थियो को उदाहरणो के द्वारा सरल रूप से उद्घाटित किया गया है। जिन जीवो ने पूर्वभव मे विविध पापकृत्य किये है उन्हे आगामी जीवन मे दारुण वेदनाए प्राप्त हुईं। दु ख विपाक मे उन्ही पापकृत्य करने वाले जीवो का वर्णन है। जिन्होने पूर्व भव मे सुकृत किये थे उन्हे भविष्य मे सुख उपलब्ध हुआ।

---

१६ तत्त्वार्थसूत्र ६।३-४

१७ विशुद्धिमग्गो १७।८८

१८ साख्यकारिका ४४

१९ (क) योगसूत्र २।१४
 (ख) योगभाष्य २।१२

२० न्यायमजरी पृ ४७२

२१ प्रशस्तपाद पृ ६३७।६४३

२२ बृहदारण्यक ३।२।१३

कर्मवाद का महत्त्व

भारतीय तत्त्वचिन्तक महर्षियो ने कर्मवाद पर गहराई से अनुचिन्तन किया है। न्याय, साख्य, वेदान्त, वैशेषिक, मोमासक, वौद्ध और जैन सभी दार्शनिको ने कर्मवाद के सम्वन्ध मे चिन्तन किया है। केवल दर्शन ही नही अपितु धर्म, साहित्य, ज्ञान, विज्ञान और कला आदि पर कर्मवाद की प्रतिच्छाया स्पष्ट रूप से निहारी जा सकती है। विश्व के विशाल मच पर सर्वत्र विषमता, विविधता, विचित्रता का एकच्छत्र साम्राज्य देखकर प्रवुद्ध विचारको ने कर्म के अद्भुत सिद्धान्त की गवेषणा की। भारतीय जन-जन के मन की यह धारणा है कि प्राणीमात्र को सुख और दु ख की जो उपलब्धि होती है वह स्वय के किये गये कर्म का हो प्रतिफल है। कर्म से वधा हुआ जीव अनादिकाल से नाना गतियो व योनियो मे परिभ्रमण कर रहा है। जन्म और मृत्यु का मूल कर्म है और कर्म ही दु ख का सर्जक है। जो जैसा करता है वैसा ही फल को प्राप्त होता है। किन्तु यह स्मरण रखना चाहिए कि एक प्राणी अन्य प्राणी के कर्मफल का अधिकारी नही होता। प्रत्येक प्राणी का कर्म स्वसबद्ध होता है, पर-सम्वद्ध नही।

यह सत्य है कि सभी भारतीय दार्शनिको ने कर्मवाद की सस्थापना मे योगदान दिया किन्तु जैन परम्परा मे कर्मवाद का जैसा सुव्यवस्थित रूप उपलब्ध है वैसा अन्यत्र नही। वैदिक और वौद्ध साहित्य मे कर्म सम्वन्धी विचार इतना अल्प है कि उसमे कर्म विषयक कोई महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ दृष्टि-गोचर नही होता, जव कि जैन साहित्य मे कर्म सम्वन्धी अनेक स्वतन्त्र विशाल ग्रन्थ उपलब्ध हैं। कर्मवाद पर जैन परम्परा मे अत्यन्त सूक्ष्म, सुव्यवस्थित और वहुत ही विस्तृत विवेचन किया गया है। यह साधिकार कहा जा सकता है कि कर्म सम्वन्धी साहित्य का जैन साहित्य मे महत्त्वपूर्ण स्थान है और वह साहित्य 'कर्मशास्त्र' या 'कर्मग्रन्थ' के नाम से विश्रुत है। स्वतन्त्र कर्मग्रन्थो के अतिरिक्त भी आगम व आगमेतर जैनग्रन्थो मे यत्र-तत्र कर्म के सम्वन्ध मे चर्चाए उपलब्ध हैं।

कर्म सम्वन्धी साहित्य

भगवान् महावीर से लेकर आज तक कर्मशास्त्र का जो सकलन-आकलन हुआ है वह वाह्य रूप से तीन विभागो मे विभक्त किया जा सकता है—पूर्वात्मक कर्मशास्त्र, पूर्वोद्धृत कर्मशास्त्र और प्राकरणिक कर्मशास्त्र।[२३]

जैन इतिहास की दृष्टि से चौदह पूर्वो मे से आठवाँ पूर्व, जिसे 'कर्मप्रवाद' कहा जाता है, उसमे कर्मविपयक वर्णन था। इसके अतिरिक्त दूसरे पूर्व के एक विभाग का नाम 'कर्मप्राभृत' था और पाचवें पूर्व के एक विभाग का नाम 'कपायप्राभृत था। इनमे भी कर्म सम्वन्धी ही चर्चाए थी। आज वे अनुपलव्ध हैं किन्तु पूर्व साहित्य मे से उद्धृत कर्मशास्त्र आज भी दोनो ही जैन परम्पराओ मे उपलब्ध है। सम्प्रदाय भेद होने से नामो मे भिन्नता होना स्वाभाविक है। दिगम्बर परम्परा मे 'महाकर्मप्रकृति प्राभृत' (षट्खण्डागम) और कषायप्राभृत ये दो ग्रन्थ पूर्व से उद्धृत माने जाते है। श्वेताम्वर परम्परा के अनुसार कर्मप्रकृति, शतक, पचसग्रह और सप्ततिका ये चार ग्रन्थ पूर्वोद्धृत माने जाते हैं।

---

२३ कर्मग्रन्थ, भाग १ प्रस्तावना, पृ १५-१६ प सुखलालजी

प्राकरणिक कर्मशास्त्र मे कर्म सम्बन्धी अनेक ग्रन्थ आते हैं, जिनका मूल आधार पूर्वोद्धृत कर्म साहित्य रहा है। प्राकरणिक कर्मग्रन्थो का लेखन विक्रम की आठवी नवी शती से लेकर सोलहवीं सत्तरहवी शती तक हुआ है। आधुनिक विज्ञो ने कर्मविषयक साहित्य का जो सृजन किया है वह मुख्य रूप से कर्मग्रन्थो के विवेचन के रूप मे है।

भाषा की दृष्टि से कर्म साहित्य को प्राकृत, सस्कृत और प्रादेशिक भाषाओं मे विभक्त कर सकते है। पूर्वात्मक व पूर्वोद्धृत कर्मग्रन्थ प्राकृत भाषा मे है। प्राकरणिक कर्म साहित्य का विशेष अश प्राकृत मे ही है। मूल ग्रन्थो के अतिरिक्त उन पर लिखी गईं वृत्तियाँ और टिप्पणियाँ भी प्राकृत मे है। बाद मे कुछ कर्मग्रन्थ सस्कृत मे भी लिखे गये किन्तु मुख्य रूप से सस्कृत भाषा मे उस पर वृत्तियाँ ही लिखी गई हैं। सस्कृत मे लिखे हुये मूल कर्मग्रन्थ, प्राकरणिक कर्मशास्त्र मे आते हैं। प्रादेशिक भाषाओ मे लिखा हुआ कर्म साहित्य कन्नड, गुजराती और हिन्दी मे है। इनमे मौलिक अश बहुत ही कम है, अनुवाद और विवेचन ही मुख्य है। कन्नड और हिन्दी मे दिगम्बर साहित्य अधिक लिखा गया है और गुजराती मे श्वेताम्बर साहित्य।

विस्तारभय से उन सभी ग्रन्थो का परिचय देना यहाँ सम्भव नही है। सक्षेप मे उपलब्ध दिगम्बरीय कर्म साहित्य का प्रमाण लगभग पाच लाख श्लोक है। और श्वेताम्बरीय कर्म साहित्य का ग्रन्थमान लगभग दो लाख श्लोक है।

श्वेताम्बरीय कर्म-साहित्य का प्राचीनतम स्वतन्त्र ग्रन्थ शिवशर्म सूरिकृत कर्मप्रकृति है। उसमे ४७५ गाथाए हैं। इसमे आचार्य ने कर्म सम्बन्धी बन्धनकरण, सक्रमणकरण, उद्वर्तनाकरण, अपवर्तनाकरण, उदीरणाकरण, उपशमनाकरण, निधत्तिकरण और निकाचनाकरण इन आठ करणो (करण का अर्थ है आत्मा का परिणाम विशेष) एव उदय और सत्ता इन दो अवस्थाओं का वर्णन किया है। इस पर एक चूर्णि भी लिखी गई थी। प्रसिद्ध टीकाकार मलयगिरि और उपाध्याय यशोविजय जी ने सस्कृत भाषा मे इस पर टीका लिखी है। आचार्य शिवशर्म की एक अन्य रचना 'शतक' है। इस पर भी मलयगिरि ने टीका लिखी है। पार्श्व ऋषि के शिष्य चन्द्रर्षि महत्तर ने पच-सग्रह की रचना की और उस पर स्वोपज्ञवृत्ति भी लिखी। इसके पूर्व भी दिगम्बर परम्परा मे प्राकृत पचसग्रह उपलब्ध था किन्तु उसकी कर्म विषयक कितनी ही मान्यताए आगम-साहित्य से मेल नही खाती थी, इसलिए चन्द्रर्षि महत्तर ने नवीन पच-सग्रह की रचना कर उसमे आगम मान्यताए गु फित की। आचार्य मलयगिरि ने उस पर भी सस्कृत टीका लिखी है। जैन परम्परा के प्राचीन आचार्यो ने प्राचीन कर्मग्रन्थ भी लिखे थे। जिनके नाम इस प्रकार है—कर्म-विपाक, कर्म-स्तव, बध-स्वामित्व, सप्ततिका और शतक। इन पर उनका स्वय का स्वोपज्ञ विवरण है। प्राचीन कर्मग्रन्थो को आधार बना कर देवेन्द्रसूरि ने नवीन पाच कर्म ग्रन्थ बनाये। इस प्रकार जैन परम्परा मे कर्मविषयक साहित्य पर्याप्त उर्वर स्थिति मे है। मध्य युग के आचार्यों ने इन पर बालावबोध भी लिखे हैं, जिन्हे प्राचीन भाषा मे टब्बा कहा जाता है।

जैन दर्शन का मन्तव्य

कर्मवाद के समर्थक दार्शनिक चिन्तको ने काल वाद, स्वभाववाद, नियतिवाद, यदृच्छावाद, भूतवाद, पुरुषवाद, आदि मान्यताओ का सुन्दर समन्वय करते हुये इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया

है। विश्व-वैचित्र्य का मुख्य कारण कर्म है और काल आदि उसके सहकारी कारण है। कर्म को प्रधान कारण मानने से जन-जन के मन मे आत्मविश्वास और आत्मबल पैदा होता है और साथ ही पुरुषार्थ का पोषण होता है। सुख दु ख का प्रधान कारण अन्यत्र न ढू ढ कर अपने आप मे ढू ढना बुद्धिमत्ता है। आचार्य सिद्धसेन दिवाकर ने लिखा है कि काल, स्वभाव, नियति, पूर्वकृत कर्म और पुरुषार्थ इन पाँच कारणो मे से किसी एक को ही कारण माना जाए और शेष कारणो की उपेक्षा की जाए, यह मिथ्यात्व है। कार्यनिष्पत्ति मे काल आदि सभी कारणो का समन्वय किया जाय[२४] यह सम्यक्त्व है। इसीका समर्थन आचार्य हरिभद्र ने भी किया है।[२५]

दैव, कर्म, भाग्य और पुरुषार्थ के सम्बन्ध मे अनेकान्त दृष्टि रखनी चाहिए। आचार्य समन्तभद्र ने लिखा है—बुद्धिपूर्वक कर्म न करने पर भी इष्ट या अनिष्ट वस्तु की प्राप्ति होना दैवाधीन है। बुद्धिपूर्वक प्रयत्न से इष्टानिष्ट की प्राप्ति होना पुरुषार्थ के अधीन है। कही पर दैव प्रधान होता है तो कही पर पुरुषार्थ।[२६] दैव और पुरुषार्थ के सही समन्वय से ही अर्थसिद्धि होती है।

जैन दर्शन मे जड और चेतन पदार्थो के नियामक के रूप मे ईश्वर या पुरुष की सत्ता नही मानी गई है। उसका मन्तव्य है कि ईश्वर या ब्रह्म को जगत् की उत्पत्ति, स्थिति व सहार का कारण या नियामक मानना निरर्थक है। कर्म आदि कारणो से ही प्राणियो के जन्म, जरा और मरण आदि की सिद्धि की जा सकती है। अतएव कर्ममूलक विश्व व्यवस्था मानना तर्कसगत है। कर्म अपने नैसर्गिक स्वभाव से अपने-आप फल प्रदान करने मे समर्थ होता है।

कर्मवाद की ऐतिहासिक समीक्षा

ऐतिहासिक दृष्टि से कर्मवाद पर चिन्तन करने के लिए हमे सर्वप्रथम वेदकालीन कर्म सम्बन्धी विचारो पर ध्यान देना होगा। उपलब्ध साहित्य मे वेद सबसे प्राचीन है। वैदिक युग के महर्षियो को कर्म-सम्बन्धी ज्ञान था या नही ? इस पर विज्ञो के दो मत है। कितने ही विज्ञो का यह मत है कि वेदो—सहिता ग्रन्थो मे कर्मवाद का वर्णन नही आया है तो कितने ही विद्वान् कहते है कि वेदो के रचयिता ऋषिगण कर्मवाद के ज्ञाता थे।

जो विद्वान् यह मानते है कि वेदो मे कर्मवाद की चर्चा नही है, उनका कहना है कि वैदिक काल के ऋषियो ने प्राणियो मे रहे हुए वैविध्य और वैचित्र्य का अनुभव तो गहराई से किया पर उन्होने उसके मूल की अन्वेषणा अन्तर मे न कर बाह्य जगत् मे की। किसी ने कमनीय कल्पना के गगन मे विहरण करते हुये कहा-कि सृष्टि की उत्पत्ति का कारण एक भौतिक तत्त्व है तो दूसरे ऋषि ने अनेक भौतिक तत्त्वो को सृष्टि की उत्पत्ति का कारण माना। तीसरे ऋषि ने प्रजापति ब्रह्मा को ही सृष्टि की उत्पत्ति का कारण माना। इस तरह वैदिक युग का सम्पूर्ण तत्त्वचिन्तन देव और यज्ञ

---

२४. कालो सहाव णियई पुव्वकम्म पुरिसकारणेगता।
मिच्छत्त त चेव उ समासओ हुति सम्मत्त ॥ —सन्मतितर्क प्रकरण ३,५३

२५ शास्त्रवार्तासमुच्चय १९१-१९२

२६ आप्तमीमासा ८८-९१

की परिधि मे ही विकसित हुआ। पहले विविध देवो की कल्पना की गई और उसके पश्चात् एक देव की महत्ता स्थापित की गई। जीवन मे सुख और वैभव की उपलब्धि हो, शत्रु पराजित हो, अत. देवो की प्रार्थनाएँ की गई और सजीव व निर्जीव पदार्थों की आहुतियाँ दी गई। यज्ञ कर्म का शनै शनै. विकास हुआ। इस प्रकार यह विचारधारा सहिताकाल से लेकर ब्राह्मणकाल तक क्रमश· विकसित हुई।[२७]

आरण्यक और उपनिषद् युग मे देववाद व यज्ञवाद का महत्त्व कम होने लगा और ऐसे नये विचार सामने आये जिनका सहिताकाल व ब्राह्मणकाल मे अभाव था। उपनिषदो से पूर्व के वैदिक-साहित्य मे कर्मविषयक चिन्तन का अभाव है पर आरण्यक व उपनिषद्काल मे 'अदृष्ट' के रूप कर्म का वर्णन मिलता है। यह सत्य है कि कर्म को विश्व वैचित्र्य का कारण मानने मे उपनिषदो का भी एकमत नही रहा है। श्वेताश्वतर उपनिषद् के प्रारम्भ मे काल, स्वभाव, नियति, यदृच्छा, भूत और पुरुष को ही विश्व-वैचित्र्य का कारण माना है, कर्म को नही।

जो विद्वान् यह मानते हैं कि वेदो-सहिता—ग्रन्थो मे कर्मवाद या कर्म-गति आदि शब्द भले ही न हो किन्तु उनमे कर्मवाद का उल्लेख अवश्य हुआ है। ऋग्वेद सहिता के निम्न मत्र इस बात के ज्वलत प्रमाण है—शुभस्पति' (शुभ कर्मों के रक्षक), धियस्पति (सत्य कर्मो के रक्षक), विचर्षणि तथा विश्व चर्षणि (शुभ और अशुभ कर्मों के द्रष्टा) 'विश्वस्य कर्मणो धर्ता (सभी कर्मो के आधार) आदि पद देवो के विशेषणो के रूप मे व्यवहृत हुये हैं। कितने ही मत्रो से स्पष्ट रूप से यह प्रतिपादित किया गया है कि शुभ कर्म करने से अमरत्व की उपलब्धि होती है। कर्मो के अनुसार ही जीव अनेक बार ससार मे जन्म लेता है और मरता है। वामदेव ने अनेक पूर्वभवो का वर्णन किया है। पूर्व जन्म के दुष्कृत्यो से ही लोग पाप कर्म मे प्रवृत्त होते है। आदि उल्लेख वेदो के मत्रो मे हैं। पूर्वजन्म के पापकृत्यो से मुक्त होने के लिए ही मानव देवो की अभ्यर्थना करता है। वेदमत्रो मे सचित और प्रारब्ध कर्मों का भी वर्णन है। साथ ही देवयान और पितृयान का वर्णन करते हुये कहा गया है कि श्रेष्ठ-कर्म करने वाले लोग देवयान से ब्रह्मलोक को जाते हैं और साधारण कर्म करने वाले पितृयान से चन्द्रलोक मे जाते हैं। ऋग्वेद मे पूर्वजन्म के निकृष्ट कर्मो के भोग के लिए जीव किस प्रकार वृक्ष, लता आदि स्थावर शरीरो मे प्रविष्ट होता है, इसका वर्णन है। 'मा वो भुजेमान्य-जातमेनो' 'मा वा एनो अन्यकृत भुजेम' आदि मन्त्रो से यह भी ज्ञात होता है कि एक जीव दूसरे जीव के द्वारा किये गये कर्मों को भी भोग सकता है और उससे बचने के लिए साधक ने इन मन्त्रो मे प्रार्थना की है। मुख्य रूप से जो जीव कर्म करता है वही उसके फल का उपभोग भी करता है पर विशिष्ट शक्ति के प्रभाव से एक जीव के कर्मफल को दूसरा भी भोग सकता है।[२८]

उपर्युक्त दोनो मतो का गहराई से अनुचिन्तन करने पर ऐसा स्पष्ट ज्ञात होता है कि वेदो मे कर्म सम्बन्धी मान्यताओ का पूर्ण रूप से अभाव तो नही है पर देववाद और यज्ञवाद के प्रभुत्व से

---

२७ (क) आत्ममीमासा—पृ० ७९-८० प० दलसुख मालवणिया
(ख) जैन धर्म और दर्शन—पृ० ४३०, डा० मोहनलाल मेहता

२८ (क) भारतीय दर्शन—पृ० ३९-४१, उमेश मिश्र
(ख) जैन धर्म और दर्शन—पृ० ४३२

कर्मवाद का विश्लेपण एकदम गौण हो गया है । यह सत्य है कि कर्म क्या है, वे किस प्रकार बधते हैं और किस प्रकार प्राणी उनसे मुक्त होते हैं, आदि जिज्ञासाओ का समाधान वैदिक सहिताओ मे नही है । वहाँ पर मुख्य रूप से, यज्ञकर्म को ही कर्म माना है और कदम-कदम पर देवो से सहायता के लिए याचना की है । जब यज्ञ और देव की अपेक्षा कर्मवाद का महत्त्व अधिक बढने लगा, तब उसके समर्थको ने उक्त दोनो वादो का कर्मवाद के साथ समन्वय करने का प्रयास किया और यज्ञ से ही समस्त फलो की प्राप्ति स्वीकार की । इस मन्तव्य का दार्शनिक रूप मीमासा दर्शन है । यज्ञ विपयक विचारणा के साथ देव विपयक विचारणा का भी विकास हुआ । ब्राह्मणकाल मे अनेक देवो के स्थान पर एक प्रजापति देव की प्रतिष्ठा हुई । उन्होंने भी कर्म के साथ प्रजापति का समन्वय कर कहा—प्राणी अपने कर्म के अनुसार फल अवश्य प्राप्त करता है परन्तु फल प्राप्ति अपने आप न होकर प्रजापति के द्वारा होती है । प्रजापति (ईश्वर) जीवो को अपने-अपने कर्म के अनुसार फल प्रदान करता है । वह न्यायाधीश की तरह है । इस विचारधारा का दार्शनिक रूप न्याय वैशेपिक, सेश्वर-साख्य और वेदान्त दर्शन मे हुआ है ।

यज्ञ आदि अनुष्ठानो को वैदिक परम्परा मे कर्म कहा गया है । वे अस्थायी हैं । उसी समय समाप्त हो जाते है तो वे किस प्रकार फल प्रदान कर सकते है ? इसलिए फल प्रदान करने वाले एक अदृष्ट पदार्थ की कल्पना की गई । उसे मीमासा दर्शन ने 'अपूर्व' कहा । वैशेपिक दर्शन मे 'अदृष्ट' एक गुण माना गया है जिसके धर्म अधर्म रूप ये दो भेद हैं । न्यायदर्शन मे धर्म और अधर्म को 'सस्कार' कहा है । अच्छे बुरे कर्मो का आत्मा पर सस्कार पडता है वह अदृष्ट है । 'अदृष्ट' आत्मा का गुण है । जब तक उसका फल नही मिल जाता तब तक वह आत्मा के साथ रहता है । उसका फल ईश्वर के माध्यम मे मिलता है ।[२९] चू कि यदि ईश्वर कर्मफल की व्यवस्था न करे तो कर्म निष्फल हो जाएं । साख्य कर्म को प्रकृति का विकार कहते हैं ।[३०] श्रेष्ठ और कनिष्ठ प्रवृत्तियो का प्रकृति पर सस्कार पडता हैं । उस प्रकृतिगत संस्कार से ही कर्मों के फल प्राप्त होते हैं । इस प्रकार वैदिक परम्परा मे कर्मवाद का विकास हुआ है ।

बौद्ध दर्शन मे कर्म

बौद्ध और जैन ये दोनो कर्म-प्रधान श्रमण-संस्कृति की धाराएं हैं । बौद्ध-परम्परा ने भी कर्म की अदृष्ट शक्ति पर चिन्तन किया है । उसका अभिमत है कि जीवो मे जो विचित्रता दृष्टिगोचर होती है वह कर्मकृत है ।[३१] लोभ (राग) द्वेष और मोह से कर्म की उत्पत्ति होती है । राग-द्वेष और मोहयुक्त होकर प्राणी सत्व, मन, वचन और काय की प्रवृत्तिया करता है और राग-द्वेप और मोह

---

२९. ईश्वर कारण पुरुपकर्मफलस्य दर्शनात् । —न्यायसूत्र ४।१

३० अन्त करणधर्मत्व धर्मादीनाम् । —साख्यसूत्र ५।२५

३१ (क) भासित पेत महाराज भगवता-कम्मस्सका माणव सत्ता कम्मदायादा, कम्मयोनी, कम्मबन्धू कम्मपटि-सरणा, कम्म सते विभजति यदिद हीनपणीततायाति । —मिलिन्द प्रश्न ३।२

(ख) कर्मज लोकवैचित्र्य —अभिधर्म कोप ४।१

को उत्पन्न करता है। इस तरह ससार चक्र निरन्तर चलता रहता है।[32] जिस चक्र का न आदि है, न अन्त है किन्तु अनादि हैं।[33]

एक वार राजा मिलिन्द ने आचार्य नागसेन से जिज्ञासा प्रस्तुत की कि जीव द्वारा किये गये कर्मों की स्थिति कहाँ है ? समाधान करते हुए आचार्य ने कहा—वह दिखलाया नही जा सकता कि कर्म कहाँ रहते हैं।[34]

विसुद्धिमग्ग मे कर्म को अरूपी कहा है।[35] अभिधर्म कोप मे उस अविज्ञप्ति को रूप कहा है।[36] यह रूप सप्रतिघ न होकर अप्रतिघ है।[37] सौत्रान्तिक मत की दृष्टि से कर्म का समावेश अरूप मे है, वे अविज्ञप्ति[38] को नही मानते हैं। बौद्धो ने कर्म को सूक्ष्म माना है। मन वचन, और काया की जो प्रवृत्ति है वह कर्म कहलाती है पर वह विज्ञप्ति रूप है, प्रत्यक्ष है। यहा पर कर्म का तात्पर्य मात्र प्रत्यक्ष प्रवृत्ति नही किन्तु प्रत्यक्ष कर्मजन्य सस्कार है। बौद्ध परिभापा मे इसे वासना और अविज्ञप्ति कहा है। मानसिक क्रियाजन्य सस्कार-कर्म को वासना कहा है और वचन एव कायजन्य सस्कार-कर्म को अविज्ञप्ति कहा है।[39]

विज्ञानवादी बौद्ध कर्म को 'वाचना' शब्द से पुकारते हैं। प्रज्ञाकर का अभिमत है कि जितने भी कार्य हैं वे सभी वासनाजन्य है। ईश्वर हो या कर्म (क्रिया) प्रधान प्रकृति हो या अन्य कुछ इन सभी का मूल वासना है। ईश्वर को न्यायाधीश मानकर यदि विश्व की विचित्रता की उपपत्ति की जाए तो भी वासना को माने विना कार्य नही हो सकता। दूसरे शब्दो मे कहे तो ईश्वर प्रधान कर्म इन सभी सरिताओ का प्रवाह वासना समुद्र मे मिलकर एक हो जाता है।[40] शून्यवादी मत के मन्तव्य के अनुसार अनादि अविद्या का अपर नाम ही वासना है।

विलक्षण-वर्णन

जैन-साहित्य मे कर्मवाद के सम्वन्ध मे पर्याप्त विश्लेषण किया गया है। जैन दर्शन मे प्रतिपादित कर्म-व्यवस्था का जो वैज्ञानिक रूप है उसका किसी भी भारतीय परम्परा मे दर्शन नही होता। जैन परम्परा इस दृष्टि से सर्वथा विलक्षण है। आगम साहित्य से लेकर वर्तमान साहित्य मे कर्मवाद का विकास किस प्रकार हुआ है, इस पर पूर्व मे ही सक्षेप मे लिखा जा चुका है।

---

३२ अगुत्तरनिकाय तिकनिपात सूत्र ३६, १ पृ १३४

३३ सयुक्तनिकाय १५।५।६ भाग २, पृ १८१-१८२

३४ न सक्का महाराज तानि कम्मानि दस्सेतु इध व एध वा तानि कम्मानि तिट्ठन्तीति

—मिलिन्द प्रश्न ३।१५ पृ ७५

३५ विसुद्धिमग्ग १७।११०

३६ अभिधर्मकोष १।९

३७ देखिए आत्ममीमासा पृ १०६

३८. नौमी अरियटल कोन्फरम पृ ६२०

३९ (क) अभिधर्मकोष चतुर्थ परिच्छेद, (ख) प्रमाणवार्तिकालकार, ७५

४० न्यायावतारवार्तिक वृत्ति की टिप्पणी पृ १७७-८ मे उद्धृत

कर्म का अर्थ

कर्म का शाब्दिक अर्थ कार्य, प्रवृत्ति या क्रिया है। जो कुछ भी किया जाता है वह कर्म है। सोना, बैठना, खाना, पीना आदि। जीवन व्यवहार मे जो कुछ भी कार्य किया जाता वह कर्म कहलाता है। व्याकरणशास्त्र के कर्ता 'पाणिनि' ने कर्म की व्याख्या करते हुए कहा—जो कर्ता के लिए अत्यन्त इष्ट हो वह कर्म है।[४१] मीमासादर्शन ने क्रिया-काण्ड को या यज्ञ आदि अनुष्ठान को कर्म कहा है। वैशेषिकदर्शन मे कर्म की परिभाषा इस प्रकार है—जो एक द्रव्य मे समवाय से रहता हो, जिसमे कोई गुण न हो, और जो सयोग या विभाग मे कारणान्तर की अपेक्षा न करे।[४२] साख्य दर्शन मे सस्कार के अर्थ मे कर्म शब्द का प्रयोग मिलता है।[४३] गीता मे कर्मशीलता को कर्म कहा है।[४४] न्यायशास्त्र मे उत्क्षेपण, अपक्षेपण आकुचन प्रसारण, तथा गमनरूप पाच प्रकार की क्रियाओ के लिए कर्म शब्द व्यवहृत हुआ है। स्मार्त-विद्वान् चार वर्णों और चार आश्रमो के कर्तव्यो को कर्म की सज्ञा प्रदान करते है। पौराणिक लोग-व्रत-नियम आदि धार्मिक क्रियाओ को कर्मरूप कहते हैं। बौद्ध दर्शन जीवो की विचित्रता के कारण को कर्म कहते हैं जो वासना रूप है। जैन-परम्परा मे कर्म दो प्रकार का माना गया है—भावकर्म और द्रव्यकर्म। राग-द्वेषात्मक परिणाम अर्थात् कषाय भाव कर्म कहलाता है। कार्मण जाति का पुद्गल-जडतत्व विशेष, जो कषाय के कारण आत्मा के साथ मिल जाता है द्रव्यकर्म कहलाता है। आचार्य अमृतचन्द्र ने लिखा है—आत्मा के द्वारा प्राप्त होने से क्रिया को कर्म कहते है। उस क्रिया के निमित्त से परिणमन विशेषप्राप्त पुद्गल भी कर्म है।[४५] कर्म जो पुद्गल का ही एक विशेष रूप है, आत्मा से भिन्न एक विजातीय तत्त्व है। जब तक आत्मा के साथ इस विजातीय तत्त्व कर्म का सयोग है, तभी तक ससार है और उस सयोग के नाश होने पर आत्मा मुक्त हो जाता है।

विभिन्न परम्पराओ मे कर्म

जैन-परम्परा मे जिस अर्थ मे 'कर्म' शब्द व्यवहृत हुआ है, उस या उससे मिलते-जुलते अर्थ मे भारत के विभिन्न दर्शनो मे माया, अविद्या, प्रकृति, अपूर्व, वासना, आशय, धर्माधर्म, अदृष्ट, सस्कार, दैव, भाग्य आदि शब्दो का प्रयोग हुआ है। वेदान्तदर्शन मे माया, अविद्या और प्रकृति शब्दो का प्रयोग हुआ है। मीमासादर्शन मे अपूर्व शब्द प्रयुक्त हुआ है। बौद्धदर्शन मे वासना और अविज्ञप्ति शब्दो का प्रयोग दृष्टिगोचर होता है। साख्यदर्शन मे 'आशय' शब्द विशेष रूप से मिलता है। न्यायवैशेषिकदर्शन मे अदृष्ट सस्कार और धर्माधर्म शब्द विशेष रूप मे प्रचलित है। दैव, भाग्य, पुण्य, पाप आदि ऐसे अनेक शब्द हैं जिनका प्रयोग सामान्य रूप से सभी दर्शनो मे हुआ है। भारतीय दर्शनो मे एक चार्वाकदर्शन ही ऐसा दर्शन है जिसका कर्मवाद मे विश्वास नही है। क्योकि वह आत्मा

---

४१ कर्तुरीप्सिततम कर्म। —अष्टाध्यायी १। ४। ७९

४२. वैशेषिकदर्शनभाष्य —१।१७ पृ ३५

४३ साख्यतत्त्वकौमुदी ६७

४४ योग कर्मसु कौशलम्

४५ प्रवचनसार टीका २।२५

का स्वतत्र अस्तित्व ही नही मानता है। इसलिए कर्म और उसके द्वारा होने वाले पुनर्भव, परलोक आदि को भी वह नही मानता है।[४६]

न्यायदर्शन के अभिमतानुसार राग, द्वेष और मोह इन तीन दोषो से प्रेरणा संप्राप्त कर जीवो मे मन, वचन और काय को प्रवृत्तियाँ होती हैं और उससे धर्म और अधर्म की उत्पत्ति होती है। ये धर्म और अधर्म सस्कार कहलाते है।[४७]

वैशेषिकदर्शन मे चौबीस गुण माने गये है उनमे एक अदृष्ट भी है। यह गुण सस्कार से पृथक् है और धर्म-अधर्म ये दोनो उसके भेद हैं।[४८] इस तरह न्यायदर्शन मे धर्म, अधर्म का समावेश सस्कार मे किया गया है। उन्ही धर्म-अधर्म को वैशेषिकदर्शन मे अदृष्ट के अन्तर्गत लिया गया है। राग आदि दोषो से सस्कार होता है, सस्कार से जन्म, जन्म से राग आदि दोष और उन दोषो से पुन: सस्कार उत्पन्न होते हैं। इस तरह जीवो की ससार परम्परा बीजाकुरवत् अनादि है।

साख्य-योगदर्शन अभिमतानुसार अविद्या अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश इन पाँच क्लेशो से क्लिष्टवृत्ति उत्पन्न होती है। प्रस्तुत क्लिष्टवृत्ति से धर्माधर्म रूपी संस्कार पैदा होता है। सस्कार को इस वर्णन मे बीजाकुरवत् अनादि माना है।[४९]

मीमासादर्शन का अभिमत है कि मानव द्वारा किया जाने वाला यज्ञ आदि अनुष्ठान अपूर्व नामक पदार्थ को उत्पन्न करता है और वह अपूर्व ही सभी कर्मों का फल देता है। दूसरे शब्दो मे कहे तो वेद द्वारा प्ररूपित कर्म से उत्पन्न होने वाली योग्यता या शक्ति का नाम अपूर्व है। वहाँ पर अन्य कर्मजन्य सामर्थ्य को अपूर्व नही कहा है।[५०]

वेदान्तदर्शन का मन्तव्य है कि अनादि अविद्या या माया ही विश्ववैचित्र्य का कारण है।[५१] ईश्वर स्वय मायाजन्य है। वह कर्म के अनुसार जीव को फल प्रदान करता है इसलिए फलप्राप्ति कर्म से नही अपितु ईश्वर से होती है।[५२]

बौद्धदर्शन का अभिमत है कि मनोजन्य सस्कार वासना है और वचन और कायजन्य संस्कार अविज्ञप्ति है। लोभ द्वेष और मोह से कर्मों की उत्पत्ति होती है। लोभ, द्वेष और मोह से भी प्राणी मन, वचन और काय की प्रवृत्तियाँ करता है और उससे पुन लोभ, द्वेष और मोह पैदा करता है इस तरह अनादि काल से यह ससार चक्र चल रहा है।[५३]

---

४६ (क) जैनधर्म और दर्शन पृ ४४३
(ख) कर्मविपाक के हिन्दी अनुवाद की प्रस्तावना, प सुखलालजी पृ २३
४७ न्यायभाष्य १।१।२ आदि
४८ प्रशस्तपादभाष्य पृ ४७—(चौखम्बा सस्कृत सिरीज, बनारस १९३०
४९ योगदर्शन भाष्य १।५ आदि
५० (क) शावरभाष्य २।१।५
(ख) तन्त्रवार्तिक २।१।५ आदि
५१ शाकर भाष्य २।१।१४
५२ शाकर भाष्य ३।२।३८-४१
५३ (क) अगुत्तरनिकाय ३।३३।१
(ख) सयुक्तनिकाय १५।५।६

जैन दर्शन मे कर्म का स्वरूप

अन्य दर्शनकार कर्म को जहाँ सस्कार या वासना रूप मानते हैं वहाँ जैन दर्शन उसे पौद्गलिक मानता है। यह एक परखा हुआ सिद्धान्त है कि जिस वस्तु का जो गुण होता है वह उसका विघातक नही होता। आत्मा का गुण उसके लिए आवरण, पारतन्त्र्य और दु ख का हेतु नही हो सकता। कर्म आत्मा के आवरण, पारतन्त्र्य और दु खो का कारण है, गुणो का विघातक है, अत वह आत्मा का गुण नही हो सकता।

वेडी से मानव वधता है, मदिरापान से पागल होता है और क्लोरोफार्म से बेभान। ये सभी पौद्गलिक वस्तुए है। ठीक इसी तरह कर्म के सयोग से आत्मा की भी ये दशाए होती हैं, अत कर्म भी पौद्गलिक है। वेडी आदि का बधन बाहरी है, अल्प सामर्थ्य वाला है किन्तु कर्म आत्मा के साथ चिपके हुए हैं, अधिक सामर्थ्य वाले सूक्ष्म स्कन्ध है, एतदर्थ ही वेडी आदि की अपेक्षा कर्म-परमाणुओ का जीवात्मा पर वहुत गहरा और आन्तरिक प्रभाव पडता है।

जो पुद्गल-परमाणु कर्म रूप मे परिणत होते हैं उन्हे कर्मवर्गणा कहते हैं और जो शरीररूप मे परिणत होते है उन्हे नोकर्म-वर्गणा कहते है। लोक इन दोनो प्रकार के परमाणुओ से पूर्ण है। शरीर पौद्गलिक है, उसका कारण कर्म है, अत वह भी पौद्गलिक है। पौद्गलिक कार्य का समवायी कारण पौद्गलिक है। मिट्टी आदि भौतिक है और उससे निर्मित होने वाला पदार्थ भी भौतिक ही होगा।

अनुकूल आहार आदि से सुख की अनुभूति होती है और शस्त्रादि के प्रहार से दु खानुभूति होती है। आहार और शस्त्र जैसे पौद्गलिक हैं वैसे ही सुख-दु ख के प्रदाता कर्म भी पौद्गलिक है।

वध की दृष्टि से जीव और पुद्गल दोनो एकमेक है पर लक्षण की दृष्टि से दोनो पृथक्-पृथक् हैं। जीव अमूर्त व चेतना युक्त है जवकि पुद्गल मूर्त और अचेतन है।

इन्द्रियो के विषय-स्पर्श, रस, गध, रूप और शब्द ये मूर्त है और उनका उपयोग करने वाली इन्द्रिया भी मूर्त हैं। उनसे उत्पन्न होने वाला सुख दु ख भी मूर्त है, अत उनके कारणभूत कर्म भी मूर्त हैं।[५४]

मूर्त ही मूर्त से वधता है। अमूर्त जीव मूर्त कर्मो को अवकाश देता है। वह उन कर्मो से अवकाश रूप हो जाता है।[५५]

जैन दर्शन मे कर्म शब्द क्रिया का वाचक नही रहा है। उसके मन्तव्यानुसार वह आत्मा पर लगे हुए सूक्ष्म पौद्गलिक पदार्थ का वाचक है।

जीव अपने मन वचन और काय की प्रवृत्तियो से कर्म-वर्गणा के पुद्गलो को आकर्षित करता है। मन, वचन और काय की प्रवृत्ति तभी होती है जब जीव के साथ कर्म सम्वद्ध हो। जीव के साथ

---

५४ जम्हा कम्मस्स फल विसय फासेहिं भु जदे णियय।
जीवेण सुह दुक्ख तम्हा कम्माणि मुत्ताणि॥ —पचास्तिकाय १४१

५५ पचास्तिकाय १४२

कर्म तभी सबद्ध होता है जब मन, वचन, काय की प्रवृत्ति हो। इस तरह प्रवृत्ति से कर्म और कर्म से प्रवृत्ति की परम्परा अनादि काल से चल रही है। कर्म और प्रवृत्ति के कार्य और कारण भाव को लक्ष्य मे रखते हुए पुद्गल परमाणुओ के पिण्डरूप कर्म को द्रव्यकर्म कहा है और राग-द्वेषादिरूप प्रवृत्तियो को भावकर्म कहा है।[५६] इस तरह कर्म के मुख्य रूप से दो भेद हुए—द्रव्यकर्म और भावकर्म। द्रव्यकर्म के होने मे भावकर्म और भावकर्म के होने मे द्रव्यकर्म कारण है। जैसे वृक्ष से बीज और बीज से वृक्ष की परम्परा अनादिकाल से चली आ रही है, इसी प्रकार द्रव्यकर्म से भावकर्म और भावकर्म से द्रव्यकर्म का सिलसिला भी अनादि है।[५७]

कर्म के कर्तृत्व और भोक्तृत्व पर चिन्तन करते समय ससारी आत्मा और मुक्त आत्मा का अन्तर स्मरण रखना चाहिए। कर्म के कर्तृत्व और भोक्तृत्व का सम्बन्ध ससारी आत्मा से है, मुक्त आत्मा से नही। ससारी आत्मा कर्मो से वधा है। उसमे चैतन्य और जडत्व का मिश्रण है। मुक्त आत्मा कर्मों से रहित होता है, उसमे विशुद्ध चैतन्य ही होता है। बद्ध आत्मा की मानसिक वाचिक और कायिक प्रवृत्ति के कारण जो पुद्गल-परमाणु आकृष्ट होकर परस्पर एक दूसरे के साथ मिल जाते है, नीरक्षीरवत् एक हो जाते है, वे कर्म कहलाते है। इस तरह कर्म भी जड और चेतन का मिश्रण है। प्रश्न हो सकता है कि ससारी आत्मा भी जड और चेतन का मिश्रण है और कर्म मे भी वही बात है। तब दोनो मे अन्तर क्या है? उत्तर है कि ससारी आत्मा का चेतन अश जीव कहलाता है और जड अश कर्म कहलाता है। ये चेतन और जड अंश इस प्रकार के नही है जिनका ससार-अवस्था मे अलग-अलग रूप से अनुभव किया जा सके। इनका पृथक्करण मुक्तावस्था मे ही होता है। ससारी आत्मा सदैव कर्मयुक्त ही होता है। जब वह कर्म से मुक्त हो जाता है तब वह मुक्त आत्मा कहलाता है। कर्म जब आत्मा से पृथक् हो जाता है तब वह कर्म नही पुद्गल कहलाता है। आत्मा से सम्बद्ध पुद्गल द्रव्यकर्म है और द्रव्यकर्मयुक्त आत्मा की प्रवृत्ति भावकर्म है। गहराई से चिन्तन करने पर आत्मा और पुद्गल के तीन रूप होते हैं—(१) शुद्ध आत्मा—जो मुक्तावस्था मे है। (२) शुद्ध पुद्गल (३) आत्मा और पुद्गल का सम्मिश्रण—जो ससारी आत्मा मे है। कर्म के कर्तृत्व और भोक्तृत्व का सम्बन्ध आत्मा और पुद्गल की सम्मिश्रण-अवस्था मे है।

आत्मा और कर्म का सम्बन्ध

सहज जिज्ञासा हो सकती है कि अमूर्त आत्मा मूर्त कर्म के साथ किस प्रकार सम्बद्ध हो सकता है? समाधान है कि प्राय सभी आस्तिक दर्शनो ने ससार और जीवात्मा को अनादि माना है। अनादिकाल से वह कर्मो से वधा हुआ और विकारी है। कर्मवद्ध आत्माएँ कथंचित् मूर्त होती हैं। दूसरो शब्दो मे कहें तो स्वरूप से अमूर्त होने पर भी ससार-दशा मे मूर्त होती है।

जो आत्मा पूर्णरूप से कर्ममुक्त हो जाता है उसको कभी भी कर्म का वधन नही होता। अतः आत्मा और कर्म का सम्बन्ध मूर्त्त का मूर्त्त के साथ होने वाला सबध है। दोनो का अनादिकालीन सम्बन्ध चला आ रहा है।

---

५६ कर्मप्रकृति—नेमिचन्द्राचार्य विरचित ६

५७ देखिए धर्म और दर्शन, पृ ४२ देवेन्द्रमुनि शास्त्री

हम पूर्व मे वता चुके है कि मूर्त मादक द्रव्यो का असर अमूर्त ज्ञान पर होता है वैसे ही विकारी अमूर्त आत्मा पर मूर्त कर्म-पुद्गलो का प्रभाव होता है।

कर्म कौन बांधता है ?

अकर्म के कर्म का बधन नही होता। जो जीव पहले से ही कर्मो से वधा है वही जीव नये कर्मों को बाँधता है।[५८]

मोहकर्म का उदय होने पर जीव राग-द्वेप मे परिणत होता है और वह अशुभ कर्मों का वध करता है।[५९]

मोहरहित जो वीतराग जीव है वे योग के कारण शुभ कर्म का वधन करते है।[६०]

नूतन बधन का कारण पहले का वधन नही हो तो मुक्त जीव है, जिनके कर्म वँधे हुए नही हैं वे भी कर्म मे बिना वधे नही रह सकते। इस दृष्टि मे यह पूर्ण सत्य है कि बधा हुआ ही बधता है, अवधा हुआ नही वधता है।

गौतम—भगवन्! दु खी जीव दु ख से स्पृष्ट होता है या अदु खी जीव दु ख से स्पृष्ट होता है ?

भगवन्—गौतम! दु खी जीव दु ख से स्पृष्ट होता है अदु खी जीव दु ख से स्पृष्ट नही होता। दु ख का स्पर्श पर्यादान (ग्रहण) उदीरणा वेदना और निर्जरा दु खी जीव करता है, अदु खी जीव नही करता।[६१]

गौतम ने पूछा—भगवन्! कर्म कौन बाँधता है ? सयत, असयत अथवा सयतासयत ?

भगवान् ने कहा—गौतम! असयत, सयतासयत और सयत ये सभी कर्म बाँधते हैं। तात्पर्य यह है कि जो सकर्म आत्मा है वे ही कर्म बांधती है उन्ही पर कर्म का प्रभाव होता है।

कर्म वंध के कारण

जीव के साथ कर्म का अनादि सम्वन्ध है किन्तु कर्म किन कारणो से वधते हैं, यह एक सहज जिज्ञासा है। गौतम ने प्रश्न किया—भगवन्! जीव कर्मवध कैसे करता है ?

भगवान् ने उत्तर दिया—गौतम! ज्ञानावरणीय कर्म के तीव्र उदय से, दर्शनावरणीय कर्म का तीव्र उदय होता है। दर्शनावरणीय कर्म के तीव्र उदय से दर्शनमोह का उदय होता है। दर्शनमोह के तीव्र उदय से मिथ्यात्व का उदय होता है और मिथ्यात्व के उदय से जीव आठ प्रकार के कर्मो को बाँधता है।[६२]

---

५८. प्रज्ञापना २३।१।२९२

५९ भगवती ९

६० भगवती ९

६१. भगवती ७।१।२६६

६२ प्रज्ञापना २३।१।२८९

स्थानाङ्ग[६३] समवायाङ्ग[६४] मे तथा उमास्वाति ने कर्मबध के पाच कारण बताये है—(१) मिथ्यात्व, (२) अविरति, (३) प्रमाद, (४) कषाय और योग।[६५]

सक्षेप दृष्टि से कर्म वध के दो कारण है—कषाय और योग।[६६]

कर्म वध के चार भेद हैं—प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश।[६७] इनमे प्रकृति और प्रदेश का वध योग से होता है एव स्थिति व अनुभाग का बध कषाय से होता है।[६८] सक्षेप मे कहा जाय तो कषाय ही कर्मबध का मुख्य हेतु है।[६९] कषाय के अभाव मे साम्परायिक कर्म का बध नही होता। दसवें गुणस्थान तक दोनो कारण रहते है अत वहाँ तक साम्परायिक बध होता है। कषाय और योग से होने वाला वध साम्परायिक बध कहलाता है और वीतराग के योग के निमित्त से जो गमनागमन आदि क्रियाओ से कर्म वध होता है वह ईर्यापथिक बध कहलाता है।[७०] ईर्यापथ कर्म की स्थिति उत्तराध्ययन[७१] प्रज्ञापना[७२] मे दो समय की मानी है, और दिगम्बर ग्रन्थो मे एव प० सुखलाल जी[७३] ने सिर्फ एक समय की मानी है। योग होने पर भी अगर कषायाभाव हो तो उपार्जित कर्म की स्थिति या रस का वध नही होता। स्थिति और रस दोनो के बध का कारण कषाय ही है।

विस्तार से कषाय के चार भेद है—क्रोध, मान, माया और लोभ।[७४] स्थानाङ्ग और प्रज्ञापना मे कर्मवध के ये चार कारण बताये है। सक्षेप मे कषाय के दो भेद हैं—राग और द्वेष।[७५] राग और द्वेष मे भी उन चारो का समन्वय हो जाता है। राग मे माया और लोभ—तथा द्वेष मे क्रोध और

---

६३ स्थानाङ्ग ४१८

६४ समवायाङ्ग ५ समवाय

६५. तत्त्वार्थ सूत्र ८।१

६६ समवायाङ्ग २

६७ तत्त्वार्थ सूत्र ८।४

६८ (क) स्थानाङ्ग ४ स्थान
(ख) पचम कर्मग्रन्थ गा० ९६

६९ तत्त्वार्थसूत्र ८।२

७० तत्त्वार्थसूत्र ६।५

७१ उत्तराध्ययन अ० २९ पृ० ७१

७२ प्रज्ञापना २३।१३ पृ० १३७

७३ (क) समयट्ठिदिगो वधो॰ • गोम्मटसार कर्मकाड
(ख) तत्त्वार्थसूत्र प० सुखलाल जी, पृ० २१७

७४ (क) सूत्रकृताङ्ग ६।२६
(ख) स्थानाङ्ग ४।१।२५१
(ग) प्रज्ञापना २३।१।२९०

७५ उत्तराध्ययन ३२।७

मान का समावेश होता है।[७६] राग और द्वेष के द्वारा ही अष्टविध कर्मों का बंधन होता है[७७] अत राग-द्वेष को ही भाव-कर्म माना है।[७८] राग-द्वेष का मूल मोह ही है।

आचार्य हरिभद्र ने लिखा है—जिस मनुष्य के शरीर पर तेल चुपडा हुआ हो उसका शरीर उडने वाली धूल से लिप्त हो जाता है। वैसे ही राग द्वेष के भाव से आक्लिन्न हुए आत्मा पर कर्म-रज का बंध हो जाता है।[७९]

स्मरण रखना चाहिए कि मिथ्यात्व को जो कर्म-बंधन का कारण कहा है, उसमे भी राग-द्वेष ही प्रमुख हैं। राग-द्वेष की तीव्रता से ही ज्ञान विपरीत होता है। इसके अतिरिक्त जहाँ मिथ्यात्व होता है वहाँ अन्य कारण स्वत होते ही हैं। अत शब्द-भेद होने पर भी सभी का सार एक ही है। केवल संक्षेप-विस्तार के विवक्षाभेद मे उक्त कथन समझना चाहिए।

जैनदर्शन की तरह बौद्ध-दर्शन ने भी कर्म बंधन का कारण मिथ्या ज्ञान और मोह माना है।[८०] न्यायदर्शन का भी यही मन्तव्य है कि मिथ्याज्ञान ही मोह है। प्रस्तुत मोह केवल तत्त्वज्ञान की अनुत्पत्ति रूप नही है किन्तु शरीर, इन्द्रिय, मन, वेदना बुद्धि ये अनात्मा होने पर भी इनमे मैं ही हूँ ऐसा ज्ञान मिथ्याज्ञान और मोह है। यही कर्मबंधन का कारण है।[८१] वैशेषिकदर्शन भी प्रस्तुत कथन का समर्थन करता है।[८२] सांख्यदर्शन भी बंध का कारण विपर्यास मानता है[८३] और विपर्यास ही

---

७६ (क) स्थानाङ्ग २।३
(ख) प्रज्ञापना २३
(ग) प्रवचनसार गा० ९५

७७. प्रतिक्रमण सूत्रवृत्ति आचार्य नमि

७८ (क) उत्तराध्ययन ३२।७
(ख) स्थानाङ्ग २।२
(ग) समयसार गाथा ९४।९६।१०९।१७७
(घ) प्रवचनसार १।८४।८८

७९ आवश्यक टीका

८० (क) सुत्तनिपात ३।१२।३३
(ख) विसुद्धिमग्ग १७।३०२
(ग) मज्झिम निकाय महातण्हासंखयसुत्त ३८

८१ (क) न्यायभाष्य ४।२।१
(ख) न्यायसूत्र १।१।२
(ग) न्यायसूत्र ४।१।३
(घ) न्यायसूत्र ४।१।६

८२ (क) प्रशस्तपाद पृ० ५३८ विपर्यय निरूपण
(ख) प्रशस्तपाद भाष्य संसारापवर्ग प्रकरण

८३ सांख्यकारिका ४४-४७-४८

मिथ्या ज्ञान है।[८४] योगदर्शन क्लेश को बध का कारण मानता है और क्लेश का कारण अविद्या है।[८५] उपनिषद्[८६] भगवद्गीता[८७] और ब्रह्म सूत्र मे भी अविद्या को ही बध का कारण माना है।

इस प्रकार जैन दर्शन और अन्य दर्शनो मे कर्मबध के कारणो मे शब्दभेद और प्रक्रियाभेद होने पर भी मूल भावनाओ मे खास भेद नही है।

निश्चयनय और व्यवहारनय

निश्चय और व्यवहार दृष्टि से भी जैन दर्शन मे कर्म-सिद्धान्त का विवेचन किया गया है। जो पर-निमित्त के बिना वस्तु के असली तात्त्विक स्वरूप का कथन करता है वह निश्चयनय है और जो परनिमित्त की अपेक्षा से वस्तु का कथन करता है वह व्यवहारनय है। प्रश्न है कि निश्चय और व्यवहार की प्रस्तुत परिभाषा के अनुसार क्या कर्म के कर्तृत्व व भोक्तृत्व आदि का निरूपण हो सकता है? परनिमित्त के अभाव मे वस्तु के वास्तविक स्वरूप के कथन का अर्थ है शुद्ध वस्तु के स्वरूप का कथन। इस अर्थ की दृष्टि से निश्चयनय शुद्ध—आत्मा और शुद्ध-पुद्गल का ही कथन कर सकता है, पुद्गल-मिश्रित आत्मा का या आत्म-मिश्रित पुद्गल का नही। अत. कर्म के कर्तृत्व-भोक्तृत्व आदि का कथन निश्चयनय से किस प्रकार सम्भव है?[८८] चू कि कर्म का सम्बन्ध सासारिक आत्मा से है। व्यवहारनय परनिमित्त की अपेक्षा से वस्तु का निरूपण करता है अत कर्मयुक्त आत्मा का कथन व्यवहारनय से ही हो सकता है। निश्चयनय पदार्थ के शुद्ध स्वरूप का अर्थात् जो वस्तु स्वभाव से अपने आप मे जैसी है वैसी ही प्रतिपादन करता है और व्यवहारनय ससारी आत्मा जो कर्म से युक्त है उसका प्रतिपादन करता है। इस तरह निश्चय और व्यवहारनय मे किसी भी प्रकार का विरोध नही है। दोनो की विषय वस्तु भिन्न-भिन्न है उनका क्षेत्र पृथक्-पृथक् है। निश्चयनय से कर्म के कर्तृत्व और भोक्तृत्व आदि का निरूपण नही हो सकता। वह मुक्त आत्मा और पुद्गल आदि शुद्ध अजीव का ही प्रतिपादन कर सकता है।

कर्म का कर्तृत्व और भोक्तृत्व

कितने ही चिन्तको ने निश्चय और व्यवहारनय की मर्यादा को विस्मृत करके निश्चयनय से कर्म के कर्तृत्व और भोक्तृत्व का निरूपण किया है जिससे कर्म सिद्धान्त में अनेक प्रकार की समस्याएँ उत्पन्न हो गईं। इन समस्याओ का कारण है ससारी जीव और मुक्त जीव के भेद का विस्मरण और साथ ही कभी-कभी कर्म और पुद्गल का अन्तर भी भुला दिया जाता है। उन चिन्तको का मन्तव्य है कि जीव न तो कर्मों का कर्ता है और न भोक्ता ही है चू कि द्रव्य कर्म पौद्गलिक है, पुद्गल के विकार है, इसलिए पर है। उनका कर्ता चेतन जीव किस प्रकार हो सकता है? चेतन का कर्म चेतनरूप होता है और अचेतन का कर्म अचेतनरूप। यदि चेतन का कर्म भी अचेतनरूप होने लगेगा तो चेतन

---

८४ ज्ञानस्य विपर्ययोऽज्ञानम् —मराठ वृत्ति ४४

८५ योगदर्शन २।३।४

८६ कठोपनिषद् १।२।५

८७ भगद्गीता ५।१५६

८८ पचम कर्मग्रन्थ, प्रस्तावना पृ० ११

और अचेतन का भेद नष्ट होकर महान् सकर दोष उपस्थित होगा। इसलिए प्रत्येक द्रव्य स्व-भाव का कर्ता है पर-भाव का कर्ता नही।[८९]

प्रस्तुत कथन मे ससारी जीव को द्रव्य कर्मो का कर्ता व भोक्ता इसलिए नही माना गया कि कर्म पौद्गलिक है। यह किस प्रकार सम्भव है कि चेतन जीव अचेतन कर्म को उत्पन्न करे? इस हेतु मे जो ससारी अशुद्ध आत्मा है उनको शुद्ध चैतन्य मान लिया गया है और कर्म को शुद्ध पुद्गल। किन्तु सत्य तथ्य यह है कि न ससारी जीव शुद्ध चैतन्य है और न कर्म शुद्ध पुद्गल ही हैं। ससारी जीव चेतन और अचेतन द्रव्यो का मिला-जुला रूप है, इसी तरह कर्म भी पुद्गल का शुद्ध रूप नही अपितु एक विकृत अवस्था है जो ससारी जीव की मानसिक, वाचिक और कायिक प्रवृत्ति से निर्मित हुई है और उसमे संबद्ध है। जीव और पुद्गल दोनो अपनी-अपनी स्वाभाविक अवस्था मे हो तो कर्म की उत्पत्ति का कोई प्रश्न ही पैदा नही हो सकता। ससारी जीव स्वभाव मे स्थित नही है किन्तु उसकी स्व और पर-भाव की मिश्रित अवस्था है, इसलिये उसे केवल स्व-भाव का कर्ता किस प्रकार कह सकते है? जब हम यह कहते है कि जीव कर्मो का कर्ता है तो इसका तात्पर्य यह नही कि जीव पुद्गल का निर्माण करता है। पुद्गल तो पहले से ही विद्यमान हैं। उसका निर्माण जीव नही करता, जीव तो अपने सन्निकट मे स्थित पुद्गल परमाणुओ को अपनी प्रवृत्तियो से आकृष्ट कर अपने मे मिलाकर नीरक्षीवत् एक कर देता है। यही द्रव्य कर्मो का कर्तृत्व कहलाता है। ऐसी स्थिति मे यह कहना एकान्तत युक्त नही है कि जीव द्रव्य कर्मो का कर्ता नही है। यदि जीव द्रव्य कर्मों का कर्ता नही है तो फिर उसका कर्ता कौन है? पुद्गल अपने आप कर्म रूप मे परिणत नही होता, जीव ही उन्हे कर्म रूप मे परिणत करता है। दूसरा महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि द्रव्य कर्मों के कर्तृत्व के अभाव मे भाव कर्मो का कर्तृत्व किस प्रकार सम्भव हो सकता है। द्रव्य कर्म ही तो भाव कर्म को उत्पन्न करते है। सिद्ध द्रव्य कर्मो से मुक्त हैं इसलिए भावकर्मों से भी मुक्त है। जब यह सिद्ध हो जाता है कि जीव पुद्गल-परमाणुओ को कर्म के रूप मे परिणत करता है तो वह कर्म फल का भोक्ता भी सिद्ध हो जाता है। चू कि जो कर्मो से बद्ध होता है वही उनका फल भी भोगता है। इस तरह ससारी जीव कर्मों का कर्त्ता और उनके फल का भोक्ता है किन्तु मुक्त जीव न तो कर्मो का कर्ता है और न कर्मो का भोक्ता ही है।

जो विचारक जीव को कर्मो का कर्त्ता और भोक्ता नही मानते है, वे एक उदाहरण देते है। जैसे एक युवक, जिसका रूप अत्यन्त सुन्दर है, कार्यवश कही पर जा रहा है, उसके दिव्य व भव्य रूप को निहार कर एक तरुणी उस पर मुग्ध हो जाय और उसके पीछे-पीछे चलने लगे तो उस युवक का उसमे क्या कर्तृत्व है? कर्त्री तो वह युवती है। युवक तो उसमे केवल निमित्त कारण है।[९०] उसी प्रकार यदि पुद्गल जीव की ओर आकर्षित होकर कर्म के रूप मे परिवर्तित होता है तो उसमे जीव का क्या कर्तृत्व है। कर्ता तो पुद्गल स्वय है। जीव उसमे केवल निमित्त कारण है। यही बात कर्मो के भोक्तृत्व के सम्बन्ध मे भी कह सकते है। यदि यही बात है तो आत्मा न कर्ता सिद्ध होगा, न भोक्ता, न बद्ध होगा, न मुक्त, न राग-द्वेषादि भावो से युक्त सिद्ध होगा और न उनसे

---

८९ पचम कर्मग्रन्थ प्रस्तावना पृ० ११-१२

९० पचम कर्मग्रन्थ, प्रस्तावना पृ १२

रहित ही । परन्तु सत्य तथ्य यह नही है । जैसे किसी रूपवान् पर युवती मुग्ध होकर उसके पीछे हो जाती है वैसे जड पुद्गल चेतन आत्मा के पीछे नही लगते । पुद्गल अपने आप आकर्षित होकर आत्मा को पकडने के लिए नही दौडता । जीव जब सक्रिय होता है तभी पुद्गल-परमाणु उसकी ओर आकृष्ट होते हैं । अपने को उसमे मिलाकर उसके साथ एकमेक हो जाते हैं, और समय पर फल प्रदान कर उससे पुन पृथक् हो जाते हैं । इस सम्पूर्ण प्रक्रिया के लिए जीव पूर्णरूप से उत्तरदायी है । जीव की क्रिया से ही पुद्गल परमाणु उसकी ओर खिंचते हैं, सम्बद्ध होते हैं और उचित फल प्रदान करते हैं । यह कार्य न अकेला जीव ही कर सकता है और न अकेला पुद्गल ही कर सकता है । दोनो के सम्मिलित और पारस्परिक प्रभाव से ही यह सब कुछ होता है । कर्म के कर्तृत्व मे जीव की इस प्रकार की निमित्तता नही है कि जीव साख्यपुरुष की भाति निष्क्रिय अवस्था मे निर्लिप्त भाव से विद्यमान रहता हो और पुद्गल अपने आप कर्म के रूप मे परिणत हो जाते हो । जीव और पुद्गल के परस्पर मिलने से ही कर्म की उत्पत्ति होती है । एकान्त रूप से जीव को चेतन और कर्म को जड नही कह सकते । जीव भी कर्म-पुद्गल के ससर्ग के कारण कथचित् जड़ है और कर्म भी चैतन्य के ससर्ग के कारण कथचित् चेतन हैं । जब जीव और कर्म एक-दूसरे से पूर्णरूप से पृथक् हो जाते हैं, उनमे किसी प्रकार का सपर्क नही रहता है तब वे अपने शुद्ध स्वरूप मे आ जाते हैं अर्थात् जीव एकान्त रूप से चेतन हो जाता है और कर्म एकान्त रूप से जड ।

ससारी जीव और द्रव्यकर्म रूप पुद्गल के मिलने पर उसके प्रभाव से ही जीव मे राग-द्वेषादि भावकर्म की उत्पत्ति सभव है । प्रश्न है कि यदि जीव अपने शुद्ध स्वभाव का कर्ता है और पुद्गल भी अपने शुद्ध स्वभाव का कर्ता है तो राग-द्वेष आदि भावो का कर्ता कौन है ? राग-द्वेष आदि भाव न जीव के शुद्ध स्वभाव के अन्तर्गत हैं और न पुद्गल के ही शुद्ध स्वभाव के अन्तर्गत है अत उसका कर्ता किसे मानें ?

उत्तर है—चेतन आत्मा और अचेतन द्रव्यकर्म के मिश्रित रूप को ही इन अशुद्ध-वैभाविक भावो का कर्ता मान सकते है । राग-द्वेषादि भाव चेतन और अचेतन द्रव्यो के सम्मिश्रण से पैदा होते हैं वैसे ही मन, वचन और काय आदि भी । कर्मो की विभिन्नता और विविधता से ही यह सारा वैचित्र्य है ।

निश्चयदृष्टि से कर्म का कर्तृत्व और भोक्तृत्व मानने वाले चिन्तक कहते है—आत्मा अपने स्वाभाविक भाव ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदि का और वैभाविक भाव राग, द्वेष आदि का कर्ता है परन्तु उसके निमित्त से जो पुद्गल-परमाणुओ मे कर्मरूप परिणमन होता है उसका वह कर्ता नही है । जैसे घडे का कर्ता मिट्टी हैं, कुभार नही । लोक-भाषा मे कुभार को घडे का बनाने वाला कहते हैं पर इसका सार इतना ही है कि घट-पर्याय मे कुभार निमित्त है । वस्तुत. घट मृत्तिका का एक भाव है इसलिए उसका कर्त्ता भी मिट्टी ही है ।[९१]

किन्तु प्रस्तुत उदाहरण उपयुक्त नही है । आत्मा और कर्म का सम्बन्ध घड़े और कुभार के समान नही है । घडा और कुभार दोनो परस्पर एकमेक नही होते किन्तु आत्मा और कर्म नीरक्षीरवत् एकमेक हो जाते हैं । इसलिए कर्म और आत्मा का परिणमन घडा और कुभार के

९१ पचम कर्मग्रन्थ की प्रस्तावना, पृ १३

परिणमन से पृथक् प्रकार का है। कर्म-परमाणुओ और आत्म-प्रदेशो का परिणमन जड और चेतन का मिश्रित परिणमन होता है जिनमे अनिवार्य रूप से एक दूसरे से प्रभावित होते है किन्तु घडे और कु भार के सम्बन्ध मे यह बात नही है। आत्मा कर्मों का केवल निमित्त ही नही किन्तु कर्ता और भोक्ता भी है। आत्मा के वैभाविक भावो के कारण पुद्गल-परमाणु उसकी ओर आकर्षित होते है। इसलिये वह उनके आकर्षण का निमित्त है। वे परमाणु आत्म-प्रदेशो के साथ एकमेक होकर कर्म रूप मे परिणत हो जाते है, इसलिए आत्मा कर्मों का कर्ता है। वैभाविक भावो के रूप मे आत्मा को उनका फल भोगना पडता है, इसलिए वह कर्मों का भोक्ता भी है।

कर्म की मर्यादा

जैन-कर्म-सिद्धान्त का यह स्पष्ट अभिमत है कि कर्म का सम्बन्ध व्यक्ति के शरीर, मन और आत्मा मे है। व्यक्ति के शरीर, मन और आत्मा की सुनिश्चित सीमा है और वह उसी सीमा मे सीमित है। इसी प्रकार कर्म भी उसी सीमा मे अपना कार्य करता है। यदि कर्म की सीमा न माने तो आकाश के समान वह भी सर्वव्यापक हो जायेगा। सत्य तथ्य यह है कि आत्मा का स्वदेहपरिमाणत्व भी कर्म के ही कारण है। कर्म के कारण आत्मा देह मे आबद्ध है तो फिर कर्म उसे छोड कर अन्यत्र कहाँ जा सकता है? ससारी आत्मा हमेशा किसी न किसी शरीर से बद्ध रहता है और सम्बद्ध कर्म पिण्ड भी उसी शरीर की सीमाओ मे सीमित रहता है।

प्रश्न है—शरीर की सीमाओ मे सीमित कर्म अपनी सीमाओ का परित्याग कर फल दे सकता है? या व्यक्ति के तन-मन से भिन्न पदार्थों की उत्पत्ति, प्राप्ति व्यय आदि के लिये उत्तरदायी हो सकता है? जिस क्रिया या घटना-विशेष से किसी व्यक्ति का प्रत्यक्ष या परोक्ष किसी भी प्रकार का सम्बन्ध नही है उसके लिये भी क्या उस व्यक्ति के कर्म को कारण मान सकते है?

उत्तर है—जैन-कर्म-साहित्य मे कर्म के मुख्य आठ प्रकार बताये है। उसमे एक भी प्रकार ऐसा नही है, जिसका सम्बन्ध आत्मा और शरीर से पृथक् किसी अन्य पदार्थ से हो। ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय कर्म आत्मा के मूलगुण, ज्ञान, दर्शन, सुख और वीर्य का घात करते है और वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र कर्म शरीर की विभिन्न अवस्थाओ का निर्माण करते है। इस तरह आठो कर्मों का साक्षात् सम्बन्ध आत्मा और शरीर के साथ है, अन्य पदार्थों और घटनाओ के साथ नही है। परम्परा से आत्मा, शरीर-आदि के अतिरिक्त पदार्थों और घटनाओ से भी कर्मो का सम्बन्ध हो सकता है, यदि इस प्रकार सिद्ध हो सके तो।

कर्मो का सीधा सम्बन्ध आत्मा और शरीर से है तब प्रश्न उद्बुद्ध होता है कि धन-सम्पत्ति आदि की प्राप्ति को पुण्यजन्य किस कारण से माना जाता है?

उत्तर मे निवेदन है कि धन-परिजन आदि से सुख आदि की अनुभूति हो तो शुभ कर्मोदय की निमित्तता के कारण बाह्य पदार्थों को भी उपचार से पुण्यजन्य मान सकते हैं। वस्तुत पुण्य का कार्य सुख आदि की अनुभूति है, धन आदि की उपलब्धि नही। धन आदि के अभाव मे भी सुख आदि का अनुभव होता है तो उसे पुण्य या शुभ कर्मों का फल समझना चाहिये। यह सत्य है कि बाह्य पदार्थों के निमित्त बिना भी सुख आदि की अनुभूति हो सकती है। इसी तरह दुःख आदि भी हो सकता है। सुख-दु ख आदि जितनी भी शारीरिक, मानसिक और आत्मिक अनुभूति होती है उसका

मूल कारण बाह्य नही आन्तरिक है। कर्म का सम्बन्ध आन्तरिक कारण से है, बाह्य पदार्थों से नही। बाह्य पदार्थों की उत्पत्ति, विनाश और प्राप्ति अपने-अपने कारणो से होती है। हमारे कर्म हमारे तक ही सीमित रहते है, सर्वव्यापक नही है। वे हमारे शरीर और आत्मा से भिन्न अति दूर पदार्थों को किस प्रकार उत्पन्न कर सकते है, आकर्षित कर सकते हैं, हम तक पहुचा सकते है, न्यून और अधिक कर सकते है, विनष्ट कर सकते है, सुरक्षित कर सकते हैं? ये सभी कार्य अन्य कारणो से होते हैं। सुख-दुख आदि की अनुभूति मे निमित्त, सहायक या उत्तेजक होने के कारण उपचार व परम्परा से बाह्य वस्तुओ को पुण्य-पाप का परिणाम मान लेते है।

जीव की विविध अवस्थाए कर्मजन्य हैं। शरीर, इन्द्रिया, श्वासोच्छ्वास, मन-वचन आदि जीव की विविध अवस्थाए कर्म के कारण हैं। किन्तु पत्नी या पति की प्राप्ति, पुत्र-पुत्री की प्राप्ति, सयोग-वियोग, हानि-लाभ, सुकाल और दुष्काल, प्रकृति-प्रकोप, राज-प्रकोप आदि का कारण उनका अपना होता है। यह ठीक है कि कुछ कार्यों व घटनाओ मे हमारा यत्किंचित् निमित्त हो सकता है किन्तु उनका मूल स्रोत उन्ही के अन्दर है, हमारे मे नही। हम प्रिय जन, स्वजन आदि के मिलने को पुण्य कर्म मानते है और उनके वियोग को पापफल कहते है परन्तु यह मान्यता जैनदर्शन की नहीं है। पिता के पुण्य के उदय से पुत्र पैदा नही होता, और पिता के पाप के उदय से पुत्र की मृत्यु नहीं होती। पुत्र के पैदा होने और मरने मे उसका अपने कर्मों का उदय है किन्तु पिता का पुण्योदय और पापोदय साक्षात् कारण नही है। हाँ, यह सत्य है कि पुत्र पैदा होने के पश्चात् वह जीवित रहता है तो मोहनीय कर्म के कारण पिता को प्रसन्नता हो सकती है और उसके मरने पर दुख हो सकता है। इस प्रसन्नता और दुख का कारण पिता का पुण्योदय और पापोदय है और उसका निमित्त पुत्र की उत्पत्ति और मृत्यु है। इस तरह पिता के पुण्योदय और पापोदय से पुत्र की उत्पत्ति और मृत्यु नही होती किन्तु पुत्र की उत्पत्ति और मृत्यु पिता के पुण्योदय और पापोदय का निमित्त हो सकती है। इसी तरह अन्यान्य घटनाओ के सम्बन्ध मे भी जानना चाहिए। व्यक्ति का कर्मोदय, कर्मक्षय, कर्मोपशम आदि की अपनी एक सीमा है और वह सीमा है उसका शरीर, मन, वचन आदि। उस सीमा को लाघ कर कर्मोदय नही होता। साराश यह है कि अपने से पृथक् सम्पूर्ण पदार्थों की उत्पत्ति और विनाश उनके अपने कारणो से होते है, हमारे कर्म के उदय के कारण से नही।

उदय

उदय का अर्थ काल-मर्यादा का परिवर्तन है। बधे हुए कर्म-पुद्गल अपना कार्य करने मे समर्थ हो जाते हैं तब उनके निषेक[९२]—कर्म-पुद्गलो की एक काल मे उदय होने योग्य रचना-विशेष—प्रकट होने लगते हैं वह उदय है। दो प्रकार से कर्म का उदय होता है—

(१) प्राप्त-काल कर्म का उदय।
(२) अप्राप्त-काल कर्म का उदय।

कर्म का बध होते ही उसमे उसी समय विपाक-प्रदान का आरभ नही हो जाता। वह निश्चित अवधि के पश्चात् विपाक देता है। वह बीच की अवधि 'अबाधाकाल' कहलाती है। उस

९२ कर्म-निषेको नाम-दलिकस्य अनुभवनार्थं रचना-विशेष —भगवती ६।३।२३६ वृत्ति

समय कर्म का अवस्थान-मात्र होता है। अबाधा का अर्थ अन्तर है। वध और उदय के अन्तर का जो काल है, वह अवाधाकाल है।[93]

लम्वे काल और तीव्र अनुभाग वाले कर्म तप आदि साधना के द्वारा विफल बना कर स्वल्प समय मे भोग लिए जाते हैं। आत्मा शीघ्र निर्मल हो जाती है।

यदि स्वाभाविक रूप से ही कर्म उदय मे आएँ तो आकस्मिक घटनाओ की सम्भावना एवं तप आदि साधना की प्रयोजकता ही नष्ट हो जाती है, परन्तु अपवर्तना से कर्म की उदीरणा या अप्राप्तकाल उदय होता है। अत. आकस्मिक घटनाओ से कर्म-सिद्धान्त के प्रति सन्देह उत्पन्न नही हो सकता। तप आदि साधना की सफलता का भी यही मुख्य कारण है।

कर्म का परिपाक और उदय सहेतुक भी होता है और निर्हेतुक भी। अपने आप भी होता है और दूसरो के द्वारा भी। किसी बाह्य कारण के अभाव मे भी क्रोध—वेदनीय-पुद्गलो के तीव्र विपाक से अपने आप क्रोध आ गया—यह उनका निर्हेतुक उदय है।[94] इसी तरह हास्य[95] भय, वेद, और कषाय के पुद्गलो का भी उदय होता है।[96]

स्वतः उदय मे आने वाले कर्म के हेतु

गतिहेतुक उदय—नरक गति मे असाता का तीव्र उदय होता है। इसे गतिहेतुक विपाक कहते हैं।

स्थितिहेतुक उदय—मोहकर्म की उत्कृष्टतम स्थिति मे मिथ्यात्व मोह का तीव्र उदय होता है। यह स्थितिहेतुक विपाक-उदय है।

भवहेतुक उदय—दर्शनावरण (जिसके उदय से नीद आती है) यह सभी ससारी जीवो मे होता है तथापि मनुष्य और तिर्यंच दोनो को ही नीद आती है देव, नारक को नही। यह भव-हेतुक विपाक उदय है।

गति, स्थिति और भव के कारण से कितने ही कर्मों का स्वत विपाक-उदय हो जाता है।

दूसरो द्वारा उदय मे आने वाले कर्म के हेतु

पुद्गलहेतुक उदय—किसी ने पत्थर फेंका, घाव हो गया, असाता का उदय हो आया। यह दूसरो के द्वारा किया हुआ असात-वेदनीय का पुद्गल-हेतुक विपाक-उदय है।

किसी ने अपशव्द कहा, क्रोध आ गया। यह क्रोध-वेदनीय-पुद्गलो का सहेतुक विपाक-उदय है।

पुद्गल-परिणाम के द्वारा होने वाला उदय—बढिया भोजन किया किन्तु न पचने से अजीर्ण हो गया। उससे रोग उत्पन्न हुए। यह असात-वेदनीय का विपाक-उदय है।

---

९३ बाधा—कर्मण उदय, न बाधा अबाधा-कर्मणो बधस्योदयस्य चान्तरम्। —भगवती ६।३।२३६

९४ स्थानाङ्ग ४।७६ वृत्ति पत्र १८२

९५ स्थानाङ्ग ४

९६ स्थानाङ्ग ४।७५-७९

मदिरा आदि नशीली वस्तु का उपयोग किया, उन्माद छा गया। यह ज्ञानावरण का विपाक-उदय हुआ। यह पुद्गल-परिणमन-हेतुक-विपाक-उदय है।

इस तरह विविध हेतुओ से कर्मो का विपाक-उदय होता है।[९७]

यदि ये हेतु प्राप्त नही होते तो कर्मो का विपाक रूप मे उदय नही होता। उदय का दूसरा प्रकार है प्रदेशोदय। इसमे कर्म-फल का स्पष्ट अनुभव नही होता है। यह कर्मवेदन की अस्पष्टानुभूति वाली दशा है। जो कर्म-बध होता है वह अवश्य ही भोगा जाता है।

गौतम ने जिज्ञासा प्रस्तुत की—भगवन्! किये हुए पाप-कर्म भोगे विना नही छूटते, क्या?

भगवान् ने समाधान करते हुए कहा—हाँ गौतम! यह सत्य है। गौतम ने पुन प्रश्न किया—कैसे, भगवन्?

भगवान् ने उत्तर दिया—गौतम! मैंने दो प्रकार के कर्म वतलाये हैं—(१) प्रदेश-कर्म और (२) अनुभाग-कर्म। जो प्रदेश-कर्म है वे अवश्य ही भोगे जाते है तथा जो अनुभाग कर्म है वे अनुभाग (विपाक) रूप मे कुछ भोगे जाते है, कुछ नही भोगे जाते।[९८]

पुरुषार्थ से भाग्य मे परिवर्तन हो सकता है

वर्तमान मे हम जो पुरुषार्थ करते है उसका फल अवश्य ही प्राप्त होता है। भूतकाल की दृष्टि से उसका महत्त्व है भी और नही भी है। वर्तमान मे किया गया पुरुषार्थ यदि भूतकाल मे किये गये पुरुषार्थ से दुर्बल है तो वह भूतकाल के किये गये पुरुषार्थ पर नही छा सकता। यदि वर्तमान मे किया गया पुरुषार्थ भूतकाल के पुरुषार्थ से प्रवल है तो वह भूतकाल के पुरुषार्थ को अन्यथा भी कर सकता है।

कर्म की केवल बध और उदय ये दो ही अवस्थाएँ होती तो वद्ध कर्म मे परिवर्तन को अवकाश नही होता किन्तु अन्य अवस्थाएँ भी हैं—

(१) अपवर्तना—इससे कर्म-स्थिति का अल्पीकरण [स्थितिघात और रस का मन्दीकरण (रसघात)] होता है।

(२) उद्वर्तना से कर्म-स्थिति का दीर्घीकरण और रस का तीव्रीकरण होता है।

(३) उदीरणा से दीर्घकाल के पश्चात् उदय मे आने वाले कर्म शीघ्र—तत्काल उदय मे आ जाते हैं।

(४) एक कर्म शुभ होता है और उसका विपाक भी शुभ होता है। एक कर्म शुभ होता है, उसका विपाक अशुभ होता है। एक कर्म अशुभ होता है उसका विपाक शुभ होता है, एक कर्म अशुभ होता है और उसका विपाक भी अशुभ होता है। जो कर्म शुभ रूप मे वधता है, शुभ रूप मे ही उदय मे आता है, वह शुभ है और शुभ विपाक वाला है। जो कर्म शुभ रूप मे वधता है, अशुभ रूप मे उदय मे आता है वह शुभ और अशुभ विपाक वाला है। जो कर्म अशुभ रूप मे वधता है, शुभ रूप

---

९७ प्रज्ञापना २३।१।२९३

९८ भगवती १।४।४ वृत्ति

कालोदायी ने निवेदन किया—भगवन् ! क्या जीवों के किये हुए कल्याण-कर्मों का परिपाक कल्याणकारी होता है ?

भगवान् ने कहा—हाँ होता है।

कालोदायी ने पुनः प्रश्न किया—भगवन् ! कैसे होता है ?

भगवान् ने कहा—कालोदायी ! प्रणातिपातविरतिं यावत् मिथ्यादर्शनशल्य से विरति आपातभद्र प्रतीत नहीं होती, पर परिणामभद्र होती है। इसी प्रकार हे कालोदायी ! कल्याणकर्म भी कल्याणविपाक वाले होते हैं।

जैसे गणित करने वाली मशीन जड़ होने पर भी अंक गिनने में भूल नहीं करती वैसे ही कर्म भी जड़ होने पर भी फल देने में भूल नहीं करता। उसके लिए ईश्वर को नियंता मानने की आवश्यकता नहीं है। आखिर ईश्वर वही फल प्रदान करेगा जैसे जीव के कर्म होंगे, कर्म के विपरीत वह कुछ भी देने में समर्थ नहीं होगा। इस प्रकार एक ओर ईश्वर को सर्वशक्तिमान् मानना और दूसरी ओर उसे अणुमात्र भी परिवर्तन का अधिकार न देना वस्तुतः ईश्वर का उपहास है। इससे यह भी सिद्ध है कि कर्म की शक्ति ईश्वर से भी अधिक है और ईश्वर भी उसके अधीन ही कार्य करता है। दूसरी दृष्टि से कर्म में भी कुछ करने-धरने की शक्ति नहीं माननी होगी, क्योंकि वह ईश्वर के सहारे ही अपना फल दे सकता है। इस प्रकार दोनों एक दूसरे के अधीन हो जाएंगे। इससे तो यही तर्कसंगत है कि कर्म को ही अपना फल देने वाला स्वीकार किया जाय। इससे ईश्वर का ईश्वरत्व भी अक्षुण्ण रहेगा और कर्मवाद के सिद्धान्त में भी किसी प्रकार की बाधा समुपस्थित नहीं होगी। जैन संस्कृति की चिन्तनधारा प्रस्तुत कथन का ही समर्थन करती है।

कर्म का संविभाग नहीं

वैदिकदर्शन का यह मन्तव्य है कि आत्मा सर्वशक्तिमान ईश्वर के हाथ की कठपुतली है। उसमें स्वयं कुछ भी कार्य करने की क्षमता नहीं है। स्वर्ग और नरक में भेजने वाला, सुख और दुःख को देने वाला ईश्वर है। ईश्वर की प्रेरणा से ही जीव स्वर्ग और नरक में जाता है।[११४]

जैन-दर्शन के कर्म सिद्धान्त ने प्रस्तुत कथन का खण्डन करते हुए कहा है—ईश्वर किसी का उत्थान और पतन करने वाला नहीं है। वह तो वीतराग है। आत्मा ही अपना उत्थान और पतन करता है। जब आत्मा स्वभाव-दशा में रमण करता है तब उत्थान करता है और जब विभाव-दशा में रमण करता है तब उसका पतन होता है। विभावदशा में रमण करने वाला आत्मा ही वैतरणी नदी और कूटशाल्मली वृक्ष है और स्वभाव-दशा में रमण करने वाला आत्मा कामधेनु और नन्दन वन है।[११५] यह आत्मा सुख और दुःख का कर्ता भोक्ता स्वयं ही है। शुभ मार्ग पर चलने वाला आत्मा अपना मित्र है और अशुभ मार्ग पर चलने वाला आत्मा स्वयं ही अपना शत्रु है।[११६]

---

११४. महाभारत वनपर्व अ. ३, श्लोक २८

११५. उत्तराध्ययन २०।३६

११६. उत्तराध्ययन २०।३७

अधीन ही होता है और जब जीव प्रबल पुरुषार्थ के साथ मनोवल और शरीर-वल आदि सामग्री के सहयोग से सत् प्रयास करता है तब कर्म उसके अधीन होता है। जैसे—उदयकाल से पहले कर्म को उदय मे लाकर नष्ट कर देना, उसकी स्थिति और रस को मन्द कर देना। पूर्ववद्ध कर्मो की स्थिति और फल-शक्ति नष्ट कर उन्हे बहुत ही शीघ्र नष्ट करने के लिए तपस्या की जाती है।

पातञ्जल योगभाष्य मे भी अदृष्टजन्य वेदनीय कर्म की तीन गतियाँ निरूपित की गई है। उनमे एक गति यह है—कई कर्म बिना फल दिये ही प्रायश्चित्त आदि के द्वारा नष्ट हो जाते है।[101] इसे जैन-पारिभाषिक शब्दो मे प्रदेशोदय कहा है।

उदीरणा

गौतम ने भगवान् से प्रश्न किया—भगवन्! जीव उदीर्ण कर्म-पुद्गलो की उदीरणा करता है? अथवा अनुदीर्ण कर्म-पुद्गलो की उदीरणा करता है? उत्तर मिला—जीव अनुदीर्ण पर उदीरणा-योग्य कर्म-पुद्गलो की उदीरणा करता है।

(१) उदीर्ण कर्म-पुद्गलो की पुन उदीरणा की जाय तो उस उदीरणा की कही पर भी परि-समाप्ति नही हो सकती। अत उदीर्ण की उदीरणा नही होती।

(२) जिन कर्म-पुद्गलो की उदीरणा वर्तमान मे नही पर सूदूर भविष्य मे होने वाली है या जिसकी उदीरणा[102] नही होने वाली है, उन अनुदीर्ण—कर्म-पुद्गलो की भी उदीरणा नही हो सकती है।

(३) जो कर्म-पुद्गल उदय मे आ चुके है (उदयानन्तर पश्चात्-कृत) वे शक्तिहीन हो गये हैं, उनकी भी उदीरणा नही होती।

(४) जो कर्म-पुद्गल वर्तमान मे उदीरणा-योग्य (अनुदीर्ण किन्तु उदीरणा-योग्य) है उन्ही की उदीरणा होती है।

उदीरणा का कारण

कर्म जब स्वाभाविक रूप से उदय मे आते है तव नवीन पुरुपार्थ की आवश्यकता नही होती। अबाधा स्थिति पूर्ण होते ही कर्म-पुद्गल स्वत उदय मे आ जाते हैं। स्थिति-क्षय से पूर्व उदीरणा द्वारा उदय मे लाये जा सकते हैं। एतदर्थ इसमे विशेष प्रयत्न या पुरुषार्थ की आवश्यकता होती है।[103]

इसमे भाग्य और पुरुषार्थ का समन्वय है। पुरुपार्थ से कर्म मे भी परिवर्तन हो सकता है, यह बात पूर्ण रूप से स्पष्ट है।

कर्म की उदीरणा 'करण' से होती है। करण का अर्थ 'योग' है। योग के तीन प्रकार है—मन, वचन और काय।

---

१०१ कृतस्याऽविपक्वस्य नाश अदत्तफलस्य कस्यचित् पापकर्मण
प्रायश्चित्तादिना नाश इत्येका गतिरित्यर्थ। —पातजलयोग २।१३ भाष्य

१०२ भगवती १।३।३५

१०३ भगवती १।३।३५

उत्थान, वल, वीर्य आदि इन्ही के प्रकार हैं। योग शुभ और अशुभ दोनो प्रकार का है। मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय रहित योग शुभ है और इनसे सहित योग अशुभ है। सत् प्रवृत्ति शुभ योग है और असत् प्रवृत्ति अशुभ योग है। सत् प्रवृत्ति और असत् प्रवृत्ति दोनो से उदीरणा होती है।[१०४]

वेदना

गौतम ने भगवान् से पूछा—भगवन्! अन्य यूथिको का यह अभिमत है कि सभी जीव एव-भूत वेदना (जिस प्रकार कर्म बाधा है उसी प्रकार) भोगते है—क्या यह कथन उचित है?

भगवन् ने कहा—गौतम! अन्य यूथिको का प्रस्तुत एकान्त कथन मिथ्या है। मेरा यह अभिमत है कि कितने ही जीव एवभूत-वेदना भोगते हैं और कितने ही जीव अन-एवभूत-वेदना भी भोगते है।

गौतम ने पुन. प्रश्न किया—भगवन्! यह कैसे?

भगवान् ने कहा—गौतम! जो जीव किये हुए कर्मों के अनुसार ही वेदना भोगते हैं वे एव-भूत-वेदना भोगते है और जो जीव किये हुए कर्मों से अन्यथा वेदना भोगते हैं वे अन-एवभूत-वेदना भोगते हैं।

निर्जरा

आत्मा और कर्म्माण वर्गणा के परमाणु, ये दोनो पृथक् हैं। जव तक पृथक् रहते है तव तक आत्मा, आत्मा है और परमाणु-परमाणु है। जव दोनो का सयोग होता है तव परमाणु 'कर्म' कहलाते हैं।

कर्म-प्रायोग्य-परमाणु जव-आत्मा मे चिपकते हैं तव वे कर्म कहलाते हैं। उस पर अपना प्रभाव डालने के पश्चात् वे अकर्म हो जाते है। अकर्म होते ही वे आत्मा से अलग हो जाते है। इस अलगाव का नाम निर्जरा है।

कितने ही फल टहनी पर पककर टूटते है तो कितने ही फल प्रयत्न से पकाये जाते है। दोनो ही फल पकते है किन्तु दोनो के पकने की प्रक्रिया पृथक्-पृथक् है। जो सहज रूप से पकता है उसके पकने का समय लम्बा होता है और जो प्रयत्न से पकाया जाता है उसके पकने का समय कम होता है। कर्म का परिपाक ठीक इसी-प्रकार होता है। निश्चित काल-मर्यादा से जो कर्म-परिपाक होता है वह निर्जरा विपाकी-निर्जरा कहलाती है। इसके लिए किसी भी प्रकार का नवीन प्रयत्न नही करना पडता इसलिए यह निर्जरा न धर्म है और न अधर्म है।

निश्चित काल-मर्यादा मे पूर्व शुभ-योग के द्वारा कर्म का परिपाक होकर निर्जरा होती है वह अविपाकी निर्जरा कहलाती है। यह निर्जरा सहेतुक है। इसका हेतु शुभ-प्रयास है, अत धर्म है।

आत्मा पहले या कर्म?

आत्मा पहले है या कर्म पहले है? दोनो मे पहले कौन है और पीछे कौन है? यह एक प्रश्न है।

---

१०४ भगवती १।३।३५

उत्तर है—आत्मा और कर्म दोनो अनादि है। कर्मसन्तति का आत्मा के साथ अनादि काल से सम्बन्ध है। प्रतिपल-प्रतिक्षण जीव नूतन कर्म बाधता रहता है। ऐसा कोई भी क्षण नही, जिस समय सासारिक जीव कर्म नही बाधता हो। इस दृष्टि से आत्मा के साथ कर्म का सम्वन्ध सादि भी कहा जा सकता है पर कर्म-सन्तति की अपेक्षा आत्मा के साथ कर्म का सम्वन्ध अनादि है।[१०५]

अनादि का अन्त कैसे ?

प्रश्न है—जब आत्मा के साथ कर्म का सम्वन्ध अनादि है तव उसका अन्त कैसे हो सकता है? क्योकि जो अनादि होता है उसका नाश नही होता।

उत्तर है—अनादि का अन्त नही होता, यह सामुदायिक नियम है, जो जाति से सम्वन्ध रखता है। व्यक्ति विशेष पर यह नियम लागू नही भी होता। स्वर्ण और मिट्टी का सम्वन्ध अनादि है तथापि वे पृथक्-पृथक् होते है। वैसे ही आत्मा और कर्म के अनादि सम्वन्ध का अन्त होता है।[१०६] यह भी स्मरण रखना चाहिए कि व्यक्ति रूप से कोई भी कर्म अनादि नही है। किसी एक कर्मविशेष का अनादि काल से आत्मा के साथ सम्बन्ध नही है। पूर्वबद्ध कर्म स्थिति पूर्ण होने पर कर्म आत्मा से पृथक् हो जाते है। नवीन कर्म का बन्धन होता रहता है। इस प्रकार प्रवाह रूप से आत्मा के साथ कर्मों का सम्बन्ध अनादि काल से है[१०७] न कि व्यक्तिश.। अत अनादिकालीन कर्मो का अन्त होता है। सवर के द्वारा नये कर्मों का प्रवाह रुकता है और तप द्वारा सचित कर्म नष्ट होते है। तव आत्मा मुक्त बन जाता है।[१०८]

आत्मा बलवान या कर्म

आत्मा और कर्म इन दोनो मे अधिक शक्ति-सम्पन्न कौन है? क्या आत्मा वलवान् है या कर्म वलवान् है?

समाधान है—आत्मा भी बलवान् है और कर्म भी वलवान् है। आत्मा मे अनन्त शक्ति है तो कर्म मे भी अनन्त शक्ति है। कभी जीव काल आदि लब्धियो की अनुकूलता होने पर कर्मों को पछाड देता है और कभी कर्मों की वहुलता होने पर जीव उनसे दव जाता है।[१०९]

वहिर्दृष्टि से कर्म वलवान् प्रतीत होते है पर अन्तर्दृष्टि से आत्मा ही वलवान् है क्योकि कर्म का कर्ता आत्मा है। वह मकडी की तरह स्वय कर्मो का जाल फैला कर उनमे उलझता है। यदि वह चाहे तो कर्मो को काट भी सकता है। कर्म चाहे कितने भी शक्तिशाली हो पर आत्मा उससे भी अधिक शक्तिसम्पन्न है।

---

१०५ परमात्मप्रकाश १।५९।६०

१०६ द्वयोरप्यनादिसम्बन्ध कनकोपल-सन्निभ ।

१०७ (क) पचाध्यायी २।४५, प राजमल

(ख) लोकप्रकाश ४२४

(ग) स्थानाङ्ग १।४।७ टीका

१०८ उत्तराध्ययन २५।४५

१०९ गणधरवाद २-२५

लौकिक दृष्टि से पत्थर कठोर है और पानी मुलायम है किन्तु मुलायम पानी पत्थर के भी टुकडे-टुकडे कर देता है। कठोर चट्टानो मे भी छेद कर देता है। वैसे ही आत्मा की शक्ति कर्म से अधिक है। वीर हनुमान को जब तक स्व-स्वरूप का परिज्ञान नही हुआ तब तक वह नाग-पाश मे बधा रहा रावण की ठोकरें खाता रहा, अपमान के जहरीले घूट पीता रहा, किन्तु ज्यो ही उसे स्वरूप का ज्ञान हुआ, त्यों ही नाग-पाश को तोडकर मुक्त हो गया। आत्मा को भी जब तक अपनी विराट् शक्ति का ज्ञान नही होता तब तक वह भी कर्मो को अपने से अधिक शक्तिमान् समझकर उनसे दबा रहता है, ज्ञान होने पर उनसे मुक्त हो जाता है।

ईश्वर और कर्मवाद

जैनदर्शन का यह स्पष्ट मन्तव्य है कि जीव स्वय जैसा कर्म करता है वैसा ही उसे फल प्राप्त होता है।[110] न्यायदर्शन[111] की तरह वह कर्मफल का नियन्ता ईश्वर को नही मानता। कर्म-फल का नियमन करने के लिए ईश्वर की आवश्यकता नही है। कर्म-परमाणुओ मे जीवात्मा के सम्बन्ध से एक विशिष्ट परिणाम समुत्पन्न होता है।[112] जिससे वह द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, भव, गति, स्थिति, प्रभृति उदय के अनुकूल सामग्री से विपाक-प्रदर्शन मे समर्थ होकर आत्मा के सस्कारो को मलिन करता है। उससे उनका फलोपभोग होता है। पीयूष और विष, पथ्य और अपथ्य भोजन मे कुछ भी ज्ञान नहीं होता तथापि आत्मा का सयोग पाकर वे अपनी-अपनी प्रकृति के अनुकूल विपाक उत्पन्न करते है। वह विना किसी प्रेरणा अथवा विना ज्ञान के अपना कार्य करते ही है। अपना प्रभाव डालते ही है।[113]

कालोदायी अनगार ने भगवान् श्री महावीर से प्रश्न किया—भगवन्! क्या जीवो के किये गये पाप कर्मो का परिपाक पापकारी होता है।

भगवान् ने उत्तर दिया—कालोदायी! हाँ, होता है।

कालोदायी ने पुन जिज्ञासा व्यक्त की—भगवन्! किस प्रकार होता है?

भगवान् ने रूपक की भाषा मे समाधान करते हुए कहा—कालोदायी! जिस प्रकार कोई पुरुप मनोज्ञ, सम्यक् प्रकार से पका हुआ शुद्ध अष्टादश व्यजनो से परिपूर्ण विपयुक्त भोजन करता है। वह भोजन आपातभद्र—खाते समय अच्छा होता है—किन्तु ज्यो-ज्यो उसका परिणमन होता है त्यो-त्यो उसमे विकृति उत्पन्न होती है। वह परिणामभद्र नही होता। इसी प्रकार प्राणातिपात आदि अठारह प्रकार के पापकर्म आपातभद्र और परिणाम-अभद्र होते है। कालोदायी, इसी प्रकार पापकर्म पाप-विपाक वाले होते है।

---

११० उत्तराध्ययन सूत्र २०।३७

१११. (क) न्यायदर्शन सूत्र ४।१

(ख) गौतमसूत्र अ ४। आ १, सू. २१

११२. भगवती ७।१०

११३ भगवती ७।१०

कालोदायी ने निवेदन किया—भगवन् ! क्या जीवो के किये हुए कल्याण-कर्मो का परिपाक कल्याणकारी होता है ?

भगवान् ने कहा—हाँ होता है ।

कालोदायी ने पुन प्रश्न किया—भगवन् ! कैसे होता है ?

भगवान् ने कहा—कालोदायी ! प्रणातिपातविरति यावत् मिथ्यादर्शनशल्य से विरति आपातभद्र प्रतीत नही होती, पर परिणामभद्र होती है । इसी प्रकार हे कालोदायी ! कल्याणकर्म भी कल्याणविपाक वाले होते है ।

जैसे गणित करने वाली मशीन जड होने पर भी अक गिनने मे भूल नही करती वैसे ही कर्म भी जड होने पर भी फल देने मे भूल नही करता । उसके लिए ईश्वर को नियता मानने की आवश्यकता नही है । आखिर ईश्वर वही फल प्रदान करेगा जैसे जीव के कर्म होंगे, कर्म के विपरीत वह कुछ भी देने मे समर्थ नही होगा । इस प्रकार एक ओर ईश्वर को सर्वशक्तिमान् मानना और दूसरी ओर उसे अणुमात्र भी परिवर्तन का अधिकार न देना वस्तुत ईश्वर का उपहास है । इससे यह भी सिद्ध है कि कर्म की शक्ति ईश्वर से भी अधिक है और ईश्वर भी उसके अधीन ही कार्य करता है । दूसरी दृष्टि से कर्म मे भी कुछ करने-धरने की शक्ति नही माननी होगी, क्योंकि वह ईश्वर के सहारे ही अपना फल दे सकता है । इस प्रकार दोनो एक दूसरे के अधीन हो जाएगे । इससे तो यही तर्कसंगत है कि कर्म को ही अपना फल देने वाला स्वीकार किया जाय । इससे ईश्वर का ईश्वरत्व भी अक्षुण्ण रहेगा और कर्मवाद के सिद्धान्त मे भी किसी प्रकार की बाधा समुपस्थित नही होगी । जैन सस्कृति की चिन्तनधारा प्रस्तुत कथन का ही समर्थन करती है ।

कर्म का सविभाग नहीं

वैदिकदर्शन का यह मन्तव्य है कि आत्मा सर्वशक्तिमान ईश्वर के हाथ की कठपुतली है । उसमे स्वय कुछ भी कार्य करने की क्षमता नही है । स्वर्ग और नरक मे भेजने वाला, सुख और दु ख को देने वाला ईश्वर है । ईश्वर की प्रेरणा से ही जीव स्वर्ग और नरक मे जाता है ।[११४]

जैन-दर्शन के कर्म सिद्धान्त ने प्रस्तुत कथन का खण्डन करते हुए कहा है—ईश्वर किसी का उत्थान और पतन करने वाला नही है । वह तो वीतराग है । आत्मा ही अपना उत्थान और पतन करता है । जब आत्मा स्वभाव-दशा मे रमण करता है तब उत्थान करता है और जब विभाव-दशा मे रमण करता है तब उसका पतन होता है । विभावदशा मे रमण करने वाला आत्मा ही वैतरणी नदी और कूटशाल्मली वृक्ष है और स्वभाव-दशा मे रमण करने वाला आत्मा कामधेनु और नन्दन वन है ।[११५] यह आत्मा सुख और दु ख का कर्ता भोक्ता स्वय ही है । शुभ मार्ग पर चलने वाला आत्मा अपना मित्र है और अशुभ मार्ग पर चलने वाला आत्मा स्वय ही अपना शत्रु है ।[११६]

---

११४ महाभारत वनपर्व अ ३, श्लोक २८

११५. उत्तराध्ययन २०।३६

११६ उत्तराध्ययन २०।३७

जैनदर्शन का यह स्पष्ट उद्‌घोष है कि जो भी सुख और दु ख प्राप्त हो रहा है उसका निर्माता आत्मा स्वय ही है। जैसा आत्मा कर्म करेगा वैसा ही उसे फल भोगना पडेगा।[११७] वैदिक-दर्शन और बौद्धदर्शन की तरह वह कर्म फल के सविभाग मे विश्वास नही करता। विश्वास ही नही अपितु उस विचारधारा का खण्डन भी करता है।[११८] एक व्यक्ति का कर्म दूसरे व्यक्ति मे विभक्त नही किया जा सकता। यदि विभाग को स्वीकार किया जायेगा तो पुरुषार्थ और साधना का मूल्य ही क्या है ? पाप-पुण्य करेगा कोई और भोगेगा कोई और। अत यह सिद्धान्त युक्ति-युक्त नही है।[११९]

कर्म का कार्य

कर्म का मुख्य कार्य है—आत्मा को ससार मे आबद्ध रखना। जब तक कर्म-बध की परम्परा का प्रवाह प्रवहमान रहता है तब तक आत्मा मुक्त नही बन सकता। यह कर्म का सामान्य कार्य है। विशेष रूप से देखा जाय तो भिन्न-भिन्न कर्मों के भिन्न-भिन्न कार्य हैं। जितने कर्म है उतने ही कार्य हैं।

आठ कर्म

जैन कर्मशास्त्र की दृष्टि से कर्म की आठ मूल प्रकृतियाँ है, जो प्राणी को विभिन्न प्रकार के अनुकूल और प्रतिकूल फल प्रदान करती हैं। उनके नाम ये है—(१) ज्ञानावरण, (२) दर्शनावरण, (३) वेदनीय, (४) मोहनीय, (५) आयु, (६) नाम, (७) गोत्र (८) और अन्तराय।[१२०]

इन आठ कर्म-प्रकृतियो के भी दो अवान्तर भेद है। इनमे चार घाती है और चार अघाती हैं। (१) ज्ञानावरण, (२) दर्शनावरण, (३) मोहनीय, (४) अन्तराय ये चार घाती हैं।[१२१] (१) वेदनीय, (२) आयु, (३) नाम, (४) गोत्र—ये अघाती है।[१२२]

जो कर्म आत्मा से बधकर उसके स्वरूप का या उसके स्वाभाविक गुणो का घात करते हैं वे घाती कर्म है। इनकी अनुभाग-शक्ति का सीधा असर आत्मा के ज्ञान आदि गुणो पर होता है। इनसे गुणविकास अवरुद्ध होता है। जैसे बादल सूर्य के चमचमाते प्रकाश को आच्छादित कर देता है। उसकी रश्मियों को बाहर नही आने देता वैसे ही घाती कर्म आत्मा के मुख्य गुण (१) अनन्तज्ञान, (२) अनन्तदर्शन, (३) अनन्तसुख, (४) और अनन्त वीर्य गुणो को प्रकट नही होने देता। ज्ञान-दर्शनावरणीय कर्म आत्मा मे अनन्त ज्ञान-दर्शन शक्ति के प्रादुर्भाव को रोकते हैं। मोहनीय कर्म आत्मा के सम्यक् श्रद्धा और सम्यक् चारित्र गुण का अवरोध करता है जिससे आत्मा को अनन्त सुख

---

११७. उत्तराध्ययन ४।४

११८. आत्ममीमासा-प दलसुख मालवणिया पृ १३१

११९. द्वात्रिंशिका, आचार्य अमितगति ३०-३१

१२० (क) उत्तराध्ययन ३३।२-३
(ख) स्थानाङ्ग ८। ३। ५७६
(ग) प्रज्ञापना २३।१
(घ) भगवती ५।९। पृ ४५३

१२१ (क) पचाध्यायी २।९९८ (ख) गोमटसार-कर्मकाण्ड ९

१२२ पचाध्यायी २।९९९

प्राप्त नही होता। अन्तराय कर्म आत्मा की अनन्तवीर्य शक्ति आदि का प्रतिघात करता है जिससे आत्मा अपनी अनन्त विराट् शक्ति का विकास नही कर पाता। इस प्रकार घाती-कर्म आत्मा के विभिन्न गुणो का घात करते हैं।

जो कर्म आत्मा के निजगुण का घात नही कर केवल आत्मा के प्रतिजीवी गुणो का घात करता है वह अघाती कर्म है। अघाती कर्मों का सीधा सम्बन्ध पौद्गलिक द्रव्यो से होना है। इनकी अनुभाग शक्ति जीव के गुणो पर सीधा असर नही करती। अघाती कर्मों के उदय से आत्मा का पौद्गलिक द्रव्यो से सम्बन्ध जुडता है, जिससे आत्मा "अमूर्तोऽपि मूर्त इव" रहती है। उसे शरीर के कारागृह मे बद्ध रहना पडता है। जो जीव के गुण (१) अव्याबाध सुख, (२) अटल अवगाह व (३) अमूर्तिकत्व और (४) अगुरुलघुभाव को प्रकट नही होने देता। वेदनीय कर्म आत्मा के अव्याबाध सुख को आच्छादित करता है। आयुष्यकर्म आत्मा की अटल अवगाहना, शाश्वत स्थिरता को नही होने देता। नाम कर्म आत्मा की अरूपी अवस्था को आवृत किये रहता है। गोत्र कर्म आत्मा के अगुरु-लघुभाव को रोकता है। इस प्रकार अघाती कर्म अपना प्रभाव दिखाते हैं। जब घाती कर्म नष्ट हो जाते है तब आत्मा केवलज्ञान केवलदर्शन का धारक अरिहन्त बन जाता है और जब अघाती कर्म नष्ट हो जाते हैं तब विदेह सिद्ध बुद्ध और मुक्त हो जाता है।

आठो कर्मो की अवान्तर अनेक उत्तर प्रकृतियाँ है। विस्तार भय से हम उन सभी का यहाँ पर निरूपण नही कर रहे हैं।

कर्मफल की तीव्रता-मन्दता

कर्मफल की तीव्रता और मन्दता का मूल आधार तन्निमित्तक कषायो की तीव्रता और मन्दता है। कषायो की तीव्रता जिस प्राणी मे जितनी अधिक होगी उतना ही अशुभ कर्म प्रबल होगा और कषायो की मन्दता जिस प्राणी मे जितनी अधिक होगी उसके पुण्य कर्म उतने ही प्रबल होंगे।

कर्मों के प्रदेश: विभाजन

प्राणी मानसिक वाचिक और कायिक क्रियाओ द्वारा जिन कर्मप्रदेशो का सग्रह करता है वे प्रदेश नाना रूपो मे विभक्त होकर आत्मा के साथ बद्ध हो जाते हैं। आठ कर्मो मे आयु कर्म को सबसे कम हिस्सा प्राप्त होता है। नाम और गोत्र दोनो का हिस्सा बराबर होता है। उसमे कुछ अधिक भाग ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अन्तराय कर्मों को प्राप्त होता है। इन तीनो का हिस्सा समान रहता है। उससे अधिक भाग मोहनीय कर्म को मिलता है। सबसे अधिक भाग वेदनीय कर्म को मिलता है। इन प्रदेशो का पुन: उत्तर-प्रकृतियो मे विभाजन होता है। प्रत्येक प्रकार के बधे हुए कर्म के प्रदेशो की न्यूनता व अधिकता का यही मूल आधार है।

कर्मबन्ध

लोक मे ऐसा कोई स्थान नही, जहाँ कर्मवर्गणा के पुद्गल न हो। प्राणी मानसिक, वाचिक और कायिक प्रवृत्ति करता है और कषाय के उत्ताप से उत्तप्त होता है। अत. वह कर्मयोग्य-पुद्गलो को सर्व दिशाओ से ग्रहण करता है। आगमो मे स्पष्ट निर्देश है कि एकेन्द्रिय जीव व्याघात न होने पर छहो दिशाओ से कर्म ग्रहण करते है, व्याघात होने पर कभी तीन कभी चार और कभी पांच

दिशाओ से ग्रहण करते है किन्तु शेष जीव नियम से सर्व-दिशाओ से ग्रहण करते है ।[123] किन्तु क्षेत्र के सम्बन्ध मे यह मर्यादा है कि जिस क्षेत्र मे वह स्थित है उसी क्षेत्र मे स्थित कर्मयोग्य पुद्गलो को ग्रहण करता है । अन्यत्र स्थित पुद्गलो को नही [124] । यह भी विस्मरण नही होना चाहिए कि जितनी योगो की चचलता मे तरतमता होगी उसी के अनुसार न्यूनाधिक रूप मे जीव कर्म पुद्गलो को ग्रहण करेगा । योगो की प्रवृत्ति मन्द होगी तो परमाणुओ की सख्या भी कम होगी । आगमिक भाषा मे इसे ही प्रदेश-वध कहते हैं । दूसरे शब्दो मे कहा जाय तो आत्मा के असख्यात प्रदेश है । उन प्रदेशो मे एक-एक प्रदेश पर अनन्तानन्त कर्म-प्रदेशो का वन्ध होना प्रदेश-वन्ध है । अर्थात् जीव के प्रदेशो और कर्म-पुद्गलो के प्रदेशो का परस्पर वद्ध हो जाना प्रदेश-वन्ध है । [125]

गणधर गौतम ने महावीर से पूछा—भगवन् ! क्या जीव और पुद्गल अन्योन्य—एक दूसरे से वद्ध, एक दूसरे से स्पृष्ट, एक-दूसरे मे अवगाढ, एक दूसरे मे स्नेह-प्रतिवद्ध है और एक दूसरे मे एकमेक होकर रहते है ?

उत्तर मे महावीर ने कहा—हे गौतम ! हाँ रहते हैं ।

हे भगवन् ! ऐसा किस हेतु से कहते है ?

हे गौतम ! जैसे एक ह्लद हो, जल से पूर्ण, जल से किनारे तक भरा हुआ, जल से लवालब, जल से उपर उठा हुआ, और भरे हुए घडे की तरह स्थित । अव यदि कोई पुरुष उस ह्लद मे एक वडी, सौ छेदो वाली नाव छोडे तो हे गौतम ! वह नाव उन आस्रव-द्वारो-छिद्रो द्वारा भरती-भरती जल से पूर्ण, ऊपर तक भरी हुई, वढते हुए जल से ढकी हुई होकर, भरे घडे की तरह होगी या नही ?

हाँ भगवन् ! होगी ।

हे गौतम । इसी हेतु से मै कहता हूँ कि जीव और पुद्गल परस्पर वद्ध, स्पृष्ट अवगाढ और प्रतिवद्ध हैं और परस्पर एकमेक होकर रहते है ।[126]

यही आत्म-प्रदेशो और कर्म-पुद्गलो का सम्वन्ध प्रदेशवध है ।

प्रकृतिवन्ध

योगो की प्रवृत्ति द्वारा ग्रहण किये गये कर्म-परमाणु ज्ञान को आवृत करना, दर्शन को आच्छन्न करना, सुख, दु ख का अनुभव कराना आदि विभिन्न प्रकृतियो के रूप मे परिणत होते हैं ।

---

१२३ उत्तराध्ययन ३३।१८
(ख) भगवती १७।४,
१२४ विशेषावश्यक भाष्य गा १९४१, पृ ११७
१२५ (क) भगवती १।४।४० वृत्ति
(ख) नवतत्त्व प्रकरण गा ७१ की वृत्ति
(ग) सप्ततत्त्वप्रकरण अ. ४, देवानन्दसूरिकृत
१२६ भगवती १।६

आत्मा के साथ बद्ध होने से पूर्व कार्मण वर्गणा के जो पुद्गल एक रूप थे, बद्ध होने के साथ ही उनमे नाना प्रकार के स्वभाव उत्पन्न हो जाते है। इसे आगम की भाषा मे प्रकृतिवन्ध कहते हैं।

प्रकृतिवन्ध और प्रदेशवन्ध ये दोनो योगो की प्रवृत्ति से होते हैं।[१२७] केवल योगो की प्रवृत्ति से जो वध होता है वह सूखी दीवार पर हवा के झोंके के साथ आने वाली रेती के समान है। ग्यारहवे, बारहवें और तेरहवें गुणस्थान मे कषायाभाव के कारण कर्म का वधन इसी प्रकार का होता है। कषायरहित प्रवृत्ति से होने वाला कर्म वन्ध निर्बल, अस्थाई और नाम मात्र का होता है, इससे संसार नही बढता।

योगो के साथ कषाय की जो प्रवृत्ति होती है उससे अमुक समय तक आत्मा से पृथक् न होने की कालिक मर्यादा पुद्गलो मे निर्मित होती है। यह काल मर्यादा ही आगम की भाषा मे स्थिति-बंध है। दूसरे शब्दो मे कहा जाय तो आत्मा के द्वारा ग्रहण की गई ज्ञानावरण आदि कर्म-पुद्गलो की राशि कितने काल तक आत्म-प्रदेशो मे रहेगी, उसकी मर्यादा स्थिति-वध है।[१२८]

अनुभाग-बन्ध

जीव के द्वारा ग्रहण की हुई शुभाशुभ कर्मो की प्रकृतियो का तीव्र, मन्द आदि विपाक अनुभाग-वध है। उदय मे आने पर कर्म का अनुभव तीव्र या मन्द कैसा होगा, यह प्रकृति आदि की तरह कर्म-वध मे समय ही नियत हो जाता है। इसे अनुभागवध कहते है।[१२९]

उदय मे आने पर कर्म अपनी मूलप्रकृति के अनुसार ही फल प्रदान करते है। ज्ञानावरणीय कर्म अपने अनुभाव-फल देने की शक्ति के अनुसार ज्ञान का आच्छादन करता है। दर्शनावरणीय कर्म दर्शन को आवृत करता है। इसी प्रकार अन्यकर्म भी अपनी प्रकृति के अनुसार तीव्र या मन्द फल प्रदान करते हैं। उनकी मूल प्रकृति मे उलट-फेर नही होता।

पर उत्तर-प्रकृतियो के सम्बन्ध मे यह नियम पूर्णत लागू नही होता। एक कर्म की उत्तर-प्रकृति उसी कर्म की अन्य उत्तर-प्रकृति के रूप मे परिवर्तित हो सकती है। जैसे मतिज्ञानावरण कर्म, श्रुतज्ञानावरण कर्म के रूप मे परिणत हो जाता है। फिर उसका फल भी श्रुतज्ञानावरण के रूप मे ही होता है। किन्तु उत्तर-प्रकृतियो मे भी कितनी ही प्रकृतियां ऐसी है जो सजातीय होने पर भी परस्पर सक्रमण नही करती, जैसे दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय। आयुकर्म की उत्तर-प्रकृतियो मे भी सक्रमण नही होता। जैसे—नारक आयुप्य तिर्यंच आयुष्य के रूप मे या अन्य आयुष्य के रूप मे नही वदल सकता। इसी प्रकार अन्य आयुष्य भी।[१३०]

---

१२७ (क) पचम कर्मग्रन्थ गाथा ९६
(ख) स्थानाङ्ग २।४।९६ की टीका

१२८ स्थिति कालावधारणम्

१२९ भगवती १।४।४० वृत्ति
(ख) तत्त्वार्थसूत्र ८।२२

१३० तत्त्वार्थसूत्र ८।२२, भाष्य,
(ख) विशेषावश्यक भाष्य गा १९३८

प्रकृति-सक्रमण की तरह वधकालीन रस मे भी परिवर्तन हो सकता है। मन्दरस वाला कर्म वाद मे तीव्ररस वाले कर्म के रूप मे वदल सकता है और तीव्ररस, मन्दरस के रूप मे हो सकता है। अत जीव एवभूत तथा अन-एवभूत वेदना वेदते है।[131]

इस विपय मे स्थानाङ्ग की चतुर्भंगी का उल्लेख पहले किया जा चुका है।[132]

जिज्ञासा हो सकती है कि इसका मूल कारण क्या है ? जैन कर्म साहित्य समाधान करता है कि कर्म की विभिन्न अवस्थाए है। मुख्य रूप से उन्हे ग्यारह भेदो मे विभक्त कर सकते है।[133] (१) वन्ध, (२) सत्ता (३) उद्वर्तन-उत्कर्प, (४) अपवर्तन-अपकर्ष, (५) सक्रमण (६) उदय (७) उदीरणा (८) उपशमन, (९) निधत्ति (१०) निकाचित और (११) अवाधाकाल।

(१) वध—आत्मा के साथ कर्म-परमाणुओ का सम्वन्ध होना, क्षीर-नीरवत् एकमेक हो जाना वध है।[134] वध के चार प्रकारो का वर्णन हम कर चुके है।

(२) सत्ता—आवद्ध-कर्म अपना फल प्रदान कर जव तक आत्मा से पृथक् नही हो जाते तव तक वे आत्मा से ही सम्वद्ध रहते है। इसे जैन दार्शनिको ने सत्ता कहा है।

(३) उद्वर्तन-उत्कर्ष—आत्मा के साथ आवद्ध कर्म की स्थिति और अनुभाग-वध तत्कालीन परिणामो मे प्रवहमान कपाय की तीव्र एव मन्दधारा के अनुरूप होता है। उसके पश्चात् की स्थिति-विशेप अथवा भाव-विशेप के कारण उस स्थिति एव रस मे वृद्धि होना उद्वर्तन-उत्कर्प है।

(४) अपवर्तन-अपकर्ष—पूर्ववद्ध कर्म की स्थिति एव अनुभाग को कालान्तर मे न्यून कर देना अपवर्तन-अपकर्प है। इस प्रकार उद्वर्तन-उत्कर्प से विपरीत अपवर्तन-अपकर्ष है।

साराश यह है कि ससार को घटाने-वढाने का आधार पूर्वकृत कर्म की अपेक्षा वर्तमान अध्यवसायो पर विशेप आधृत है।

(५) सक्रमण—एक प्रकार के कर्म परमाणुओ की स्थिति आदि का दूसरे प्रकार के कर्म-परमाणुओ की स्थिति आदि के रूप मे परिवर्तित हो जाने की प्रक्रिया को सक्रमण कहते है। इस प्रकार के परिवर्तन के लिए कुछ निश्चित मर्यादाए है जिनका उल्लेख पूर्व मे किया जा चुका है। सक्रमण के चार प्रकार है—(१) प्रकृति-सक्रमण (२) स्थिति-सक्रमण (३) अनुभाव-सक्रमण (४) प्रदेश-सक्रमण।[135]

(६) उदय—कर्म का फलदान उदय है। यदि कर्म अपना फल देकर निर्जीर्ण हो तो वह फलोदय है और फल दिये विना ही उदय मे आकर नष्ट हो जाय तो प्रदेशोदय है।

---

१३१ भगवती ५।५

१३२. स्थानाङ्ग ४।४।३१२,
(ख) तुलना कीजिए—अगुत्तरनिकाय ४।२३२-२३३

१३३. द्रव्यसग्रह टीका गा ३३

१३४ (क) तत्त्वार्थसूत्र १।४ सर्वार्थसिद्धि
(ख) उत्तराध्ययन २८।२४ नेमिचन्द्रीय टीका

१३५ स्थानाङ्ग ४।२९६

(७) **उदीरणा**—नियत समय से पूर्व कर्म का उदय मे आना उदीरणा है। जैसे समय के पूर्व ही प्रयत्न से आम आदि फल पकाये जाते हैं वैसे ही साधना से आवद्ध कर्म का नियत समय से पूर्व भोग कर क्षय किया जा सकता है। सामान्यत. यह नियम है कि जिस कर्म का उदय होता है उसी के सजातीय कर्म की उदीरणा होती है।

(८) **उपशमन**—कर्मों के विद्यमान रहते हुए भी उदय मे आने के लिए उन्हे अक्षम वना देना उपशम है। अर्थात् कर्म की वह अवस्था जिसमे उदय अथवा उदीरणा सभव नही, किन्तु उद्वर्तन, अपवर्तन और सक्रमण की सभावना हो वह उपशमन है। जैसे अगारे को राख से इस प्रकार आच्छादित कर देना जिससे वह अपना कार्य न कर सके। किन्तु जैसे आवरण के हटते ही अगारे जलाने लगते है वैसे ही उपशम भाव के दूर होते ही उपशान्त कर्म उदय मे आकर अपना फल देना प्रारम्भ कर देते हैं।

(९) **निधत्ति**—जिसमे कर्मों का उदय और सक्रमण न हो सके किन्तु उद्वर्तन-अपवर्तन की सभावना हो वह निधत्ति[१३६] है। यह भी चार प्रकार का है।[१३७] (१) प्रकृति-निधत्त (१) स्थिति-निधत्त (३) अनुभाव-निधत्त (४) प्रदेश-निधत्त।

(१०) **निकाचित**—जिसमे उद्वर्तन, अपवर्तन, सक्रमण एव उदीरणा इन चारो अवस्थाओ का अभाव हो वह निकाचित है। अर्थात् आत्मा ने जिस रूप मे कर्म वाधा है प्राय उसी रूप मे भोगे विना उसकी निर्जरा नही होती। वह भी प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश रूप मे चार प्रकार का है।[१३८]

(११) **अबाधाकाल**—कर्म वधने के पश्चात् अमुक समय तक फल न देने की अवस्था का नाम अबाध-अवस्था है। अवाधाकाल को जानने का प्रकार यह है कि जिस कर्म की स्थिति जितने सागरोपम की है उतने ही सौ वर्ष का उसका अवाधा काल होता है। जैसे ज्ञानावरणीय की स्थिति तीस कोटाकोटि सागरोपम की है तो अवाधाकाल तीस सौ (तीन हजार) वर्ष का है।[१३९] भगवती मे अष्ट कर्म प्रकृतियो का अबाधाकाल वताया है और प्रज्ञापना[१४०] मे उनकी उत्तर-प्रकृतियो का भी अबाधाकाल उल्लिखित है, विशेष जिज्ञासुओ को मूलग्रन्थ देखने चाहिए।

जैन कर्म साहित्य मे कर्मों की इन अवस्थाओ एव प्रक्रिया का जैसा विश्लेपण है वैसा अन्य दार्शनिको के साहित्य मे दृग्गोचर नही होता। हाँ, योगदर्शन मे नियत-विपाकी अनियत विपाकी, और आवायगमन के रूप मे कर्म की त्रिविध दशा का उल्लेख किया है। नियतविपाकी कर्म का अर्थ है—जो नियत समय पर अपना फल देकर ही नष्ट होता है। अनियत विपाकी कर्म का अर्थ है जो कर्म विना फल दिये ही आत्मा से पृथक् हो जाते हैं और आवायगमन का अर्थ है एक कर्म

---

१३६ कर्मप्रकृति गा २

१३७ स्थानाङ्ग ४।२९६

१३८ स्थानाङ्ग २।२९६

१३९ भगवती २।३

१४० प्रज्ञापना २३।२।२१-२९

का दूसरे मे मिल जाना। योगदर्शन की इन त्रिविध अवस्थाओ की तुलना क्रमश निकाचित, प्रदेशोदय, और सक्रमण के साथ की जाती है।

कर्म और पुनर्जन्म

पुनर्जन्म का अर्थ है—वर्तमान जीवन के पश्चात् का परलोक जीवन। परलोक जीवन किस जीव का कैसा होता है इसका मुख्य आधार उसका पूर्वकृत कर्म है। जीव अपने ही प्रमाद से भिन्न-भिन्न जन्मान्तर करते है।[१४१] पुनर्जन्म कर्म-सगी जीवो के होता है।[१४२] अतीत कर्मो का फल हमारा वर्तमान जीवन है और वर्तमान कर्मो का फल हमारा भावी जीवन है। कर्म और पुनर्जन्म का अविच्छेद्य सम्बन्ध है।

आयुष्य-कर्म के पुद्गल-परमाणु जीव मे देव, नारक आदि अवस्थाओ मे गति की शक्ति उत्पन्न करते हैं।[१४३] इसी से जीव नए जन्म-स्थान मे (अमुक आयु मे) जो उत्पन्न होता है।

भगवान् महावीर ने कहा—क्रोध, मान, माया, और लोभ—ये पुनर्जन्म के मूल को पोषण करने वाले है।[१४४] गीता मे कहा गया है—जैसे फटे हुए कपडे को छोडकर मनुष्य नया कपडा पहनता है वैसे ही पुराने शरीर को छोडकर प्राणी मृत्यु के पश्चात् नये शरीर को धारण करता है।[१४५] यह आवर्तन प्रवृत्ति से होता है।[१४६] तथागत बुद्ध ने अपने पैर मे चुभने वाले तीक्ष्ण कॉटे को पूर्वजन्म मे किये हुए प्राणी-वध का विपाक कहा है।[१४७]

नवजात शिशु के हर्ष, भय, शोक आदि होते है। उसका मूल कारण पूर्वजन्म की स्मृति है।[१४८] जन्म लेते ही वच्चा मा का स्तन-पान करने लगता है, यह पूर्वजन्म मे किये हुए आहार के अभ्यास से ही होता है।[१४९] जैसे एक युवक का शरीर बालक-शरीर की उत्तरवर्ती अवस्था है वैसे ही बालक का शरीर पूर्वजन्म के बाद मे होने वाली अवस्था है।[१५०] नवोत्पन्न शिशु मे जो सुख-दु ख का अनुभव होता है वह भी पूर्व अनुभवयुक्त होता है। जीवन के प्रति मोह और मृत्यु के प्रति भय है, वह भी पूर्वबद्ध सस्कारो का परिणाम है। यदि पहले के जन्म मे उसका अनुभव नही होता तो सद्योजात प्राणी मे ऐसी वृत्तियाँ प्राप्त नही हो सकती थी। इस प्रकार अनेक युक्तियाँ देकर भारतीय चिन्तको ने पुनर्जन्म सिद्ध किया है।

---

१४१ आचाराग १२।६
१४२. भगवती २।५
१४३ स्थानाङ्ग ९।४०
१४४ दशवैकालिक ८।३९
१४५. श्रीमद् भगवद् गीता २।२२
१४६ श्रीमद् भगवद् गीता २।२६
१४७. इत एकनवतिकल्पे शक्त्या मे पुरुषो हत।
तेन कर्मविपाकेन पादे विद्धोऽस्मि भिक्षव ॥
१४८ न्यायसूत्र ३।१।१२
१४९. न्यायसूत्र ३।१।१२
१५० विशेषावश्यक भाष्य

कर्म की सत्ता स्वीकार करने पर उसके फल रूप परलोक या पुनर्जन्म की सत्ता भी स्वीकार करनी पडती है। जिन कर्मों का फल वर्तमान भव मे प्राप्त नही होता उन कर्मो के भोग के लिए पुनर्जन्म मानना आवश्यक है। पुनर्जन्म और पूर्वभव न माना जायेगा तो कृतकर्म का निर्हेतुक विनाश और अकृत कर्म का भोग मानना पडेगा। ऐसी स्थिति मे कर्म-व्यवस्था दूषित हो जायेगी। इन दोषो के परिहार हेतु ही कर्मवादियो ने पुनर्जन्म की सत्ता स्वीकार की है।

भारत के सभी दार्शनिको ने ही नही अपितु पाश्चात्य विचारको ने भी पुनर्जन्म के सम्बन्ध मे विचार अभिव्यक्त किये है। उनका सक्षिप्त साराश इस प्रकार है—

यूनान के महान् तत्त्ववेत्ता प्लेटो ने दर्शन की व्याख्या की है और उसका केन्द्र विन्दु पुनर्जन्म को माना है।

प्लेटो के जाने माने हुए शिष्य अरस्तू पुनर्जन्म के सिद्धान्त को मानने के लिए इतने आग्रह-शील थे कि उन्होने अपने समकालीन दार्शनिको को आह्वान करते हुए कहा कि—हमे उस मत का कदापि आदर नही करना चाहिए कि हम मानव है, तथा अपने विचार मृत्युलोक तक ही सीमित न रखे, अपितु अपने दैवी अश को जागृत कर अमरत्व को प्राप्त करे।

लूथर के अभिमतानुसार भावी जीवन के निषेध करने का अर्थ है—स्वय के ईश्वरत्व का तथा उच्चतर नैतिक जीवन का निषेध और स्वैराचार का स्वीकार।

फ्रासीसी धर्म-प्रचारक मोसिला तथा ईसाई सत पाल के अनुसार—देह के साथ ही आत्मा का नाश मानने का अर्थ होता है कि विवेकपूर्ण जीवन का अन्त और विकारमय जीवन के लिए द्वार मुक्त करना।

फ्रेंच विचारक रेनन का अभिमत है कि भावी जीवन मे विश्वास न करना नैतिक और आध्यात्मिक पतन का कारण है।

मैकटेगार्ट की दृष्टि से आत्मा मे अमरत्व की साधक युक्तियो से हमारे भावी जीवन के साथ ही पूर्वजन्म की सिद्धि होती है।

सर हेनरी जोन्स लिखते है–कि अमरत्व के निषेध का अर्थ होता है पूर्ण नास्तिकता।

श्री प्रिंगल पैटिसन ने अपने अमरत्व-विचार नामक ग्रन्थ मे लिखा है—"यह कहना अति-शयोक्ति पूर्ण न होगा कि मृत्यु विषयक चिन्तन ने ही मनुष्य को सच्चे अर्थ मे मनुष्य बनाया है।"

इन स्वल्प अवतरणो से भी यह स्पष्ट है कि विश्व के सभी मूर्धन्य मनीषियो ने आत्मा की अमरता और पुनर्जन्म के सिद्धान्त को स्वीकार किया है।

विपाक सूत्र के प्रत्येक अध्ययन मे पुनर्जन्म की चर्चा है। जो व्यक्ति दु ख से कराह रहा है और जो सुख के सागर पर तैर रहा है, उन सभी के सम्बन्ध मे यह जिज्ञासा व्यक्त की गई है कि यह इस प्रकार कैसे है? भगवान् उस का पूर्व भव सुनाकर जिज्ञासु को ऐसा समाधान देते हैं कि वह उसका रहस्य स्वय समझ जाता है। अन्याय, अत्याचार, वेश्यागमन, प्रजापीडन, रिश्वत, हिंसा, नरमेध यज्ञ, मास-भक्षण आदि ऐसे दुष्कृत्य हैं जिनके कारण विविध प्रकार की यातनाए भोगने का उल्लेख है। सुखविपाक मे सुपात्र-दान का प्रतिफल सुख बताया गया है।

व्याख्या साहित्य

विपाक सूत्र का विषय अत्यधिक सरल और सुगम होने से इस पर न निर्युक्ति का निर्माण किया गया, न भाष्य लिखा गया और न चूर्णियाँ ही रची गई। सर्व प्रथम आचार्य अभयदेव ने इस पर संस्कृत भाषा मे टीका का निर्माण किया। प्रारम्भ मे आचार्य ने भगवान् महावीर को नमस्कार कर विपाक सूत्र पर वृत्ति लिखने की प्रतिज्ञा की और विपाक श्रुत का शब्दार्थ प्रस्तुत किया। वृत्तिकार ने अनेक पारिभाषिक शब्दो के सक्षिप्त और सारपूर्ण अर्थ भी दिये हैं। उदाहरण के रूप मे 'रट्ठकूडे' का अर्थ रट्ठकूड, रट्उड,-राष्ट्रकूट''—'रट्ठउडेत्ति राष्ट्रकूटो मण्डलोपजीवी राजनियोगिक किया है। वृत्ति के अन्त मे विज्ञो को यह नम्र निवेदन किया है कि वे वृत्ति को परिष्कृत करने का अनुग्रह करे। प्रस्तुत वृत्ति का प्रकाशन सर्वप्रथम सन् १८७६ मे राय धनपतसिंह जी ने कलकत्ता से किया। उसके पश्चात् सन् १६२० मे आगमोदय समिति बम्बई से और मुक्ति कमल जैन मोहनमाला वडोदा से और सन् १६३५ मे गुर्जर ग्रन्थरत्न कार्यालय गाधीरोड अहमदाबाद से अग्रेजी अनुवाद व टिप्पण के साथ प्रकाशित हुआ है।

पी. एल वैद्य ने सन् १६३३ मे प्रस्तावना के साथ प्रस्तुत आगम प्रकाशित किया। जैनधर्म प्रचारक सभा भावनगर से वि स. १६८७ मे गुजराती अनुवाद प्रकाशित हुआ। जैनागम प्रकाशक सुमति कार्यालय कोटा से सन् १६३५ मे और वी स २४४६ मे हैदराबाद से क्रमश मुनि आनन्दसागरजी व पूज्य अमोलक ऋषिजी ने हिन्दी अनुवाद सहित इस आगम का प्रकाशन करवाया। जैनशास्त्र-माला कार्यालय लुधियाना से वि स २०१० मे हिन्दी मे आचार्य आत्मारामजी म० कृत विस्तृत टीका युक्त सस्करण प्रकाशित हुआ है। टीका मे अनेक रहस्य उद्घाटित किये गये हैं। जैनशास्त्रोद्धार समिति राजकोट ने सन् १६५६ मे पूज्य घासीलाल जी म. कृत सस्कृत व्याख्या व हिन्दी-गुजराती अनुवाद के साथ प्रकाशित किया है। इनकी सस्कृत टीका पर आचार्य अभयदेव की वृत्ति का स्पष्ट प्रभाव है। जैनसाहित्य-प्रकाशन-समिति अहमदाबाद से सन् १६४० मे गोपालदास जीवाभाई पटेल ने गुजराती छायानुवाद प्रकाशित किया है। इस तरह समय समय पर विभिन्न स्थानो से प्रस्तुत आगम के अनेक सस्करण प्रकाशित हुए है।

प्रस्तुत सस्करण

आगमो के अभिनव सस्करण की माग प्रतिपल प्रतिक्षण वढती हुई देख कर श्रमण सघ के युवाचार्य श्री मधुकर मुनिजी ने आगम-बत्तीसी के प्रकाशन के सम्बन्ध मे चिन्तन किया और विविध विज्ञो के सहयोग से कार्य प्रारम्भ हुआ। मुझे लिखते हुए परम आह्लाद है कि स्वल्पावधि मे आगमो के श्रेष्ठतम सस्करण प्रकाशित हुए है। इन सस्करणो की सामान्य पाठको से लेकर मूर्धन्य मनीषियो तक ने मुक्तकठ से प्रशसा की। युवाचार्यश्री की प्रवल प्रेरणा से यह कार्य अत्यन्त द्रुतगति से प्रगति पर है। दनादन आगम प्रकाशित हो रहे है।

आगममाला की लडी की कडी मे विपाक सूत्र प्रकाशित हो रहा है। प्रस्तुत आगम के कुशल सम्पादक हैं—पडित श्रीरोशनलालजी, जो जैनदर्शन के अच्छे अभ्यासी हैं। वर्षों से श्रमण और श्रमणियो को आगम और दर्शन का अभ्यास करा रहे है। प्रस्तुत आगम मे उन्होने विस्तार मे न जाकर

बहुत ही सक्षेप मे विवेचन प्रस्तुत किया। यह विवेचन सक्षेप मे होने पर भी सारपूर्ण है। प. प्रवर कलम कलाधर शोभाचन्द्र जी भारिल्ल की प्रतिभा का चमत्कार भी यत्र तत्र निहारा जा सकता है।

मुझे दृढ आत्मविश्वास है कि यह आगम जन-जन को प्रेरणादायी सिद्ध होगा। भौतिक भक्ति के युग मे पले-पुसे मानवो को आध्यात्मिक चिन्तन प्रदान करेगा।

—देवेन्द्रमुनि शास्त्री

वागरेचा भवन
गढसिवाना
दि ५।६।१९८२

श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर

(कार्यकारिणी समिति)

पंचमगणहर-सिरिसुहम्मसामिविरइयं एक्कारसमं अंगं

विवागसुयं

पञ्चमगणधर-श्रीसुधर्मस्वामिविरचितं एकादशमङ्गम्

विपाकश्रुतम्

विपाकसूत्र—प्रथम श्रुतस्कन्ध

सार : सक्षेप

विपाकसूत्र अपने अभिधान के अनुसार अशुभ एव शुभ कर्मों का विपाक—फल प्रदर्शित करने वाला ग्यारहवा अग-शास्त्र है। समस्त कर्मप्रकृतियाँ मुख्यत दो भागो मे विभक्त की जाती हैं : शुभ और अशुभ। इनमे से अशुभ प्रकृतियाँ पाप—दु.ख रूप और शुभ प्रकृतियाँ पुण्य—सातारूप सुख प्रदान करती हैं। इन दोनों प्रकार की कर्मप्रकृतियो का फल-विपाक दिखलाने के लिए प्रस्तुत शास्त्र को दो श्रुतस्कन्धो मे विभक्त किया गया है—दु खविपाक और सुखविपाक। दु खविपाक मे पापकर्मो का और सुखविपाक मे पुण्य कर्मों का फल प्रतिपादित किया गया है।

जैन साहित्य मे कर्मसिद्धान्त का अत्यन्त विस्तारपूर्वक सागोपाग वर्णन किया गया है। बहुसख्यक स्वतन्त्र ग्रन्थो की इस मौलिक तथा दुरूह सिद्धान्त का प्रतिपादन करने के लिए रचना की गई है। यद्यपि वह सब कर्म-साहित्य जिज्ञासुओ के लिए बहुत रस-प्रद है, मगर सबके लिए सुगम-सुबोध नही है। इस कमी की पूर्त्ति के लिए 'विपाकसूत्र' सर्वोत्तम साधन है। इसमे कथाओ के माध्यम से कर्म-विपाक की प्ररूपणा अत्यन्त सुगम एव सुबोध शैली मे की गई है। इस दृष्टि से विपाकसूत्र का अपना विशिष्ट एव मौलिक स्थान और महत्त्व है।

प्रथम श्रुतस्कन्ध मे दस अध्ययन हैं। प्रथम अध्ययन विस्तृत है और शेष अध्ययन अपेक्षाकृत सक्षिप्त हैं।

प्रथम अध्ययन मे विजय क्षत्रिय-नरेश के पापी पुत्र मृगापुत्र का वर्णन किया गया है। मृगापुत्र पूर्वभवोपार्जित प्रकृष्ट पापकर्म के उदय से जब रानी मृगा के गर्भ मे आया तो रानी राजा को अप्रिय, अनिष्ट एव अनगमती हो गई। जन्म हुआ तो जन्म से ही अन्धा, बहिरा, लूला-लगडा और हुण्डकसस्थानी हुआ। उसके शरीर के हाथ, पैर, कान, आँख, नाक आदि अवयवो का अभाव था, मात्र उनके निशान थे। मृगा देवी जन्मते ही उसे घूरे (उकरडे) पर फिकवा देना चाहती थी, मगर अपने पति के समझाने-बुझाने पर गुप्त रूप से भोयरे (भूगृह) मे रख कर उसका पालन-पोषण करने लगी।

एकदा भगवान् महावीर के कहने पर गौतम स्वामी को मृगापुत्र का पता लगा। वे उसे देखने के लिए गए। जिस भूगृह मे मृगापुत्र रहता था वह असह्य सडाध से व्याप्त था। मृगादेवी उसका भोजन-पानी साथ लेकर गौतम स्वामी के साथ वहाँ गई। अत्यन्त गृद्धिपूर्वक उसने वह आहार ग्रहण किया। उदर मे जाते ही भस्मक व्याधि के प्रभाव से वह आहार हजम हो गया और तत्काल मवाद और रुधिर के रूप मे बदल गया। उसने उस रुधिर और मवाद का वमन किया और उसे भी चाट गया।

यह सब लोमहर्षक वीभत्स एव दयनीय दशा देखकर कर गौतम स्वामी भ० महावीर की

सेवा मे लौटे। उसकी दुर्दशा का कारण पूछा। तब भगवान् ने उसके पूर्व जन्म का विवरण इस प्रकार बतलाया—

भारतवर्ष मे शतद्वार-नरेश का प्रतिनिधि विजयवर्द्धमान नामक खेट का शासक 'इक्काई' नामक राष्ट्रकूट (राठौड) था। यह राष्ट्रकूट अत्यन्त अधर्मी, अधर्मानुयायी, अधर्मनिष्ठ, अधर्मदर्शी, अधर्मप्रज्वलन एव अधर्माचारी था। आदर्श शासक मे जो विशिष्टताएँ होनी चाहिए उनमे मे एक भी उसमे नही थी। इतना ही नही, वह प्रत्येक दृष्टि से भ्रष्ट और अधम शासक था। सब तरह से प्रजा का अधिक से अधिक उत्पीडन करने मे ही वह अपनी शान मानता था। वह रिश्वतखोर था, ब्याजखाऊ था और निरपराध जनो पर झूठे आरोप लगाकर उन्हे तग किया करता था। रात-दिन पाप-कृत्यो मे तल्लीन रहता था।

तीव्रतर पापकर्मों के आचरण का तात्कालिक फल यह हुआ कि कुछ समय के पश्चात् उसके शरीर मे एक साथ सोलह कष्टकारी असाध्य रोग उत्पन्न हो गए। इन रोगो के फलस्वरूप 'हाय-हाय' करता वह चल बसा। अपने पापो के विपाक को भोगने के लिए वह प्रथम नरक मे नारक के रूप मे उत्पन्न हुआ। नरक की लम्बी आयु भोगने के पश्चात् वह मृगापुत्र के रूप मे जन्मा है।

मृगापुत्र के अतीत की यह कहानी सुनने के बाद गौतम स्वामी ने उसके भविष्य के विषय मे पूछा।

भगवान् ने मृगापुत्र का भविष्य बतलाते हुए फर्माया—

१ वह प्रथम नरक की एक सागरोपम की आयु पूर्ण करके सिंह की पर्याय मे जन्म लेगा। इस पर्याय मे भी वह अतीव अधर्मी होगा।
२ सिंह-पर्याय का अन्त होने पर वह पुन प्रथम नरक मे जन्मेगा।
३ नरक से निकल कर सरीसृप—रेंग कर चलने वाला जन्तु होगा।
४ तत्पश्चात् दूसरे नरक मे उत्पन्न होगा।
५ फिर पक्षी-योनियो मे जन्म लेगा।
६ पक्षियो मे जन्म-मरण करने के पश्चात् तीसरी नरकभूमि मे। फिर—
७ पुन सिंह-पर्याय मे।
८ तदन्तर चौथे नरक मे।
९ उरगजातीय प्राणियो मे।
१० पाँचवे नरक मे।
११ स्त्री के रूप मे।
१२ छठी तम प्रभा नरकभूमि मे।
१३ मनुष्यपर्याय मे—नर के रूप मे।
१४ तमस्तम प्रभा नामक सातवे नरक मे।
१५ लाखो बार जलचर जीवो की साढे बारह लाख कुलकोटियो मे।
१६ तत्पश्चात् चतुष्पदो मे, उरपरिसर्पो मे, भुजपरिसर्पों मे, खेचरो मे, चौ-इन्द्रियो मे, तेइन्द्रियो मे, दो-इन्द्रियो मे, कटुक रस वाले वनस्पति-वृक्षो मे, वायुकाय, अप्काय, तेजस्काय तथा पृथ्वीकाय मे लाखो-लाखो बार उत्पन्न होकर मृत्यु को प्राप्त करेगा।

१७ इतना दीर्घकालिक भवभ्रमण करने और असीम-अपार वेदनाएँ भोगने के अनन्तर बैल के रूप मे जन्मेगा। तत्पश्चात्—

१८ उसे मनुष्यभव की प्राप्ति होगी। मनुष्यभव मे सयम की साधना करके वह सिद्धि प्राप्त करेगा।

शासन के माध्यम से प्राप्त सत्ता का दुरुपयोग करने वालो, रिश्वतखोरो, प्रजा पर अनुचित कर-भार लादने वालो और इस प्रकार के पापो का आचरण करने वालो के भविष्य का यह एक निर्मल दर्पण है। आज के वातावरण मे प्रस्तुत अध्ययन और आगे के अध्ययन भी अत्यन्त उपयोगी और शिक्षाप्रद हैं।

प्रथम अध्ययन मे प्रदर्शित पाप के दु खरूप विपाक का ही अगले अध्ययनो मे निरूपण किया गया है। घटनाओ एव पापाचार के प्रकार मे किंचित् भिन्नता होते हुए भी दु खविपाक के सभी अध्ययनो का मूल स्वर एक-सा है।

विस्तार से जानने के लिए जिज्ञासु-जन मूल शास्त्र का अध्ययन करे।

प्रथम श्रुतस्कन्ध : प्रथम अध्ययन

उत्क्षेप—

१—तेण कालेण तेण समएणं चपा नामं नयरी होत्था । वण्णओ । पुण्णभद्दे चेइए । वण्णओ ।

१—उस काल तथा उस समय मे चम्पा नाम की एक नगरी थी। चम्पा नगरी का वर्णन औपपातिक सूत्रान्तर्गत नगरी के वर्णन के ही सदृश समझ लेना चाहिये । (उस नगरी के बाहर ईशान-कोण मे) पूर्णभद्र नामक एक चैत्य-उद्यान था । पूर्णभद्र चैत्य का वर्णन औपपातिक सूत्र मे विस्तार-पूर्वक किया गया है, अत जिज्ञासु को अपनी जिज्ञासापूर्ति वही से कर लेना चाहिये ।

विवेचन—व्यवहार मे काल तथा समय, ये दोनो शब्द समानार्थक है । फिर सूत्रकार ने इन दोनो शब्दो का पृथक् प्रयोग क्यो किया ? इस शङ्का का आचार्य अभयदेव सूरि ने इस तरह समाधान किया है—

'अथ कालसमययो को विशेष ? उच्यते -सामान्य वर्त्तमानावसर्पिणी चतुर्थारक-लक्षण काल , विशिष्ट पुनस्तदेकदेशभूत समय ।'

सूत्रकार को काल शब्द से सामान्य-वर्त्तमान अवसर्पिणी काल का चतुर्थ आरा अभिप्रेत है और समय शब्द से चौथे आरे के उस भाग का ही ग्रहण करना अभीष्ट है जबकि यह कथा कही जा रही है ।

तत्त्वज्ञ पुरुष महीना, वर्ष आदि रूप से जिसका कलन— निर्णय करते हैं अथवा 'यह एक पक्ष का है', 'दो महीने का है', इस तरह का कलन (सख्या-गिनती) को काल कहते है । अथवा कलाओ—समयो के समूह को काल कहते है । निश्चय काल का स्वरूप वर्तना है अर्थात् समस्त द्रव्यो के वर्तन मे जो निमित्त कारण होता है वह निश्चय काल है ।

सुधर्मास्वामी का आगमन—

२—तेण कालेण तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतेवासी अज्जसुहम्मे नामं अणगारे जाइसंपन्ने वण्णओ—(कुलसम्पन्ने, बल-रूव-विणय-णाण-दसण-चरित्त-लाघवसम्पन्ने, ओयसी, तेयंसी, वच्चसी, जयसी, जियकोहे, जियमाणे, जियमाए, जियलोहे, जिइदिए, जियनिद्दे, जियपरिसहे, जीवियास-मरणभय-विप्पमुक्के, तवप्पहाणे, गुणप्पहाणे एव करण-चरण-निग्गह-णिच्छय-अज्जव-मद्दव-लाघव-खत्ति-गुत्ति-मुत्ति-विज्जा-मत-बंभ-वय-नय-नियम-सच्च-सोय-णाण-दंसण-चरित्ते ओराले घोरे घोरपरिसहे घोरव्वए घोरतवस्सी घोरबंभचेरवासी उच्छूढसरीरे सखित्तविउलतेउलेसे) चउद्दसपुव्वी चउनाणोवगए पचहि अणगारसएहि सद्धि संपरिवुडे पुव्वाणुपुव्वि जाव (चरमाणे गामाणुगाम दूइज्जमाणे सुह सुहेण विहरमाणे) जेणेव चंपानयरी जेणेव पुण्णभद्दे चेइए तेणेव उवागच्छइ,

उवागच्छित्ता अहापडिरूवं जाव (उग्गहं उग्गिण्हइ, अहापडिरूवं उग्गहं उग्गिण्हित्ता संजमेण तवसा अप्पाणं भावेमाणे) विहरइ। परिसा निग्गया। धम्मं सोच्चा निसम्म जामेव दिसिं पाउब्भूया तामेव दिसिं पडिगया।

२—उस काल उस समय मे श्रमण भगवान महावीर स्वामी के शिष्य—जातिसम्पन्न (जिसकी माता मे मातृजनोचित प्रशस्त गुण विद्यमान हो अथवा जिसका मातृपक्ष निर्मल हो) कुल-सम्पन्न—उत्तम पितृपक्ष सहित, बलसम्पन्न—उत्तम प्रकार के सहनन के बल से युक्त, रूपसम्पन्न—देवो की अपेक्षा भी अधिक सुन्दर रूप वाले, विनयवाले, चार ज्ञान सहित, क्षायिकसमकित से सम्पन्न, चारित्रसम्पन्न, लाघव-सम्पन्न-द्रव्य से अल्प उपधिवाले और भाव से ऋद्धि, रस, व साता इन तीन प्रकार के गौरव (गर्व) से रहित, ओजस्वी-मनस्तेजसम्पन्न-वर्धमानपरिणाम वाले, तेजस्वी-शरीर की कान्ति वाले, वर्चस्वी-सौभाग्यादि गुणयुक्त वचन वाले अथवा वर्चस्वी-प्रभावशाली, यशस्वी-यश सम्पन्न, क्रोध, मान, माया तथा लोभ को जीतने वाले, पाच इन्द्रियो और निद्रा के विजेता, बावीस परिषहो को जीतने वाले, जीने की आशा तथा मृत्यु के भय से रहित, तप प्रधान—उत्कृष्ट तप करने वाले, गुणप्रधान—उत्कृष्ट सयम गुणवाले, करणप्रधान—पिण्डशुद्धि आदि करणसत्तरीप्रधान, चरणप्रधान—महाव्रतादिक चरणसत्तरीप्रधान, निग्रह-प्रधान—अनाचार मे नही प्रवर्तित होने वाले, निश्चय-प्रधान—तत्त्व का निश्चय करने मे उत्तम, आर्जवप्रधान—माया का निग्रह करने मे वरिष्ठ, मार्दव-प्रधान—मान का निग्रह करने मे श्रेष्ठ, लाघवप्रधान—क्रिया को करने की कुशलता वाले, क्षान्ति-प्रधान—क्रोध को नियन्त्रण मे रखने मे कुशल, गुप्तिप्रधान—मनोगुप्ति, वचनगुप्ति व कायगुप्ति का सरलता पूर्वक पालन करने मे आदर्श, मुक्तिप्रधान—निर्लोभीपने मे श्रेष्ठतम, विद्याप्रधान—देवताधिष्ठित प्रज्ञप्ति आदि विद्याओ मे परम निष्णात, मन्त्रप्रधान—हरिणेगमेषी आदि देव-अधिष्ठित विद्याओ से भरपूर अथवा जो साधन-सहित हो—साधने से सिद्धि होती हो वह विद्या और साधनरहित मात्र पाठ करने से जो सिद्ध हो जाते हो वे मन्त्र, इन दोनो मे कुशल, ब्रह्म-प्रधान—ब्रह्मचर्य की साधना अथवा सर्वकुशल अनुष्ठानो मे कुशल, वेदप्रधान—लौकिक-लोकिकोत्तर आगमो सम्बन्धी कुशलता से सम्पन्न, नयप्रधान—नैगमादि सात नयो के सूक्ष्मता से ज्ञाता, नियमप्रधान—अनेक प्रकार के अभिग्रहो को धारण करने मे वरिष्ठ, सत्यप्रधान—सत्यवाणी बोलने मे कुशल, दर्शन-प्रधान—चक्षुदर्शनादि से अथवा सम्यक्त्व गुण से श्रेष्ठ, चारित्र-प्रधान—प्रतिलेखनादि सत्क्रियाओ को करने मे जागृत, ओराल—उदार, भयानक—उग्र तपश्चर्या करने के कारण समीपवर्ती अल्पसत्त्व वाले मनुष्यो की दृष्टि मे भयानक, घोरपरिषह—इन्द्रियो व कषाय नामक शत्रुओ को वशवर्ती करने मे निर्दय, घोरव्रत—दूसरो के लिये जिन व्रतो का अनुष्ठान दुष्कर प्रतीत हो, ऐसे विशुद्ध महाव्रतो को पालने वाले, घोर तपस्वी—उग्र तपस्या करने वाले, घोर ब्रह्मचर्यवासी—उत्कृष्ट ब्रह्मचर्य के धारक, उज्झितशरीर—शरीर के सत्कार-शृङ्गार से रहित, सक्षिप्त-विपुल-तेजोलेश्य—अनेक योजनप्रमाण रही हुई वस्तुओ को जला सकने की क्षमता वाली विस्तीर्ण तेजोलेश्या को जिन्होने अपने शरीर मे ही समाविष्ट कर लिया है, ऐसी शक्ति से सम्पन्न, चौदह पूर्वो के ज्ञाता, केवलज्ञान को छोडकर शेष चार ज्ञान—मति, श्रुत, अवधि व मन.पर्यवज्ञान के धारक, पाच सौ अनगारो (साधुओ) से घिरे हुए सुधर्मा अनगार-मुनि क्रमश विहार करते हुए अर्थात् अप्रतिबद्ध विहारी होने मे विवक्षित ग्राम से अनन्तर के ग्राम मे चलते हुए, साधुवृत्ति के अनुसार सुखपूर्वक विहरण करते हुए चम्पानगरी के पूर्णभद्र नामक चैत्य-उद्यान मे साधुवृत्ति के अनुरूप [अवग्रह (आश्रय) उपलब्ध कर सयम और तप के द्वारा आत्मा को भावित करते हुए] विचरने

लगे। धर्मकथा सुनने के लिये जनता (परिषद्) नगर से निकलकर वहाँ आयी। धर्मकथा श्रवण कर और हृदय मे अवधारण कर जिस ओर से आयी थी उसी ओर (यथास्थान) चली गई।

३—तेण कालेणं तेण समएणं अज्जसुहम्मस्स अन्तेवासी अज्जजंबू नामं अणगारे सत्तुस्सेहे, जहा गोयमसामी तहा, जाव (समचउरंससठाणसठिए, वज्जरिसहनारायसंघयणे, कणगपुलगणिघस-पम्हगोरे, उग्गतवे, दित्ततवे, तत्ततवे, महातवे, ओराले, घोरे, घोरगुणे, घोरतवस्सी, घोरबंभचेरवासी, उच्छूढसरीरे, संखित्तविउलतेउलेस्से, चोद्दसपुव्वी, चउणाणोवगए, सव्वक्खरसन्निवाई समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामन्ते उड्ढजाणु अहोसिरे झाणकोट्ठोवगए संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे) विहरइ।

तए ण अज्जजंबू नामं अणगारे जायसड्ढे (जायसंसए, जायकोउहल्ले, उप्पन्नसड्ढे उप्पन्नसंसए, उप्पन्नकोउहल्ले, सजायसड्ढे संजायसंसए, सजायकोउहल्ले, समुप्पन्नसड्ढे समुप्पन्नसंसए, समुप्पन्न-कोउहल्ले, उट्ठाए उट्ठेइ, उट्ठाए उट्ठेत्ता) जेणेव अज्जसुहम्मे अणगारे तेणेव उवागए, तिक्खुत्तो आयाहिण पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमसइ, वंदित्ता, नमसित्ता (अज्जसुहम्मस्स थेरस्स णच्चासण्णे नातिदूरे सुस्सूसमाणे णमंसमाणे अभिमुहं पंजलिउडे विणएण) जाव पज्जुवासइ, पज्जुवासित्ता एवं वयासी।

३—उस काल उस समय मे आर्य सुधर्मा स्वामी के शिष्य जम्बू स्वामी थे, जो सात हाथ प्रमाण शरीर वाले तथा गौतम स्वामी के समान थे। (श्री गौतम स्वामी का वर्णन भगवती सूत्र मे वर्णित है। तदनुसार पालथी मारकर बैठने पर जिनके शरीर की ऊँचाई और चौड़ाई बराबर हो ऐसे समचतुरस्र सस्थान वाले है, जो वज्रऋषभनाराचसहनन के (हड्डियो की रचना की दृष्टि से सर्वोत्तम सुदृढ व सबल अस्थिबधन के) धारक है, जो सोने की रेखा के समान और पद्म-पराग, (कमल-रज) के समान वर्ण वाले है, जो उग्र (साधारण मनुष्य जिसकी कल्पना भी नही कर सकता ऐसे) तप करने वाले हैं, दीप्त तपस्वी (कर्मरूपी वन को भस्म करने मे समर्थ तप करने वाले), तप्त-तपस्वी (जिस तप से कर्मो को सन्ताप हो—कर्म नष्ट हो जाए—ऐसे कठोर तप को करने वाले), महातपस्वी (किसी तरह की आकाक्षा-अभीप्सा रक्खे विना निष्काम भाव से किये जाने वाले महान् तप को करने वाले) है, जो उदार है, आत्म-शत्रुओ को नष्ट करने मे निर्भीक हैं, जो दूसरो के द्वारा दुष्प्राप्य गुणो को धारण करने वाले है, जो घोर तप के अनुष्ठान के कारण तपस्वी पद से अलकृत हैं, जो शरीर मे ममत्व वृत्ति से रहित है, जो अनेक योजन-प्रमाण क्षेत्राश्रित वस्तुओ के दहन मे समर्थ विस्तीर्ण तेजो-लेश्या को—तपोजन्य विशिष्ट लब्धि-विशेष को सक्षिप्त किये हुए है, जो चौदह पूर्वो के ज्ञाता हैं, जो चार ज्ञान के धारक हैं, जिन्हे सम्पूर्ण अक्षरसयोग का ज्ञान है, जिन्होने उत्कुटुक आसन लगा रखा है, जो अधोमुख हैं तथा धर्मध्यान रूप कोष्ठक मे प्रवेश किये हुए, भगवान् महावीर के पास सयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरते हैं) ऐसे आचार को धारण करने वाले यावत् ध्यान रूप कोष्ठ को प्राप्त हुए आर्य जम्बू नामक अनगार विराजमान हो रहे है। तदन्तर जातश्रद्ध (अर्थात् तत्त्व को जानने की इच्छा मे जिनकी प्रवृत्ति हो) जातसशय (इच्छा मे प्रवृत्ति होने का कारण सशय है, क्योकि सशय होने से ही जानने की इच्छा होती है) जात-कुतूहल—(कुतूहल—उत्सुकता अर्थात् श्री सुधर्मास्वामी से प्रश्न करने पर उनसे अपूर्व वस्तु-तत्त्व की समझ प्राप्त होगी इत्यादि) उत्पन्नश्रद्ध, उत्पन्नसंशय, उत्पन्नकुतूहल, सजातश्रद्ध, सजातसशय, सजातकुतूहल, समुत्पन्नश्रद्ध, समुत्पन्नसशय,

समुत्पन्नकुतूहल होकर श्री जम्बूस्वामी उठने को तैयार हुए, तैयार होकर, उठकर खडे हुए, खडे होकर जिस स्थान पर आर्य सुधर्मा स्वामी विराजमान थे, उसी स्थान पर पधार गये। दाहिनी ओर से बायी ओर तीन वार अञ्जलिवद्ध हाथ घुमाकर आवर्तनपूर्वक प्रदक्षिणा करने के पश्चात् वन्दना-नमस्कार करके आर्य सुधर्मा स्वामी से न वहुत दूर और न वहुत पास, सुधर्मा स्वामी की सेवा करते हुए विनय पूर्वक इस प्रकार वोले—

विवेचन—प्रस्तुत पाठ मे जातश्रद्ध, उत्पन्नश्रद्ध, सजातश्रद्ध और समुत्पन्नश्रद्ध आदि विशेषण प्रयोग किये गये हैं, वे मन मे उत्पन्न होने वाली क्रमिक अवस्थाओ के द्योतक है। प्रथम तीन अवग्रह रूप, दूसरे तीन ईहारूप और तीसरे तीन अवायरूप और चौथे तीन धारणारूप समझना चाहिए।

४—जइ ण भंते! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव[1] सपत्तेण दसमस्स अंगस्स पण्हावागरणस्स अयमट्ठे पन्नत्ते, एक्कारसमस्स णं भते! अगस्स विवागसुयस्स समणेण जाव[2] सपत्तेण के अट्ठे पन्नत्ते?

४—हे भगवन्। यदि मोक्ष को प्राप्त हुए श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने प्रश्नव्याकरण नामक ग्यारहवे अङ्ग का यह अर्थ प्रतिपादित किया है तो विपाकश्रुत नामक ग्यारहवे अङ्ग का यावत् मोक्ष को सम्प्राप्त श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने क्या अर्थ प्रतिपादित किया है?

सुधर्मा स्वामी का उत्तर

५—तए णं अज्जसुहम्मे अणगारे जंबु अणगारं एवं वयासी—"एवं खलु, जबू! समणेण जाव[3] संपत्तेण एक्कारसमस्स अगस्स विवागसुयस्स दो सुयक्खधा पन्नत्ता; तं जहा—दुहविवागा य सुहविवागा य।"

जइ णं भते! समणेणं जाव[4] सपत्तेणं एक्कारसमस्स अंगस्स विवागसुयस्स दो सुयक्खंधा पन्नत्ता, तं जहा—दुहविवागा य सुहविवागा य, पढमस्स ण, भंते! सुयक्खधस्स दुहविवागाणं समणेण जाव[5] संपत्तेणं कइ अज्झयणा पन्नत्ता?

५—तदनन्तर आर्य सुधर्मा स्वामी ने (अपने सुविनीत शिष्य) श्री जम्बू अनगार को इस प्रकार कहा—हे जम्बू (धर्म की आदि करने वाले, तीर्थप्रवर्तक) मोक्षसलब्ध भगवान् श्रीमहावीर स्वामी ने विपाकश्रुत (जिसमे शुभ-अशुभ कर्मों के सुख-दु ख रूप विपाक—परिणामो का दृष्टान्तपूर्वक कथन है) नाम के ग्यारहवें अङ्ग के दो श्रुतस्कन्ध प्रतिपादित किये है, जैसे कि—दुःखविपाक और सुखविपाक।

हे भगवन्! यदि मोक्ष को उपलब्ध श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने विपाकश्रुत सज्ञक एकादशवे अङ्ग के दु खविपाक और सुखविपाक नामक दो श्रुतकन्ध कहे हैं, तो हे प्रभो! दु खविपाक नामक प्रथम श्रुतस्कन्ध के मोक्षसम्प्राप्त श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने कितने अध्ययन प्रतिपादित किये हैं?

६—तए ण अज्जसुहम्मेअणगारे जंबु एवं वयासी—एव खलु जम्बू! समणेणं " आइगरेण तित्थयरेण जाव सपत्तेण दुहविवागाणं दस अज्झयणा पन्नत्ता, त जहा—

१-२-३-४-५ यहा 'जाव' शब्द मे भगवती, समवायाङ्ग आदि सूत्रो मे उल्लिखित तथा नमोत्थु ण पाठ मे भगवान् के जितने विशेषण वताए गये हैं, वे समझ लेना चाहिये।

मियापुत्ते य उज्झियए अभग्ग, सगडे वहस्सई नन्दी ।
उंबर सोरियदत्ते य देवदत्ता य अंजू य ॥१॥

६—तत्पश्चात् आर्य सुधर्मास्वामी ने अपने अन्तेवासी श्री जम्बू अनगार को इस प्रकार कहा—'हे जम्बू ! धर्म की आदि करने वाले, तीर्थप्रवर्तक, मोक्ष को उपलब्ध श्री श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने दुखविपाक के दस अध्ययन फरमाये हैं जैसे कि—

(१) मृगापुत्र (२) उज्झितक (३) अभग्नसेन (४) शकट (५) बृहस्पति (६) नन्दिवर्धन (७) उम्बरदत्त (८) शौरिकदत्त (९) देवदत्ता और (१०) अञ्जू ।

७—'जइ ण, भंते ! समणेण आइगरेण तित्थयरेणं जाव संपत्तेणं दुहविवागाणं दस अज्झयणा पन्नत्ता; त जहा—मियापुत्ते य जाव अंजू य, पढमस्स णं भंते ! अज्झयणस्स दुहविवागाणं समणेणं जाव सपत्तेणं के अट्ठे पन्नत्ते ?'

तए ण से सुहम्मे अंबु अणगार एवं वयासी—'एवं खलु जम्बू ! तेणं कालेणं तेणं समएण मियग्गामे नाम नयरे होत्था। वण्णओ।[1] तस्स णं मियग्गामस्स नयरस्स वहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए चंदणपायवे नामं उज्जाणे होत्था सव्वोउय०। वण्णओ। तत्थ ण सुहम्मस्स जक्खस्स जक्खाययणे होत्था, चिराइए जहा पुण्णभद्दे ।

७—अहो भगवन् ! यदि धर्म की आदि करने वाले, तीर्थप्रवर्तक मोक्ष को समुपलब्ध श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने दुखविपाक के मृगापुत्र से लेकर अञ्जू पर्यन्त दश अध्ययन कहे है तो मुक्तिप्राप्त श्रमण भगवान् महावीर ने, प्रभो ! दुखविपाक के प्रथम अध्ययन का क्या अर्थ कहा है ?

इसके उत्तर मे आर्य सुधर्मा स्वामी अपने (सुशिष्य) श्री जम्बू अनगार को कहते हैं—हे जम्बू ! उस काल उस समय मे मृगाग्राम नाम का एक नगर था जिसका वर्णन औपपातिक सूत्र मे किये गये नगरवर्णन के ही समान जान लेना चाहिए। उस मृगाग्राम सज्ञक नगर के बाहर उत्तर पूर्व दिशा के मध्यअर्थात् ईशान कोण मे सब ऋतुओ मे होने वाले फल पुष्प आदि से युक्त चन्दन-पादप नामक एक उपवन था। इसका भी वर्णन औपपातिक सूत्र से समझ लेना चाहिये। उस उद्यान मे सुधर्मा नामक यक्ष का एक पुरातन यक्षायतन था जिसका वर्णन पूर्णभद्र यक्षायतन की तरह समझना ।

जन्मांध मृगापुत्र

८—तत्थ णं मियग्गामें नयरे विजए नामं खत्तिए राया परिवसइ, वण्णओ। तस्स णं विजयस्स

---

१ प्रस्तुत आगम मे प्राय चार स्थानो पर "वण्णओ" पद का प्रयोग प्राप्त होता है—प्रथम नगर के साथ, दूसरा उद्यान के साथ, तीसरा विजय राजा और चौथा रानी मृगावती के साथ। जैनागमो की अपनी एक पारम्परिक प्रणालिका हो है कि यदि किसी एक आगम मे किसी उद्यान, नगर, चैत्य, राजा, रानी, सयमशील साधु का सागोपाग वर्णन कर दिया हो, प्रसगवश उस वर्णन को पुन नही दुहराते हुए निर्दिष्ट आगम से उसका वर्णन जान लेने के लिये 'वण्णओ' ऐसा साकेतिक शब्द निर्दिष्ट किया जाता है। अत जहाँ कही वण्णओ शब्द का सकेत हो वहाँ औपपातिक सूत्र मे वर्णित नगर, उद्यान, यक्ष, यक्षायतन, राजा व रानी के वर्णन की तरह समझ लेना चाहिये ।

खत्तियस्स मिया नाम देवी होत्था। अहीण ‥ । वण्णओ। तस्स ण विजयस्स खत्तियस्स पुत्ते मियाए देवीए अत्तए मियापुत्ते नामं दारए होत्था। जाइ-अन्धे, जाइ-मूए, जाइ-बहिरे, जाइ-पगुले, हुडे य वायवे य। नत्थि णं तस्स दारगस्स हत्था वा पाया वा कण्णा वा अच्छी वा णासा वा। केवलं से तेसिं अगोवगाणं आगिई आगिइमित्ते। तए ण सा मियादेवी तं मियापुत्तं दारग रहस्सियसि भूमिघरंसि रहस्सिएण भत्तपाणेण पडिजागरमाणी पडिजागरमाणी विहरइ।

८—उस मृगापुत्र नामक नगर मे विजय नाम का एक क्षत्रिय राजा निवास करता था। उस विजय नामक क्षत्रिय राजा की मृगा नामक रानी थी। उस सर्वांगसुन्दरी रानी का रूप-लावण्य औपपातिक सूत्र मे किये गये राज्ञीवर्णन के ही समान जान लेना। उस विजय क्षत्रिय का पुत्र और मृगा देवी का आत्मज मृगापुत्र नाम का एक बालक था। वह बालक जन्म के समय से ही अन्धा, गूगा, बहरा, लूला, हुण्ड था (उसके शरीर के सभी अवयव बिना ढग के—बेढव थे) वह वातरोग से पीडित था। उसके हाथ, पैर, कान, आँख और नाक भी न थे। इन अगोपागो का केवल आकार ही था और वह आकार-चिह्न भी नाम-मात्र का (उचित स्वरूपवाला नही) था। वह मृगादेवी गुप्त भूमिगृह (मकान के नीचे के तलघर) मे गुप्तरूप से आहारादि के द्वारा उस बालक का पालन-पोषण करती हुई जीवन बिता रही थी।

९—तत्थ णं मियग्गामे नयरे एके जाइअन्धे पुरिसे परिवसेइ। से ण एगेणं सचक्खुएण पुरिसेण पुरओ दण्डएण पगड्ढिज्जमाणे पगड्ढिज्जमाणे फुट्टहडाहडसीसे मच्छियाचडगरपहकरेण अन्निज्ज-माणमग्गे मियग्गामे नयरे गिहे गिहे कालुणवडियाए वित्ति कप्पेमाणे विहरइ।

९—उस मृगाग्राम मे एक जन्मान्ध पुरुष रहता था। आँखो वाला एक व्यक्ति उसकी लकडी पकडे रहा करता था। उसी की सहायता से वह चला करता था। उसके मस्तक के बाल बिखरे हुए अत्यन्त अस्त-व्यस्त थे। (अत्यन्त मैला-कुचेला होने के कारण) उसके पीछे मक्खियो के झुण्ड के झुण्ड भिनभिनाते रहते थे। ऐसा वह जन्मान्ध पुरुष मृगाग्राम नगर के घर-घर मे कारुण्यमय-दैन्यमय भिक्षावृत्ति से अपनी आजीविका चला रहा था।

१०—तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे जाव समोसरिए। जाव परिसा निग्गया। तए ण से विजए खत्तिए इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे, जहा कूणिए तहा निग्गए जाव पज्जुवासइ।

१०—उस काल तथा उस समय मे श्रमण भगवान् महावीर (नगर के बाहर चन्दन-पादप उद्यान मे) पधारे। उनके पदार्पण के समाचारो को जानते ही जनता उनके दर्शनार्थ निकली। तदनन्तर विजय नामक क्षत्रिय राजा भी महाराजा कूणिक की तरह भगवान् के शुभागमन के वृत्तान्त को जानकर दर्शनार्थ नगर से चला यावत् समवसरण मे जाकर भगवान् की पर्युपासना—सेवा-भक्ति करने लगा।

११—तए ण से जाइअन्धे पुरिसे त महया जणसद्द जाव सुणेत्ता त पुरिस एव वयासी—"किं णं देवाणुप्पिया! अज्ज मियग्गामे नयरे इन्दमहे इ वा जाव (खदमहे इ वा उज्जाण-गिरिजत्ता इ वा जओ ण बहवे उग्गा भोगा एगदिसिं एगाभिमुहा) निग्गच्छंत्ति?" तए ण से पुरिसे जाइअन्ध-

पुरिस एव वयासी—'नो खलु, देवाणुप्पिया ! इन्दमहे इ वा जाव निग्गच्छइ । समणे जाव विहरइ । तए ण एए जाव निग्गच्छति ।" तए ण से जाइ अधपुरिसे तं पुरिसं एव वयासी—'गच्छामो ण देवाणुप्पिया ! अम्हे वि समण भगव जाव पज्जुवासामो ।" तए ण जाइअन्धे पुरिसे तेणं पुरओदंडएणं पुरिसेण पगड्ढिज्जमाणे पगड्ढिज्जमाणे जेणेव समणे भगव महावीरे तेणेव उगावए, उवागच्छित्ता तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिण करेइ, करेत्ता वदइ, नमसइ, वंदित्ता नमसित्ता जाव पज्जुवासइ । तए ण समणे भगव महावीरे विजयस्स खत्तियस्स तीसे य धम्ममाइक्खइ, जाव परिसा पडिगया, विजए वि गए ।

११—तदनन्तर वह जन्मान्ध पुरुष नगर के कोलाहलमय वातावरण को जानकर उस पुरुष के प्रति इस प्रकार बोला—हे देवानुप्रिय ! क्या आज मृगाग्राम नगर मे इन्द्र-महोत्सव है [स्कन्द-महोत्सव है, उद्यान की या पर्वत की यात्रा है, जिसके कारण ये उग्रवशी तथा भोगवशी आदि एक ही दिशा मे—एक ही ओर] नगर के बाहर जा रहे हैं ? (यह सुन) उस पुरुष ने जन्मान्ध से कहा—'हे देवानुप्रिय ! आज इस गाम (नगर) मे इन्द्रमहोत्सव नही है किन्तु (इस मृगा-ग्राम--नगर के बाहर चन्दन-पादप उद्यान मे) श्रमण भगवान् महावीर स्वामी पधारे हैं, वहाँ ये सब दर्शनार्थ जा रहे हैं । तब उस जन्मान्ध पुरुष ने कहा—'चलो, हम भी चले और चलकर भगवान् की पर्युपासना करे । तदनन्तर दण्ड के द्वारा आगे को ले जाया जाता हुआ वह जन्मान्ध पुरुष, जहाँ पर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी विराजमान थे वहाँ पर आ गया । वहाँ आकर वह तीन बार दक्षिण ओर से आरम्भ करके प्रदक्षिणा (आवर्तन) करता है । प्रदक्षिणा करके वदन-नमस्कार करता है । वन्दना तथा नमस्कार करके भगवान् की पर्युपासना—सेवा भक्ति मे तत्पर हुआ । तदनन्तर श्रमण भगवान् महावीर ने विजय राजा तथा नगर-जनता को धर्मोपदेश दिया । यावत् कथा सुनकर विजय राजा तथा परिषद् यथास्थान चले गये ।

मृगापुत्र के विषय में गौतम की जिज्ञासा

१२—तेण कालेणं तेणं समएण समणस्स भगवओ महावीरस्स जेट्ठे अंतेवासी इन्दभूई नाम अणगारे जाव विहरइ । तए ण से भगव गोयमे त जाइअन्धपुरिस पासइ, पासित्ता जायसड्ढे जाव एवं वयासी—'अत्थि णं भते ! केई पुरिसे जाइअन्धे जाइअन्धारूवे ?'

हंता अत्थि ।

"कह ण भते ! से पुरिसे जाइअन्धे जाइअन्धरूवे ?"

'एव खलु, गोयमा ! इहेव मियग्गामे नयरे विजयस्स खत्तियस्स पुत्ते मियादेवीए अत्तए मियापुत्ते नामं दारए जाइअन्धे जाइअन्धरूवे । नत्थि ण तस्स दारगस्स जाव आगिइमित्ते । तए णं सा मियादेवी जाव पडिजागरमाणी पडिजागरमाणी विहरइ ।'

तए ण से भगव गोयमे समणं भगव महावीर वंदइ, नमंसइ, वदित्ता नमसित्ता एवं वयासी—'इच्छामि ण भते ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे मियापुत्त दारग पासित्तए ।'

'अहासुहं देवाणुप्पिया !'

१२—उस काल तथा उस समय मे श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के प्रधान शिष्य इन्द्र-

भूति नाम के अनगार भी वहाँ विराजमान थे। भगवान् गौतम स्वामी (इन्द्रभूति अनगार) ने उस जन्मान्ध पुरुष को देखा और देखकर जातश्रद्ध—प्रवृत्त हुई श्रद्धा वाले—भगवान् गौतम इस प्रकार बोले—'अहो भगवन् ! क्या कोई ऐसा पुरुष भी है कि जो जन्मान्ध व जन्मान्धरूप हो ?'

भगवान् ने कहा—'हाँ, ऐसा पुरुष है !'

'हे प्रभो ! वह पुरुष कहाँ है जो जन्मान्ध व जन्मान्धरूप हो ?'

भगवान् ने कहा—'हे गौतम ! इसी मृगाग्राम नगर मे विजयनरेश का पुत्र और मृगादेवी का आत्मज मृगापुत्र नाम का वालक है, जो जन्मत अन्धा तथा जन्मान्धरूप है। उसके हाथ, पैर, चक्षु आदि अङ्गोपाङ्ग भी नही हैं ! मात्र उन अङ्गोपाङ्गो के आकार ही है ! उसकी माता मृगादेवी उसका पालन-पोपण सावधानी पूर्वक छिपे-छिपे कर रही है।

तदनन्तर भगवान् गौतम ने भगवान् महावीर स्वामी के चरणो मे वन्दन-नमस्कार किया। वन्दन-नमस्कार करके उनसे विनती—प्रार्थना की कि—'हे प्रभो ! यदि आपकी अनुज्ञा प्राप्त हो तो मैं मृगा-पुत्र को देखना चाहता हूँ।'

इसके उत्तर मे भगवान् ने फरमाया—'गौतम ! जैसे तुम्हे सुख उपजे वैसा करो !'

१३—तए णं से भगवं गोयमे समणेणं भगवया महावीरेण अब्भणुन्नाए समाणे हट्ठतुट्ठे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिआओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता अतुरियं जाव [अचल-मसभंते जुगतरपलोयणाए दिट्ठीए पुरओरियं] सोहेमाणे जेणेव मियग्गामे नयरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता मियग्गाम नयरं मज्झंमज्झेणं अणुपविसइ, अणुप्पविसित्ता जेणेव मियादेवीए गिहे तेणेव उवागच्छइ।

१३—तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर के द्वारा आज्ञा प्राप्त कर प्रसन्न व सन्तुष्ट हुए श्रीगौतम स्वामी भगवान् के पास से (मृगापुत्र को देखने के लिये) निकले। विवेकपूर्वक (जरा भी उतावल किये विना ईर्यासमिति का यथोचित पालन करते हुए) भगवान् गौतम स्वामी जहाँ मृगा-ग्राम नगर था वहाँ आये और आकर मृगाग्राम नगर के मध्यमार्ग से मृगाग्राम नगर मे प्रवेश किया। क्रमश जहाँ मृगादेवी का घर था, गौतम स्वामी वहा पहुँच गये।

१४—तए णं सा मियादेवी भगव गोयम एज्जमाणं पासइ, पासित्ता हट्ठतुट्ठ जाव एवं वयासी—"सदिसतु णं देवाणुप्पिया ! किमागमणप्पओयण ?"

तए णं से भगव गोयमे मियादेविं एव वयासी—"अह ण देवाणुप्पिए, तव पुत्तं पासिउ हव्वमागए।"

तए ण सा मियादेवी मियापुत्तस्स दारगस्स अणुमग्गजायए चत्तारि पुत्ते सव्वालकारविभूसिए करेइ, करेत्ता भगवओ गोयमस्स पाएसु पाडेइ, पाडेत्ता एवं वयासी—"एए णं भते ! मम पुत्ते, पासह"।

१४—तदनन्तर उस मृगदेवी ने भगवान गौतम स्वामी को आते हुए देखा और देखकर हर्पित प्रमुदित हुई इस प्रकार कहने लगी—'भगवन् ! आपके पधारने का क्या प्रयोजन है ?'

इसके उत्तर मे भगवान् गौतम स्वामी ने कहा—'हे देवानुप्रिये ! मैं तुम्हारे पुत्र को देखने आया हूँ !'

तब मृगादेवी ने मृगापुत्र के पश्चात् उत्पन्न हुए चार पुत्रो को वस्त्र-भूषणादि से अलकृत किया और अलकृत करके गौतमस्वामी के चरणो मे डाला (नमस्कार कराया) और डाल करके (नमस्कार कराने के पश्चात्) इस प्रकार कहा—'भगवन् ! ये मेरे पुत्र हैं, इन्हे आप देख लीजिए !'

१५—तए णं से भगव गोयमे मियादेविं एवं वयासी—"नो खलु देवाणुप्पिए ! अह एए तव पुत्ते पासिउं हव्वमागए । तत्थ णं जे से तव जेट्ठे मियापुत्ते दारए जाइअन्धे जाइअन्धरूवे, जं ण तुम रहस्सियंसि भूमिघरंसि रहस्सिएण भत्तपाणेण पडिजागरमाणी पडिजागरमाणी विहरसि तं णं अहं पासिउ हव्वमागए ।'

तए णं सा मियादेवी भगवं गोयमं एवं वयासी—'से के णं गोयमा ! से तहारूवे नाणी वा तवस्सी वा, जेणं तव एसमट्ठे मम ताव रहस्सीकए तुब्भ हव्वमक्खाए, जओ ण तुब्भे जाणह ?'

तए णं भगवं गोयमे मियादेविं एवं वयासी—"एव खलु देवाणुप्पिए ! समणे भगवं महावीरे, तओ ण अह जाणामि ।"

१५—यह सुनकर भगवान् गौतम मृगादेवी से बोले—हे देवानुप्रिये ! मैं तुम्हारे इन पुत्रो को देखने के लिए यहाँ नही आया हूँ, किन्तु तुम्हारा जो ज्येष्ठ पुत्र मृगापुत्र है, जो जन्मान्ध व जन्मान्धरूप है, तथा जिसको तुमने एकान्त भूमिगृह (भोरे) मे गुप्तरूप से सावधानी पूर्वक रक्खा है और छिपे-छिपे खानपान आदि के द्वारा जिसके पालन-पोषण मे सावधान रह रही हो, उसी को देखने मैं यहाँ आया हूँ ।

यह सुनकर मृगादेवी ने गौतम से (आश्चर्यचकित होकर) निवेदन किया कि—हे गौतम ! वे कौन तथारूप ऐसे ज्ञानी व तपस्वी है, जिन्होने मेरे द्वारा एकान्त गुप्त रक्खी यह बात आपको यथार्थरूप मे बता दी । जिससे आपने यह गुप्त रहस्य सरलता से जान लिया ?

तब भगवान् गौतम स्वामी ने कहा—हे भद्रे ! मेरे धर्माचार्य्य श्रमण भगवान् महावीर स्वामी हैं और प्रभु महावीर स्वामी ने ही मुझे यह रहस्य बताया है ।

१६—जाव च ण मियादेवी भगवया गोयमेण सद्धिं एयमट्ठं संलवइ, ताव च णं मियापुत्तस्स दारगस्स भत्तवेला जाया यावि होत्था । तए ण सा मियादेवी भगव गोयम एव वयासी—'तुब्भे ण भन्ते! इह चेव चिट्ठह जा णं अह तुब्भं मियापुत्तं दारगं उवदंसेमि त्ति कट्टु जेणेव भत्त-पाणघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता वत्थपरियट्टय करेइ, करेत्ता कट्ठसगडिय गिण्हइ, गिण्हित्ता विउलस्स असण-पाण-खाइम-साइमस्स भरेइ, भरित्ता त कट्ठसगडियं अणुकड्ढमाणी अणुकड्ढमाणी जेणेव भगव गोयमे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता भगव गोयम एवं वयासी—"एह ण तुब्भे भंते ! मम अणुगच्छह, जा णं अह तुब्भ मियापुत्तं दारगं उवदसेमि ।" तए ण से भगवं गोयमे मियादेविं पिट्ठओ समणुगच्छइ ।

१६—जिस समय मृगादेवी भगवान् गौतमस्वामी के साथ सलाप-सभाषण-वार्तालाप कर रही थी उसी समय मृगापुत्र दारक के भोजन का समय हो गया । तब मृगादेवी ने भगवान् गौतम स्वामी से निवेदन किया—'भगवन् ! आप यही ठहरिये, मैं अभी मृगापुत्र बालक को दिखलाती हूँ ।' इतना

कहकर वह जहाँ भोजनालय था, वहाँ आती है और आकर वस्त्र-परिवर्तन करती है। वस्त्र-परिवर्तन कर काष्ठ-शकट—लकडी की गाडी को—ग्रहण करती है और उसमे योग्य परिमाण मे (विपुल मात्रा मे) अशन, पान, खादिम व स्वादिम आहार भरती है। तदनन्तर उस काष्ठ-शकट को खीचती हुई जहाँ भगवान् गौतम स्वामी थे वहाँ आती है और भगवान् गौतम स्वामी से निवेदन करती है—'प्रभो! आप मेरे पीछे पधारे। मैं आपको मृगापुत्र दारक वताती हूँ।' (यह सुनकर) गौतम स्वामी मृगादेवी के पीछे-पीछे चलने लगे।

१७—तए णं सा मियादेवी त कट्ठसगडियं अणुकड्ढमाणी अणुकड्ढमाणी जेणेव भूमिघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता चउप्पुडेणं वत्थेण मुहं बधेइ। मुह बधमाणी भगव गोयम एवं वयासी—'तुब्भे वि य णं भंते! मुहपोत्तियाए मुह बधह।' तए ण से भगव गोयमे मियादेवीए एवं वत्ते समाणे मुहपोत्तियाए मुह बधेइ।

१७—तत्पश्चात् वह मृगादेवी उस काष्ठ-शकट को खीचती-खीचती जहा भूमिगृह (भोरा) था वहाँ पर आती है और आकर चार पड वाले वस्त्र से मुँह को वाधकर भगवान् गौतम स्वामी से इस प्रकार निवेदन करने लगी—'हे भगवन! आप भी मुख-वस्त्रिका से मुह को वाध ले।' मृगादेवी द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर भगवान् गौतमस्वामी ने भी मुख-वस्त्रिका से मुख को वाध लिया।

१८—तए णं सा मियादेवी परंमुही भूमिघरस्स दुवार विहाडेइ। तए ण गंधे निग्गच्छइ-से जहानामए अहिमडे इ वा जाव [गोमडे इ वा सुणहमडे इ वा मज्जारमडे इ वा मणुस्समडे इ वा महिसमडे इ वा मूसगमडे इ वा आसमडे इ वा हत्थिमडे इ वा सीहमडे इ वा वग्घमडेइ इ वा विगमडे इ वा दीविगमडे इ वा मयकुहिय-विणट्ठ-दुरभिवावण्ण-दुब्भिगधे किमिजालाउलससत्ते असुइ-विलीण-विगय-वीभच्छदरिसणिज्जे भवेयारूवे सिया?

नो इणट्ठे समट्ठे, एत्तो अणिट्ठतराए चेव अकंततराए चेव अप्पियतराए चेव अमणुण्णतराए चेव अमणामतराए चेव] गन्धे पन्नत्ते! तए णं से मियापुत्ते दारए तस्स विउलस्स असण-पाण-खाइम-साइमस्स गन्धेणं अभिभूए समाणे तसि विउलंसि असण-पाण-खाइम-साइमंमि मुच्छिए तं विउल असण-पाण खाइम-साइम आसएणं आहारेइ, आहारित्ता खिप्पामेव विद्ध सेइ, तओ पच्छा पूयत्ताए य सोणियत्ताए य परिणामेइ; तं पि य ण से पूय च सोणियं च आहारेइ।

१८—तत्पश्चात् मृगादेवी ने पराङ्मुख होकर (पीछे को मुख करके) जब उस भूमिगृह के दरवाजे को खोला तव उसमे से दुर्गन्ध निकलने लगी! वह गन्ध मरे हुए सर्प यावत् (गाय, कुत्ता, विल्ली, मनुष्य, महिप, मूपिक, अश्व, हाथी, सिंह, व्याघ्र, भेडिया, द्वीपिक आदि का कलेवर सड गया हो, गल गया हो, दुर्गंधित हो, जिसमे कीडो का समूह विलविला रहा हो, जो अशुचि, विकृत और देखने मे भी वीभत्स हो, वह दुर्गन्ध ऐसी थी? नही, वह दुर्गन्ध) उससे भी अधिक अनिष्ट (अकान्त, अप्रिय, अमनोज्ञ एव अमनाम) थी!

---

१ अशन—रोटी, दाल, शाक, भात, आदि सामग्री अशन शब्द से अभिप्रेत है।

२ पानी मात्र का ग्रहण पान शब्द मे किया गया है।

३ द्राक्ष, पिस्ता, वादाम आदि मेवे व मिठाई आदि पदार्थ खाद्य है।

४ पान, सुपारी, इलायची, लवग आदि मुखवास योग्य पदार्थ स्वादिम शब्द से इष्ट है।

तदनन्तर उस महान् अशन, पान, खादिम, स्वादिम के सुगन्ध मे आकृष्ट व मूर्च्छित हुए उस मृगापुत्र ने उस महान अशन, पान, खादिम, स्वादिम का मुख से आहार किया। शीघ्र ही वह नष्ट हो गया (जठराग्नि द्वारा पचा दिया गया) वह आहार तत्काल पीव (मवाद) व रुधिर के रूप मे परिवर्तित हो गया।। मृगापुत्र दारक ने पीव व रुधिर रूप मे परिवर्तित उस आहार का वमन कर दिया। वह बालक अपने ही द्वारा वमन किये हुए उस पीव व रुधिर को भी खा गया।

मृगापुत्र-विषयक-प्रश्न

१६—तए ण भगवओ गोयमस्स त मियापुत्त दारग पासित्ता अयमेयारूवे अज्झत्थिए चितिए कप्पिए पत्थिए मणोगए सकप्पे समुप्पज्जित्था—'अहो ण इमे दारए पुरापोराणाण दुच्चिण्णाणं दुप्पडिक्कताण असुभाण पावाण कडाण कम्माण पावग फलवित्तिविसेस पच्चणुब्भवमाणे विहरइ। न मे दिट्ठा नरगा वा नेरइया वा। पच्चक्ख खलु अय पुरिसे नरगपडिरूवय वेयण वेयइ।' त्ति कट्टु मियं देवि आपुच्छइ, आपुच्छित्ता मियाए देवीए गिहाओ पडिनिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता मियग्गाम नयरं मज्झंमज्झेण निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव समणे भगव महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समण भगव महावीर तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिण करेइ, करेत्ता वदइ, नमसइ, वदित्ता-नमसित्ता एवं वयासी—'एव खलु अह तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे मियग्गाम नयर मज्झंमज्झेण अणुप्पविसामि, अणुपविसित्ता जेणेव मियाए देवीए गिहे तेणेव उवागए। तए ण से मियादेवी मम एज्जमाण पासइ, पासित्ता हट्ठा, त चेव सव्वं जाव पूय च सोणिय च आहारेइ। तए ण इमे अज्झत्थिए चिंतिए कप्पिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—अहो ण इमे दारए पुरा जाव विहरइ।

से ण भते! पुरिसे पुव्वभवे के आसी? किंनामए वा किंगोत्तए वा? कयरंसि गामंसि वा नयरसि वा? किं वा दच्चा किं वा भोच्चा किं वा समायरित्ता केसिं वा पुरा जाव विहरइ?

१६—मृगापुत्र दारक की ऐसी (वीभत्स तथा करुणाजनक) दशा को देखकर भगवान् गौतम स्वामी के मन मे ये विकल्प उत्पन्न हुए—अहो! यह बालक पूर्वजन्मो के दुश्चीर्ण (दुष्टता मे किए गए) व दुष्प्रतिकान्त (जिन कर्मो को विनष्ट करने का कोई सुगम उपाय ही नहीं है) अशुभ पापकर्मों के पापरूप फल को पा रहा है। नरक व नारकी तो मैंने नही देखे, परन्तु यह मृगापुत्र सचमुच नारकीय वेदनाओ का अनुभव करता हुआ (प्रत्यक्ष) प्रतीत हो रहा है। इन्हीं विचारो मे आक्रान्त होते हुए भगवान् गौतम ने मृगादेवी से पूछ कर कि अब मैं जा रहा हू, उसके घर से प्रस्थान किया। मृगाग्राम नगर के मध्यभाग से चलकर जहाँ श्रमण भगवान् महावीर स्वामी विराजमान थे; वहाँ पधार गये। पधारकर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को दाहिनी ओर से प्रदक्षिणा करके वन्दन तथा नमस्कार किया और वन्दन-नमस्कार करके इस प्रकार बोले—

भगवन्! आपश्री से आज्ञा प्राप्त करके मृगाग्राम नगर के मध्यभाग से चलता हुआ जहाँ मृगादेवी का घर था वहाँ मैं पहुचा। मुझे आते हुए देखकर मृगादेवी हृष्ट तुष्ट हुई यावत् पीव व शोणित-रक्त का आहार करते हुए मृगा-पुत्र को देखकर मेरे मन मे यह विचार उत्पन्न हुआ—अहह! यह बालक पूर्वजन्मोपार्जित महापापकर्मो का फल भोगता हुआ वीभत्स जीवन बिता रहा है। भगवन्! यह पुरुष मृगापुत्र पूर्वभव मे कौन था? किस नाम व गोत्र का था? किस गाम अथवा नगर का रहने वाला था? क्या देकर, क्या भोगकर, किन-किन कर्मो का आचरण कर और किन-किन पुराने कर्मों के फल को भोगता हुआ जीवन बिता रहा है?

भगवान् द्वारा समाधान

२०—'गोयमा !' इ समणे भगवं महावीरे भगवं गोयमं एवं वयासी—एवं खलु गोयमा ! तेणं कालेण तेणं समएण इह जम्बुद्दीवे दीवे भारहे वासे सयदुवारे नामं नयरे होत्था रिद्धत्थिमिय' । वण्णग्रो[1] । तत्थ णं सयदुवारे नयरे धणवई नाम राया होत्था । वण्णग्रो । तस्स णं सयदुवारस्स नयरस्स ग्रदूरसामन्ते दाहिणपुरत्थिमे दिसीभाए विजयवद्धमाणे नामं खेडे होत्था । रिद्धत्थमियसमिद्धे । तस्स णं विजयवद्धमाणस्स खेडस्स पंचगामसयाइं आभोए यावि होत्था । तत्थ णं विजयवद्धमाणे खेडे इक्काई नामं रट्ठकूडे होत्था, ग्रहम्मिए जाव (ग्रधम्माणुए ग्रधम्मिट्ठे ग्रधम्मक्खाई ग्रधम्मपलोई अधम्मपलज्जणे ग्रधम्मसमुदाचारे) दुप्पडियाणदे । से णं इक्काई रट्ठकूडे विजयवद्धमाणस्स खेडस्स पञ्चण्हं गामसयाणं ग्राहेवच्चं जाव पालेमाणे विहरइ ।

२०—'हे गौतम !' इस तरह सम्बोधन करते हुए श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने भगवान् गौतम के प्रति इस प्रकार कहा—'हे गौतम ! उस काल तथा उस समय मे इस जम्बूद्वीप नामक द्वीप के अन्तर्गत भारतवर्ष मे शतद्वार नामक एक समृद्धिशाली नगर था । उस नगर मे धनपति नाम का एक राजा राज्य करता था । उस नगर से कुछ दूरी पर (न ग्रधिक दूर ग्रौर न ग्रधिक समीप) दक्षिण ग्रौर पूर्व-दिशा के मध्य—ग्रग्निकोण मे विजयवर्द्धमान नामक एक खेट—(नदी व पर्वतो से घिरा हुग्रा ग्रथवा धूलि के प्राकार से वेष्टित) नगर था जो ऋद्धि-समृद्धि ग्रादि से परिपूर्ण था । उस विजयवर्द्धमान खेट का पाच सौ ग्रामो का विस्तार था । उस विजयवर्द्धमान खेट मे इक्काई-एकादि नाम का राष्ट्रकूट—राजा की ग्रोर से नियुक्त प्रतिनिधि—प्रान्ताधिपति था, जो परम ग्रधार्मिक यावत् (ग्रधर्मानुगामी, ग्रधर्मनिष्ठ, ग्रधर्मभाषी, ग्रधमर्मानुरागी, ग्रधर्माचारी) तथा दुष्प्रत्यानन्दी—परम ग्रसन्तोषी, (साधुजनविद्वेषी ग्रथवा पापकृत्यो मे ही सदा ग्रानन्द मानने वाला) था । वह एकादि विजयवर्द्धमान खेट के पाच सौ ग्रामो का ग्राधिपत्य—शासन ग्रौर पालन करता हुग्रा जीवन विता रहा था ।

इक्काई का ग्रत्याचार

२१—तए णं से इक्काई विजयवद्धमाणस्य खेडस्स पंच गामसयाइं बहूहिं करेहि य भरेहि य विद्धीहि य उक्कोडाहि य पराभवेहि य दिज्जेहि य भिज्जेहि य कुंतेहि य लंछपोसेहि य ग्रासीवणेहि य पंथकोट्टेहि य ग्रोवीलेमाणे ग्रोवीलेमाणे विहम्मेणाणे विहम्मेमाणे तज्जेमाणे तज्जेमाणे तालेमाणे तालेमाणे निद्धणे करेमाणे करेमाणे विहरइ ।

तए ण से इक्काई रट्ठकूडे विजयवद्धमाणस्स खेडस्स बहूणं राई-सर-तलवर-माडविय-कोडुंबिय-सेट्ठि-सत्थवाहाणं ग्रन्नेसिं च बहूणं गामेल्लगपुरिसाणं बहुसु कज्जेसु य कारणेसु य मंतेसु य गुज्झेसु य निच्छएसु य ववहारेसु य सुणमाणे भणइ न 'सुणेमि', ग्रसुणमाणे भणइ 'सुणेमि' एवं पस्समाणे, भासमाणे, गिण्हमाणे, जाणेमाणे' । तए णं से इक्काई रट्ठकूडे एयकम्मे एयप्पहाणे एयविज्जे एयसमायारे सुबहु पावकम्म कलिकलुसं समज्जिणमाणे विहरइ ।

२१—तदनन्तर वह एकादि नाम का प्रतिनिधि (प्रान्ताधिपति) विजयवर्द्धमान खेट के पाच सौ ग्रामो को करो-महसूलो से, करो की प्रचुरता से, किसानो को दिये धान्यादि के द्विगुण ग्रादि के

१ ग्रौप० सूत्र—१

ग्रहण करने से, रिश्वत-घूसखोरी से, दमन से, अधिक व्याज से, हत्यादि के अपराध लगा देने से, धन-ग्रहण के निमित्त किसी को स्थान आदि का प्रवन्धक बना देने से, चोर आदि व्यक्तियो के पोषण से, ग्रामादि को जलाने से, पथिको को मार पीट करने से, व्यथित-पीडित करता हुआ, धर्म से विमुख करता हुआ, कशादि से ताडित और सधनो को निर्धन करता हुआ प्रजा पर अधिकार जमा रहा था।

तदनन्तर वह राजप्रतिनिधि एकादि विजयवर्द्धमान खेट के राजा-माडलिक, ईश्वर-युवराज, तलवर-राजा के प्रिय कृपापात्र अथवा राजा की ओर से जिन्हे उच्च सन्मान, पदवी, आसन-स्थान-विशेष प्राप्त हुआ हो ऐसे नागरिक लोग, माडबिक (मडव—जिसके निकट दो दो योजन तक कोई ग्राम न हो उस प्रदेश को मडब कहते हैं, उसके अधिपति) कौटुम्बिक—वडे कुटुम्बो के स्वामी, श्रेष्ठी, सार्थ-नायक तथा अन्य अनेक ग्रामीण पुरुषो के कार्यो मे, कारणो मे, गुप्त मन्त्रणाओ मे, निश्चयो और विवादास्पद निर्णयो अथवा व्यावहारिक बातो मे सुनता हुआ भी कहता था कि "मैंने नही सुना" और नही सुनता हुआ कहता था कि "मैंने सुना है।" इसी प्रकार देखता हुआ, बोलता हुआ, ग्रहण करता हुआ और जानता हुआ भी वह कहता था कि मैंने देखा नही, बोला नही, ग्रहण किया नही और जाना नही। इसी प्रकार के वचना-प्रधान कर्म करने वाला मायाचारो को ही प्रधान कर्तव्य मानने वाला, प्रजा को पीडित करने रूप विज्ञान वाला और मनमानी करने को ही सदाचरण मानने वाला, वह एकादि प्रान्ताधिपति दु ख के कारणीभूत परम कुलषित पापकर्मो को उपार्जित करता हुआ जीवन-यापन कर रहा था।

इक्काई को भयंकर रोग:

२२—तए णं तस्स रट्ठकूडस्स अन्नया कयाइ सरीरगंसि जमगसमगमेव सोलस रोगायंका पाउब्भूया। त जहा—

सासे कासे जरे दाहे कुच्छिसूले भगंदरे।
अरिसे अजीरए दिट्ठी, मुद्धसूले अकारए॥
अच्छिवेयणा कण्ण-वेयणा कंडू उयरे कोढे॥

तए णं से इक्काई रट्ठकूडे सोलसहिं रोगायंकेहिं अभिभूए समाणे कोडुम्बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—"गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया! विजयवद्धमाणे खेडे सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-महापह-पहेसु महया महया सद्देण उग्घोसेमाणा उग्घोसेमाणा एवं वयह—इह खलु देवाणुप्पिया! इक्काई रट्ठकूडस्स सरीरगंसि सोलस रोगायका पाउब्भूया, तं जहा—सासे कासे जरे जाव कोढे। त जो णं इच्छइ देवाणुप्पिया! वेज्जो वा वेज्जपुत्तो वा जाणओ वा जाणयपुत्तो वा तेगिच्छी वा तेगिच्छिपुत्तो वा इक्काई रट्ठकूडस्स तेसिं सोलसण्हं रोगायकाणं एगमवि रोगायक उवसामित्तए तस्स ण इक्काई रट्ठकूडे विउल अत्थसपयाणं दलयइ। दोच्चं पि तच्चं पि उग्घोसेह, उग्घोसित्ता एयमाणत्तिय पच्चप्पिणह"।

तए णं ते कोडुंवियपुरिसा जाव पच्चप्पिणंति!

२२—उसके वाद किसी समय उसके शरीर मे एक साथ ही सोलह प्रकार के रोगातक (जीवन के लिये अत्यन्त कष्टकर अथवा लगभग असाध्य रोग) उत्पन्न हो गये। जैसे कि—श्वास,

कास, ज्वर, दाह, कुक्षिशूल, भगन्दर, अर्श, ववासीर, अजीर्ण, दृष्टिशूल, मस्तक-शूल, अरोचक, अक्षि-वेदना, कर्णवेदना, खुजली, जलोदर, और कुष्टरोग—कोढ।

तदनन्तर उक्त सोलह प्रकार के भयकर रोगो से खेद को प्राप्त वह एकादि नामक प्रान्ताधिपति सेवको को वुलाता है और वुलाकर इस प्रकार कहता है—"देवानुप्रियो ! तुम जाओ और विजयवर्द्धमान खेट के शृ गाटक (त्रिकोणमार्ग) त्रिक-त्रिपथ (जहाँ तीन मार्ग मिलते हो) चतुष्क-चतुष्पथ (जहाँ चार मार्ग एकत्रित होते हो) चत्वर (जहाँ चार से अधिक मार्गो का सगम होता हो) महापथ—राजमार्ग और साधारण मार्ग पर जाकर अत्यन्त ऊँचे स्वरो से इस तरह घोषणा करो—'हे देवानुप्रियो ! एकादि प्रान्तपति के शरीर मे श्वास, कास, ज्वर यावत् कोढ नामक १६ भयङ्कर रोगातक उत्पन्न हुए हैं। यदि कोई वैद्य या वैद्यपुत्र, ज्ञायक या ज्ञायक-पुत्र, चिकित्सक या चिकित्सक-पुत्र उन सोलह रोगातको मे से किसी एक भी रोगातक को उपशान्त करे तो एकादि राष्ट्रकूट उसको वहुत सा धन प्रदान करेगा !' इस प्रकार दो तीन वार उद्घोषणा करके मेरी इस आज्ञा के यथार्थ पालन की मुझे सूचना दो।"

उन कौटुम्बिक पुरुषो-सेवको ने आदेशानुसार कार्य सम्पन्न करके उसे सूचना दी।

२३—तए ण से विजयवद्धमाणे खेडे इमं एयारूवं उग्घोसणं सोच्चा निसम्म वहवे वेज्जा य जाव[1] सत्थकोसहत्थगया सएहिंतो सएहिंतो गिहेहिंतो पडिनिक्खमन्ति, पडिनिक्खमित्ता विजयवद्धमाणस्स खेडस्स मज्झं मज्झेणं जेणेव इक्काई रट्ठकूडस्स गिहे तेणेव उवागच्छन्ति, उवागच्छित्ता इक्काइरट्ठकूडस्स सरीरगं परामुसति, परामुसित्ता तेसिं रोगाणं निदाण पुच्छति, पुच्छित्ता इक्काइरट्ठकूडस्स वहूहिं अब्भंगेहि य उव्वट्टणेहि य सिणेहपाणेहि य वमणेहि य विरेयणेहि य सेयणाहि य अवद्दहणाहि य अवण्हाणेहि य अणुवासणाहि य वत्थिकम्मेहि य निरूहेहि य सिरावेहेहि य तच्छणेहि य पच्छणेहि य सिरोवत्थीहि य तप्पणाहि य पुडपागेहि य छल्लीहि य मूलेहि य फलेहि य बीएहि य सीलियाहि य गुलियाहि य ओसहेहि य भेसज्जेहि य इच्छंति तेसिं सोलसण्ह रोगायंकाणं एगमवि रोगायकं उवसामित्तए, नो चेव णं संचाएति उवसामित्तए। तए ण ते वहवे वेज्जा य वेज्जपुत्ता य जाणया य जाणयपुत्ता य तेगिच्छिया य तेगिच्छियपुत्ता य जाहे नो सचाएंति तेसिं सोलसण्हं रोगायंकाणं एगमवि रोगायंकं उवसामित्तए, ताहे सता तंता परितता जामेव दिसिं पाउब्भूया तामेव दिसिं पडिगया।

२३—तदनन्तर उस विजयवर्द्धमान खेट मे इस प्रकार की उद्घोषणा को सुनकर तथा अवधारण करके अनेक वैद्य, वैद्यपुत्र, ज्ञायक, ज्ञायकपुत्र, चिकित्सक, चिकित्सकपुत्र अपने अपने शस्त्रकोष (औजार रखने की पेटी या थैली) को हाथ मे लेकर अपने अपने घरो से निकलते है और निकलकर विजयवर्द्धमान नामक खेट के मध्यभाग से जाते हुए जहाँ एकादि प्रान्ताधिपति का घर था, वहाँ पर आते है। आकर एकादि राष्ट्रकूट के शरीर का सस्पर्श करते हैं, सस्पर्श करके निदान (रोगो के मूलकारण) की पृच्छा करते हैं और पूछकर के एकादि राष्ट्रकूट के इन सोलह रोगातको मे से किसी एक रोगातक को शान्त करने के लिये अनेक प्रकार के अभ्यगन (मालिश), उद्वर्तन (उवटन-वरणा वगैरह मलने) स्नेहपान (घृतादि स्निग्ध पदार्थों के पान कराने), वमन (उल्टी कराने), विरेचन (जुलाव अथवा अधोद्वार से मल को निकालने), स्वेदन (पसीने), अवदहन (गर्म लोहे के कोश आदि से चर्म पर दागने),

१ देखिए ऊपर का सूत्र १।१।१२२

अवस्नान (चिकनाहट दूर करने के लिए अनेक-विध द्रव्यो से सस्कारित जल से स्नान कराने), अनुवासन (गुदा द्वारा पेट मे तैलादि के प्रवेश कराने), निरूह (औषधियो को डालकर पकाये गए तैल के प्रयोग—विरेचन विशेष), वस्तिकर्म (गुदा मे वत्ती आदि के प्रक्षेप करने), शिरोवेध (नाडी के वेधन करने), तक्षण (क्षुरा, चाकू आदि सामान्य शस्त्रो द्वारा कर्तन-काटना), प्रतक्षण (विशेष रूप से कर्तन—वारीक शस्त्रो से त्वचा विदारण करने) शिरोवस्ति (सिर मे चर्म कोश बाँधकर उसमे औषधि-द्रव्य-सस्कृत तैलादि को पूर्ण कराने-भराने) तर्पण (स्निग्ध पदार्थो से शरीर को वृहण—तृप्त करने) पुटपाक—(अमुक रस का पुट देकर पकाई हुई औषध) छल्ली (छाल) मूलकन्द (मूली, गाजर, आलू आदि जमीकन्द) शिलिका (चिरायता आदि औषध) गुटिका—अनेक द्रव्यो को महीन पीसकर औषध के रस की भावना आदि से बनाई गई गोलिये) औषध (एक द्रव्यनिर्मित दवा) और भेषज्य (अनेक द्रव्य-सयोजित दवा) आदि के प्रयोग से प्रयत्न करते हैं अर्थात्-इन पूर्वोक्त साधनो का रोगोपशान्ति के लिए उपयोग करते है परन्तु उपर्युक्त अनेक प्रकार के प्रयोगात्मक उपचारो से वे इन सोलह रोगो मे से किसी एक रोग को भी उपशान्त करने मे समर्थ न हो सके। जब उन वैद्यो व वैद्यपुत्रादि से उन १६ रोगान्तको मे से एक भी रोग का उपशमन न हो सका तब वे वैद्य व वैद्यपुत्रादि श्रान्त (शारीरिक खेद) तान्त (मानसिक खेद) तथा परितान्त (शारीरिक व मानसिक खेद) से खेदित हुए जिधर से आये थे उधर ही चल दिए।

इक्काई की मृत्यु :—मृगापुत्र का वर्तमान भव

२४—तए णं इक्काई रट्ठकूडे वेज्ज-पडियाइक्खिए परियारगपरिच्चत्ते निव्विण्णोसहभेसज्जे सोलहरोगायकेहिं अभिभूए समाणे रज्जे य रट्ठे य जाव (कोसे य कोट्ठागारे य बले य वाहणे य पुरे य) अन्तउरे य मुच्छिए रज्जं च रट्ठं च आसाएमाणे पत्थेमाणे पीहमाणे अभिलसमाणे अट्टदुहट्टवसट्टे अड्ढाइजाइं वाससयाइं परमाउयं पालइत्ता कालमासे कालं किच्चा इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए उक्कोसेण सागरोवमट्ठिइएसु नेरइएसु नेरइयत्ताए उववन्ने। से णं तओ अणंतरं उव्वट्टित्ता इहेव मियग्गामे नयरे विजयस्स खत्तियस्स मियाए देवीए कुच्छिसि पुत्तत्ताए उववन्ने!

२४—इस प्रकार वैद्यो के द्वारा प्रत्याख्यात होकर (अर्थात् इन रोगो का प्रतीकार और उपचार हमसे सम्भव नही है, इस तरह कहे जाने पर) सेवको द्वारा परित्यक्त होकर औषध और भैषज्य से निर्विण्ण (उदासीन) विरक्त-उपरत, सोलह रोगातको से परेशान, राज्य, राष्ट्र-देश, यावत् (कोष, भडार, वल, वाहन, पुर तथा) अन्त पुर-रणवास मे मूर्छित-आसक्त एव राज्य व राष्ट्र का आस्वादन प्रार्थना स्पृहा-इच्छा और अभिलाषा करता हुआ वह एकादि प्रान्तपति आर्त—मनोव्यथा से व्यथित, दुखार्त—शारीरिक पीड़ा से पीडित और वशार्त—इन्द्रियाधीन होने से परतन्त्र—स्वाधीनता रहित जीवन व्यतीत करके २५० वर्ष की सम्पूर्ण आयु को भोगकर यथासमय काल करके इस रत्नप्रभा पृथिवी—प्रथम नरक मे उत्कृष्ट एक सागरोपम की स्थिति वाले नारको मे नारकरूप से उत्पन्न हुआ। तदनन्तर वह एकादि का जीव भवस्थिति सपूर्ण होने पर नरक से निकलते ही इस मृगाग्राम नगर मे विजय क्षत्रिय की मृगादेवी नाम की रानी की कुक्षि मे पुत्ररूप मे उत्पन्न हुआ।

२५—तए ण तीसे मियादेवीए सरीरे वेयणा पाउब्भूया, उज्जला जाव दुरहियासा। जप्पभिइं च णं मियापुत्ते दारए मियाए देवीए कुच्छिसि गब्भत्ताए उववन्ने, तप्पभिइ च ण मियादेवी विजयस्स खत्तियस्स अणिट्ठा अकंता अप्पिया अमणुन्ना अमणामा जाया यावि होत्था।

२५—मृगादेवी के उदर मे उत्पन्न होने पर मृगादेवी के शरीर मे उज्ज्वल यावत् ज्वलन्त—उत्कट व जाज्वल्यमान वेदना उत्पन्न हुई—तीव्रतर वेदना का प्रादुर्भाव हुआ। जिस दिन से मृगापुत्र बालक मृगादेवी के उदर मे गर्भरूप से उत्पन्न हुआ, तबसे लेकर वह मृगादेवी विजय नामक क्षत्रिय को अनिष्ट, अमनोहर, अप्रिय, अमनोज्ञ-असुन्दर—मन को न भाने वाली—मन से उतरी हुई, अप्रिय हो गयी।

२६—तए ण तीसे मियाए देवीए अन्नया कयाइ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयसि कुडुबजागरियाए जागरमाणीए इमे एयारूवे अज्झत्थिए जाव[1] समुप्पज्जित्था—"एव खलु अह विजयस्स खत्तियस्स पुव्वि इट्ठा कता पिया मणुण्णा मणामा धेज्जा विसासिया अणुमया आसी। जप्पभिइ च ण मम इमे गब्भे कुच्छिसि गब्भत्ताए उववन्ने, तप्पभिइ च णं अह विजस्स खत्तियस्स अणिट्ठा जाव अमणामा जाया यावि होत्था। नेच्छइ ण विजए खत्तिए मम नामं व गोयं वा गिण्हित्तए वा, किमगपुण दसण वा परिभोगं वा। त सेयं खलु ममं एय गब्भं बहूहि गब्भसाडणाहि य पाडणाहि य गालणाहि य मारणाहि य साडित्तए वा पाडित्तए वा गालित्तए वा मारित्तए वा एवं सपेहेइ, सपेहित्ता बहूणि खाराणि य कडुयाणि य तवूराणि य गब्भसाडणाणि य खायमाणी य पीयमाणी य इच्छइ तं गब्भं साडित्तए-४ नो चेव णं से गब्भे सडइ वा-४। तए ण सा मियादेवी जाहे नो संचाएइ त गब्भं साडित्तए वा-४ ताहे संता तंता परितंता अकामिया असयंवसा त गब्भं दुहं-दुहेण परिवहइ।

२६—तदनन्तर किसी काल मे मध्यरात्रि के समय कुटुम्बचिन्ता से जागती हुई उस मृगादेवी के हृदय मे यह अध्यवसाय-विचार उत्पन्न हुआ कि मैं पहले तो विजय क्षत्रिय को इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ और अत्यन्त मनगमती, ध्येय, चिन्तनीय, विश्वसनीय, व सम्माननीय थी परन्तु जबसे मेरी कुक्षि मे यह गर्भस्थ जीव गर्भ के रूप मे उत्पन्न हुआ तबसे विजय क्षत्रिय को मैं अप्रिय यावत् मन से अग्राह्य हो गई हूँ। इस समय विजय क्षत्रिय मेरे नाम तथा गोत्र को ग्रहण करना—अरे स्मरण करना भी नही चाहते! तो फिर दर्शन व परिभोग-भोगविलास की तो बात ही क्या है? अत मेरे लिये यही श्रेयस्कर है कि मैं इस गर्भ को अनेक प्रकार की शातना (गर्भ को खण्ड-खण्ड कर गिरा देने वाले प्रयोग) पातन। (अखण्ड रूप से गर्भ को गिराने रूप क्रियाओ से) गालना (गर्भ को द्रवीभूत करके गिराने रूप उपायो से) व मारणा (मारने वाले प्रयोग) से नष्ट कर दूँ। इस प्रकार वह शातना, पातना, गालना और मारणा के लिये विचार करती है और विचार करके गर्भपात के लिये गर्भ को गिरा देने वाली क्षारयुक्त (खारी), कडवी, कसैली, औषधियो का भक्षण तथा पान करती हुई उस गर्भ के शातन, पातन, गालन व मारण करने की इच्छा करती है। परन्तु वह गर्भ उपर्युक्त सभी उपायो से भी शातन, पातन, गालन व मारण रूप नाश को प्राप्त नही हुआ। तब वह मृगादेवी शरीर से श्रान्त, मन से दुःखित तथा शरीर और मन से खिन्न होती हुई इच्छा न रहते हुए भी विवशता के कारण अत्यन्त दुःख के साथ गर्भ वहन करने लगी।

२७—तस्स ण दारगस्स गब्भगयस्स चेव अट्ठ नालीओ अब्भिंतरप्पवहाओ, अट्ठ नालीओ बाहिरप्पवहाओ, अट्ठ पूयप्पवहाओ, अट्ठ सोणियप्पवहाओ, दुवे-दुवे कण्णंतरेसु, दुवे दुवे अच्छि-अतरेसु,

---

१. देखिए सूत्र १।१।१९

दुवे दुवे नक्कतरेसु, दुवे दुवे धमणि-अंतरेसु अभिक्खणं अभिक्खण पूय च सोणिय च परिस्सवमाणीओ परिस्सवमाणीओ चेव चिट्ठ ति।

तस्स ण दारगस्स गब्भगयस्स चेव अग्गिए नाम वाही पाउब्भूए। जे ण से दारए आहारेइ, से णं खिप्पामेव विद्ध समागच्छइ, पूयत्ताए सोणियत्ता य परिणमइ। तं पि य से पूयं च सोणियं च आहारेइ।

२७— गर्भगत उस बालक की आठ नाडियाँ अन्दर की ओर वह रही थी और आठ नाड़ियाँ बाहर की ओर बह रही थी। उनमे प्रथम आठ नाडियो से रुधिर वह रहा था। इन सोलह नाडियो मे से दो नाडियाँ कर्ण-विवरो—छिद्रो मे, दो-दो नाडियाँ नेत्रविवरो मे, दो-दो नासिकाविवरो मे तथा दो-दो धमनियो (हृदयकोष्ठ के भीतर की नाडियो) मे वार-वार पीव व लोहू वहा रही थी। गर्भ मे ही उस बालक को भस्मक नामक व्याधि उत्पन्न हो गयी थी, जिसके कारण वह बालक जो कुछ खाता, वह शीघ्र ही भस्म हो जाता था, तथा वह तत्काल पीव व शोणित के रूप मे परिणत हो जाता था। तदनन्तर वह बालक उस पीव व शोणित को भी खा जाता था।

२८—तए णं सा मियादेवी अन्नया कयाइ नवण्ह मासाणं वहुपुण्णाण दारग पयाया जाइ-अन्धे जाव [जाइमूए जाइबहिरे, जाइपंगुले हुडे य वायव्वे। णत्थि ण तस्स दारगस्स हत्था वा पाया वा कण्णा वा अच्छी वा नासा वा। केवल से तेसिं अगाण] आगिइमेत्ते। तए णं सा मियादेवी त दारगं हुड अन्धरूव पासइ, पासित्ता भीया तत्था तसिया उव्विग्गा संजातभया अम्मधाइं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एव वयासी—'गच्छह णं देवाणुप्पिया! तुमं एय दारग एगते उक्कुरुडियाए उज्झाहि।'

तए ण सा अम्मधाई मियादेवीए 'तह' त्ति एयमट्ठ पडिसुणेइ, पडिसुणित्ता जेणेव विजए खत्तिए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयलपरिग्गहिय जाव (सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु) एव वयासी—'एव खलु सामी! मियादेवी नवण्ह मासाण जाव आगिइमेत्ते! तए णं सा मियादेवी त हुड अन्धरूव पासइ, पासित्ता भीया तत्था उव्विग्गा संजायभया ममं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—'गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया! एय दारग एगन्ते उक्कुरुडियाए उज्झाहि।' त सदिसह ण सामी! त दारग अह एगन्ते उज्झामि उदाहु मा।"

२८—तत्पश्चात् नौ मास परिपूर्ण होने के अनन्तर मृगादेवी ने एक बालक को जन्म दिया जो जन्म से अन्धा और अवयवो की आकृति मात्र रखने वाला था। तदनन्तर विकृत, वेहूदे अगोपाग वाले तथा अन्धरूप उस बालक को मृगादेवी ने देखा और देखकर भय, त्रास, उद्विग्नता और व्याकुलता को प्राप्त हुई। (भयातिरेक से उसका शरीर काँपने लगा) उसने तत्काल धायमाता को बुलाया और बुलाकर इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रिये! तुम जाओ और इस बालक को ले जाकर एकान्त मे किसी कूडे-कचरे के ढेर (रोडी) पर फेक आओ। तदनन्तर उस धायमाता ने मृगादेवी के इस कथन को 'बहुत अच्छा' इस प्रकार कहकर स्वीकार किया और स्वीकार करके वह जहाँ विजय नरेश थे वहाँ पर आयी और दोनो हाथ जोडकर इस प्रकार कहने लगी—'हे स्वामिन्! पूरे नव मास हो जाने पर मृगादेवी ने एक जन्मान्ध यावत् अवयवो की आकृति मात्र रखने वाले वालक को जन्म दिया है। उस हुण्ड वेहूदे अवयववाले, विकृताग, व जन्मान्ध बालक को देखकर मृगादेवी भयभीत हुई और मुझे बुलाया। बुलाकर इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रिये! तुम जाओ और इस बालक को ले जाकर

एकान्त मे किसी कूडे-कचरे के ढेर पर फेंक आओ। अत हे स्वामिन्! आप ही मुझे बतलाएँ कि मैं उसे एकान्त मे ले जाकर फेंक आऊँ या नही?

२९—तए णं से विजए खत्तिए तीसे अम्मधाईए अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म तहेव संभंते उट्ठाए उट्ठेइ, उट्ठेत्ता जेणेव मियादेवी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता मियादेविं एवं वयासी— 'देवाणुप्पिया! तुब्भं पढमं गब्भे। तं जइ णं तुब्भे एयं एगंते उक्कुरुडियाए उज्झसि, तओ णं तुब्भं पया नो थिरा भविस्सइ। तो णं तुमं एयं दारगं रहस्सियगंसि भूमिघरंसि रहस्सिएणं भत्तपाणेणं पडिजागरमाणी विहराहि; तो णं तुब्भं पया थिरा भविस्सइ।" तए ण सा मियादेवी विजयस्स खत्तियस्स 'तह' त्ति एयमट्ठं विणएणं पडिसुणेइ, पडिसुणेत्ता तं दारगं रहस्सियसि भूमिघरंसि रहस्सिएणं भत्तपाणेणं पडिजागरमाणी पडिजागरमाणी विहरइ।

२९—उसके बाद वह विजय नरेश उस धायमाता के पास से यह सारा वृत्तान्त सुनकर सम्भ्रान्त—व्याकुल—से होकर जैसे ही बैठे थे (सत्वर) उठकर खडे हो गये। खडे होकर जहाँ रानी मृगादेवी थी, वहा आये और मृगादेवी से इस प्रकार कहने लगे—'हे देवानुप्रिये! तुम्हारा यह प्रथम गर्भ है, यदि तुम इसको (एकान्त स्थान मे) कूडे-कचरे के ढेर पर फिकवा दोगी तो तुम्हारी भावी प्रजा-सन्तान स्थिर न रहेगी अर्थात् उसे हानि पहुँचेगी। अत (फेंकने की अपेक्षा) तुम इस बालक को गुप्त भूमिगृह (भोरे) मे रखकर गुप्त रूप से भक्तपानादि के द्वारा इसका पालन-पोषण करो। ऐसा करने से तुम्हारी भावी सन्तति स्थिर रहेगी। तदनन्तर वह मृगादेवी विजय क्षत्रिय के इस कथन को स्वीकृतिसूचक "तथेति" (बहुत अच्छा) ऐसा कहकर विनम्र भाव से स्वीकार करती है और स्वीकार करके उस बालक को गुप्त भूमिगृह मे स्थापित कर गुप्तरूप से आहारपानादि के द्वारा पालन-पोषण करती हुई समय व्यतीत करने लगी।

३०—एवं खलु गोयमा! मियापुत्ते दारए पुरापोराराणं जाव[1] पच्चणुभवमाणे विहरइ!

३०—भगवान् महावीर स्वामी फरमाते हैं—हे गौतम! यह मृगापुत्र दारक अपने पूर्वजन्मोपार्जित कर्मों का प्रत्यक्ष रूप से फलानुभव करता हुआ इस तरह समय-यापन कर रहा है।

मृगापुत्र का भविष्य

३१—मियापुत्ते णं भंते! दारए इओ कालमासे कालं किच्चा कहिं गमिहिइ? कहिं उववज्जिहिइ?

३१—हे भगवन्! यह मृगापुत्र नामक दारक यहाँ से मरणावसर पर मृत्यु को पाकर कहाँ जायगा? और कहाँ पर उत्पन्न होगा?

३२—गोयमा! मियापुत्ते दारए छव्वीसं वासाइ परमाउयं पालइत्ता कालमासे कालं किच्चा इहेव जम्बुद्दीवे द्दीवे भारहे वासे वेयड्ढगिरिपायमूले सीहकुलंसि सीहत्ताए पच्चायाहिइ। से ण तत्थ सीहे भविस्सइ अहम्मिए जाव बहुनगरणिग्गयजसे सूरे दढप्पहारी साहसिए, सुबहुं पावकम्मं समज्जिणइ, समज्जिणित्ता, कालमासे कालं किच्चा इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए उक्कोस सागरोवमट्ठिइएसु जाव (नेरइएसु नेरइयत्ताए) उववज्जिहिइ।

१ सूत्र १।१।१८

से ण तओ अणंतर उव्वट्टित्ता सरीसवेसु उववज्जिहिइ। तत्थ ण कालं किच्चा दोच्चाए पुढवीए उक्कोसियाए तिण्णि सागरोवमट्ठिइएसु नेरइएसु नेरइयत्ताए उववज्जिहिइ।

से ण तओ अणतरं उव्वट्टित्ता पक्खीसु उववज्जिहिइ। तत्थ वि कालं किच्चा, तच्चाए पुढवीए सत्त सागरोवमट्ठिइएसु नेरइएसु नेरइयत्ताए उववज्जिहिति।

से णं तओ सीहेसु। तयाणंतरं चोत्थीए। उरगो, पंचमीए। इत्थीओ, छट्ठीए। मणुओ, अहे सत्तमीए। तओ अणतर उव्वट्टित्ता से जाइ इमाइं जलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणियाण मच्छ-कच्छभ-गाह-मगर-सुसुमाराईणं अड्ढतेरस-जाइकुल-कोडिजोणिपमुहसयसहस्साइं, तत्थ ण एगमेगंसि जोणि-विहाणंसि अणेगसयसहस्सखुत्तो उद्दाइत्ता उद्दाइत्ता, तत्थेव भुज्जो भुज्जो पच्चायाइस्सइ। से णं तओ अणंतर उवट्टित्ता चउप्पएसु एव उरपरिसप्पेसु, भुयपरिसप्पेसु, खहयरेसु, चउरिंदिएसु, तेइंदिएसु, बेइन्दिएसु, वणप्फइए कडुयरुक्खेसु, कडुयदुद्धिएसु, वाउ-तेउ-आउ-पुढवीसु अणेगसयसहस्सखुत्तो उद्दाइत्ता उद्दाइत्ता तत्थेव भुज्जो भुज्जो पच्चायाइस्सइ।

से ण तओ अणतरं उव्वट्टित्ता सुपइट्ठपुरे नयरे गोणत्ताए पच्चायाहिइ। से ण तत्थ उम्मुक्क-बालभावे अन्नया कयाइ पढमपाउससि गगाए महानईए खलीणमट्टियं खणमाणे तडीए पेल्लिए समाणे कालगए तत्थेव सुपइट्ठपुरे नयरे सेट्ठिकुलसि पुमत्ताए पच्चायाहिस्सइ।

से ण तत्थ उम्मुक्कबालभावे विण्णायपरिणयमेत्ते जोव्वणगमणुप्पत्ते तहारूवाण थेराणं अतिए धम्म सोच्चा निसम्म मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारिय पव्वइस्सइ। से णं तत्थ अणगारे भविस्सइ, इरियासमिए जाव (भासासमिए एसणासमिए आयाणभंडमत्तणिक्खेवणासमिए, मणगुत्ते वयगुत्ते कायगुत्ते, गुत्ते गुत्तिदिए गुत्त-) बंभयारी। से णं तत्थ बहूइं वासाइं सामण्णपरियाग पाउणित्ता आलोइयपडिक्कते समाहिपत्ते कालमासे काल किच्चा सोहम्मे कप्पे देवत्ताए उववज्जिहिइ। से णं तओ अणतर चय चइत्ता महाविदेहे वासे जाइ कुलाइ भवंति अड्ढाइं जहा दढपइन्ने, सा चेव वत्तव्वया, कलाओ जाव सिज्झिहिइ।

एव खलु जंबू! समणेण भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेण दुहविवागाणं पढमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पन्नत्ते त्ति बेमि।

॥ पढमं अज्झयण समत्त ॥

३१—(गौतम स्वामी के प्रश्न का उत्तर देते हुए भगवान्श्री ने कहा—) हे गौतम! मृगापुत्र दारक २६ वर्ष के परिपूर्ण आयुष्य को भोगकर मृत्यु का समय आने पर काल करके इस जम्बूद्वीप नामक द्वीप के अन्तर्गत भारतवर्ष मे वैताढ्य पर्वत की तलहटी मे सिंहकुल मे सिंह के रूप मे उत्पन्न होगा। वह सिंह महाअधर्मी तथा पापकर्म मे साहसी वनकर अधिक से अधिक पापरूप कर्म एकत्रित करेगा। वह सिंह मृत्यु का समय आने पर मृत्यु को प्राप्त होकर इस रत्नप्रभापृथ्वी नामक पहली नरकभूमि मे, जिसकी उत्कृष्ट स्थिति एक सागरोपम की है,—उन नारकियो मे उत्पन्न होगा। अन्तररहित—विना व्यवधान के पहली नरक से निकलकर सीधा सरीसृपो (भुजाओ अथवा छाती के वल से चलने वाले तिर्यञ्च प्राणियो) की योनियो मे उत्पन्न होगा। वहाँ से काल करके दूसरे नरक मे, जिसकी उत्कृष्ट स्थिति तीन सागरोपम की है, उत्पन्न होगा। वहाँ से निकलकर सीधा पक्षी-योनि

मे उत्पन्न होगा। वहाँ मे मृत्यु के समय काल करके सात सागरोपम की उत्कृष्ट स्थिति वाले तीसरे नरक मे उत्पन्न होगा। वहाँ से निकलकर सिंह की योनि मे उत्पन्न होगा। वहाँ वह वडा अधर्मी, दूर-दूर तक प्रसिद्ध शूर एव गहरा प्रहार करने वाला होगा। वहाँ से काल करके चौथी नरकभूमि मे जन्म लेगा। चौथे नरक से निकलकर सर्प बनेगा। वहाँ से पाँचवे नरक मे उत्पन्न होगा। वहाँ से निकलकर स्त्रीरूप मे उत्पन्न होगा। स्त्री पर्याय से काल करके छट्ठे नरक मे उत्पन्न होगा। वहाँ से निकलकर पुरुष होगा। वहाँ से काल करके सबसे निकृष्ट सातवी नरक भूमि मे उत्पन्न होगा। वहाँ से निकलकर जो ये पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चो मे मच्छ, कच्छप, ग्राह, मगर, सु सुमार आदि जलचर पञ्चेन्द्रिय जाति मे योनियाँ है—उत्पत्तिस्थान है, एव कुलकोटियो मे, जिनकी सख्या साढे बारह लाख है, उनके एक एक योनि-विधान—योनि-भेद मे लाखो बार उत्पन्न होकर पुन पुन उत्पन्न होकर मरता रहेगा। तत्पश्चात् चतुष्पदो मे (चौपाये—पशु-योनि मे) उरपरिसर्प—छाती के बल चलने वालो मे, भुज-परिसर्प—भुजाओ के बल चलने वालो मे, खेचर—आकाश मे उड सकने वाले जीवो मे, एव चार इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय और दो इन्द्रिय वाले प्राणियो मे तथा वनस्पति कायान्तर्गत कटु—कडवे वृक्षो मे, कटु दुग्धवाली अर्कादि वनस्पतियो मे, वायुकाय, तेजस्काय, अप्काय व पृथ्वीकाय मे लाखो-लाखो बार जन्म मरण करेगा।

तदनन्तर वहाँ से निकलकर सुप्रतिष्ठपुर नामक नगर मे वृषभ (बैल) के पर्याय मे उत्पन्न होगा। जब वह बाल्यावस्था को त्याग करके युवावस्था मे प्रवेश करेगा तब किसी समय, वर्षाऋतु के आरम्भ-काल मे गगा नामक महानदी के किनारे पर स्थित मृत्तिका—मिट्टीको खोदता हुआ नदी के किनारे पर गिर जाने से पीडित होता हुआ मृत्यु को प्राप्त हो जायगा। मृत्यु को प्राप्त हो जाने के अनन्तर उसी सुप्रतिष्ठपुर नामक नगर मे किसी श्रेष्ठि के घर मे पुत्ररूप से उत्पन्न होगा। वहाँ पर वह बालभाव को परित्याग कर युवावस्था को प्राप्त होने पर तथारूप-साधुजनोचित गुणो को धारण करने वाले स्थविर-वृद्ध जैन साधुओ के पास धर्म को सुनकर, मनन कर तदनन्तर मुण्डित होकर अगारवृत्ति का परित्याग कर अनगारधर्म को प्राप्त करेगा अर्थात् गृहस्थावस्था को छोड कर साधुधर्म को अङ्गीकार करेगा। अनगारधर्म मे ईर्यासमिति युक्त यावत् ब्रह्मचारी होगा। वह बहुत वर्षो तक यथाविधि श्रामण्य-पर्याय (साधुवृत्ति) का पालन करके आलोचना व प्रतिक्रमण से आत्मशुद्धि करता हुआ समाधि को प्राप्त कर समय आने पर कालमास मे काल प्राप्त करके सौधर्म नाम के प्रथम देव-लोक मे देवरूप मे उत्पन्न होगा। तदनन्तर देवभव की स्थिति पूरी हो जाने पर वहाँ से च्युत होकर (देवशरीर को छोडकर) महाविदेह क्षेत्र मे जो आढ्य-सम्पन्न (धनाढच) कुल है,—उनमे उत्पन्न होगा। वहाँ उसका कलाभ्यास, प्रव्रज्याग्रहण यावत् मोक्षगमन रूप वक्तव्यता दृढप्रतिज्ञ की भाति ही समझ लेनी चाहिये।

सुधर्मा स्वामी कहते है—हे जम्बू ! इस प्रकार से निश्चय ही श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने, जो कि मोक्ष को प्राप्त हो चुके है, दु खविपाक के प्रथम अध्ययन का यह (पूर्वोक्त) अर्थ प्रतिपादन किया है। जिस प्रकार मैंने प्रभु से साक्षात् सुना है; उसी प्रकार हे जम्बू ! मै तुमसे कहता हूँ।

॥ प्रथम अध्ययन समाप्त ॥

द्वितीय अध्ययन

उत्क्षेप

१—'जइ ण भते ! समणेण जाव सपत्तेण दुहविवागाण पढमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पन्नत्ते, दोच्चस्स ण भंते । अज्झयणस्स दुहविवागाणं समणेण जाव सपत्तेणं के अट्ठे पन्नत्ते ?'

तए ण से सुहम्मे अणगारे जम्बु अणगार एवं वयासी—

जम्बू स्वामी ने प्रश्न किया—हे भगवन् ! यदि मोक्ष-सप्राप्त श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने दु खविपाक के प्रथम अध्ययन का यह (पूर्वोक्त) अर्थ प्रतिपादित किया है तो हे भगवन् ! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने, जो यावत् मोक्ष को प्राप्त हुए है, —विपाकसूत्र के द्वितीय अध्ययन का क्या अर्थ बताया है ? इसके उत्तर मे श्रीसुधर्मा अनगार ने श्रीजम्बू अनगार को इस प्रकार कहा—

२—एवं खलु जम्बू ! तेण कालेणं तेण समएणं वाणियग्गामे नाम नयरे होत्था । रिद्धत्थिमियसमिद्धे । तस्स ण वाणियग्गामस्स उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए दूईपलासे नामं उज्जाणे होत्था । तत्थ णं दूईपलासे सुहम्मस्स जक्खस्स जक्खाययणे होत्था । तत्थ णं वाणियग्गामे मित्ते नामं राया होत्था । वण्णओ । तस्स णं मित्तस्स रन्नो सिरी नामं देवी होत्था । वण्णओ ।

२—हे जम्बू ! उस काल तथा उस समय मे वाणिजग्राम नामक एक नगर था जो ऋद्धि-स्तिमित-समृद्ध (ऋद्ध अर्थात् गगनचुम्बी अनेक बडे-बडे ऊँचे महलो वाला तथा अनेकानेक जनों से व्याप्त था तथा स्तिमित—अर्थात् स्वचक्र तथा परचक्र के भय से नितान्त रहित व समृद्ध अर्थात् धनधान्य आदि महाऋद्धियो से सम्पन्न) था । उस वाणिजग्राम के उत्तरपूर्व दिशा के मध्यभाग-ईशानकोण मे दूतिपलाश नामक उद्यान था । उस दूतिपलाश सज्ञक उद्यान में सुधर्मा नाम के यक्ष का यक्षायतन था । उस वाणिजग्राम नामक नगर मे मित्र नामक राजा था जिसका वर्णन-प्रकरण पूर्ववत् ही जानना । उस मित्र राजा की श्री नाम की पटरानी थी । उसका वर्णन भी पूर्ववत् ही जानना ।

३—तत्थ ण वाणियग्गामे कामज्झया नाम गणिया होत्था । अहीण जाव (पडिपुण्णपंचिंदियसरीरा लक्खण-वंजण-गुणोववेया माणुम्माण-प्पमाण-पडिपुण्ण-सुजाय-सव्वंगसुंदरंगी ससिसोमाकाराकंत-पियदंसणा) सुरूवा, बावत्तरिकलापडिया, चउसट्ठि-गणिया-गुणोववेया एगूणतीसविसेसे रममाणी, एकवीसरइगुणप्पहाणा बत्तीस-पुरिसोवयारकुसला, नवंगसुत्तपडिबोहिया, अट्ठारसदेसीभासाविसारया, सिंगारागारचारुवेसा, गीयरइगन्धव्व-नट्टकुसला सगय-गय-भाणिय-हसिय-विहियविलास-सललिय-सलाव-निउणजुत्तोवयारकुसला सुन्दरत्थण-जहण-वयण-कर-चरण-नयण-लावण्णविलासकलिया ऊसियज्झया सहस्सलभा, विदिण्णछत्त-चामर-वालवीयणीया, कण्णीरहप्पयाया यावि होत्था । बहूणं गणियासहस्साण आहेवच्च जाव (पोरेवच्चं सामित्त भट्टित्तं महत्तरगत्तं आणा-ईसरसेणावच्चं कारेमाणी पालेमाणी) विहरइ ।

३—उस वाणिजग्राम नगर मे सम्पूर्ण पाचो इन्द्रियो से परिपूर्ण शरीर वाली, लक्षणो, मसा-

तिलकादि व्यञ्जनो एव गुणो से परिपूर्ण, प्रमाणोपेत समस्त अगोपागों वाली, चन्द्रमा के समान सौम्य आकृति से युक्त, कमनीय, सुदर्शन, परम सुन्दरी, ७२ कलाओ मे कुशल, गणिका के ६४ गुणो से युक्त, २९ प्रकार के विशेषो-विषयगुणो मे रमण करने वाली, २१ प्रकार के रतिगुणो मे प्रधान, कामशास्त्र प्रसिद्ध पुरुष के ३२ उपचारो मे कुशल, सुप्त नव अगो से जागृत अर्थात् जिसके नव अग (दो कान, दो नेत्र, दो नासिका, एक जिह्वा, एक त्वचा और मन) जागे हुए है, अठारह देशो की अठारह प्रकार की भाषाओ मे प्रवीण, शृ गारप्रधान वेपयुक्त अर्थात् जिसका सुन्दर वेप मानो शृ गार का घर ही हो ऐसी, गीत (सगीत-विद्या) रति (कामक्रीडा) गान्धर्व (नृत्ययुक्त गीत नाटच (नृत्यकला) मे कुशल मन को आकर्पित करने वाली, उत्तम गति-गमन से युक्त (हास्य वोलचाल, व्यवहार एव उचित उपचार मे कुशल, स्तनादिगत सौन्दर्य से युक्त, गीत, नृत्यादि कलाओ से हजार मुद्रा का लाभ लेने वाली (कमाने वाली, जिसका एक रात्रि का शुल्क सहस्र स्वर्णमुद्राएँ थी), जिसके विलास भवन पर ऊँची ध्वजा फहरा रही थी, जिसको राजा की ओर से पारितोषिक रूप मे छत्र, चामर-चँवर, वाल व्यजनिका—चँवरी या छोटा पखा कृपापूर्वक प्रदान किये गए थे और जो कर्णीरथ नामक रथविशेष मे गमनागमन करने वाली थी, ऐसी काम-ध्वजा नाम की गणिका-वेश्या रहती थी जो हजारो गणिकाओ का स्वामित्व, नेतृत्व करती हुई समय व्यतीत कर रही थी।

उज्झितक-परिचय

४—तत्थ ण वाणियग्गामे विजयमित्ते नाम सत्थवाहे परिवसइ। अड्ढे। तस्स ण विजयमित्तस्स सुभद्दा नामं भारिया होत्था। अहीण।[1] तस्स ण विजयमित्तस्स पुत्ते सुभद्दाए भारियाए अत्तए उज्झियए नाम दारए होत्था। अहीण जाव[2] सुरूवे।

४—उस वाणिजग्राम नगर मे विजयमित्र नामक एक धनी सार्थवाह—व्यापारीवर्ग का मुखिया निवास करता था। उस विजयमित्र की अन्यून पञ्चेन्द्रिय शरीर से सम्पन्न (सर्वाङ्गसुन्दर) सुभद्रा नाम की भार्या थी। उस विजयमित्र का पुत्र और सुभद्रा का आत्मज उज्झितक नामक सर्वाङ्ग-सम्पन्न और रूपवान् वालक था।

५—तेण कालेण तेण समएण समणे भगवं महावीरे समोसढे। परिसा निग्गया। राया जहा कूणिओ तहा निग्गओ। धम्मो कहिओ। परिसा पडिगया, राया य गओ।

५—उस काल तथा उस समय मे श्रमण भगवान् महावीरस्वामी वाणिजग्राम नामक नगर मे (नगर के बाहर ईशान-कोण मे स्थित दूतिपलाश उद्यान मे) पधारे। प्रजा उनके दर्शनार्थ नगर से निकली। राजा भी कूणिक नरेश की तरह भगवान् के दर्शन को गया। भगवान् ने धर्म का उपदेश दिया। उपदेश को सुनकर जनता तथा राजा दोनो वापिस चले गये।

उज्झितक की दुर्दशा

६—तेणं कालेणं तेण समएण समणस्स भगवओ महावीरस्स जेट्ठे अन्तेवासी इन्दभूई नाम अणगारे जाव[3] लेस्से छट्ठं-छट्ठेण जहा पण्णत्तीए पढमाए जाव—(पोरिसीए सज्झायं करेइ, बीयाए

१-२ द्वितीय अध्ययन, सूत्र-३.   ३. प्र अ, सूत्र-२

पोरिसीए झाण झियाइ, तइयाए पोरिसीए अचवलमतुरिय-मसभते मुहपोत्तिय पडिलेहेइ, पडिलेहित्ता भायण-वत्थाइ पडिलेहेइ, पडिलेहित्ता भायणाइं पमज्जइ, पमज्जित्ता भायणाइ उग्गाहेइ, उग्गाहेत्ता जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीर वदइ नमसइ, वदित्ता नमसित्ता एव वयासी—इच्छामि ण भते ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे छट्ठक्खमण-पारणगसि वाणियग्गामे नयरे उच्चनीयमज्झिमकुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए अडित्तए।

'अहासुह देवाणुप्पिया ! मा पडिबध !'

तए ण भयव गोयमे समणेण भगवया महावीरेण अब्भणुण्णाए समाणे समणस्स भगवओ महावीरस्स अतियाओ दुइपलासाओ उज्जाणाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता अतुरियमचवलम-संभते जुगतरपलोयणाए दिट्ठीए पुरओरिय सोहेमाणे सोहेमाणे) जेणेव वाणियग्गामे नयरे तेणेव उवागच्छइ, उवगच्छित्ता उच्च-नीय-मज्झिमाइ कुलाइ घरसमुदाणस्स भिक्खा-यरियाए अडमाणे जेणेव रायमग्गे तेणेव ओगाढे।

तत्थ ण बहवे हत्थी पासइ, सन्नद्धवद्धवम्मियगुडियउप्पीलियकच्छे, उद्दामिय घटे, नानामणि-रयणविविहगेवेज्जउत्तरकचुइज्जे, पड़िकप्पिए, झय-पडागवरपचामेल-आरूढ-हत्थारोहे, गहियाउहप्पहरणे।

अन्ने य तत्थ बहवे आसे पासइ, सनद्धवद्धवम्मियगुडिए, आविद्धगुडे, ओसारियपक्खरे, उत्तरकचुइय-ओचूल मुहचण्डाधर-चामर-थासगपरिमडियकडिए, आरूढआसारोहे गहियाउहप्पहरणे।

अण्णे य तत्थ बहवे पुरिसे पासइ सन्नद्धवद्धवम्मियकवए, उप्पीलियसरासणपट्टिए पिणद्ध-गेवेज्जे, विमलकरबद्ध-चिधपट्टे, गहियाउहप्पहरणे।

तेसिं च णं पुरिसाणं मज्झगय एग पुरिस पासइ अवओडियवन्धण उक्कित्तकण्णनासं नेहतुप्पियगत्त, वज्झ-करकडिजुयनियत्थं[1], कठेगुणरत्तमल्लदाम, चुण्णगु डियगत्त, चुण्णय वज्झ-पाणपिय तिल-तिल चेव छिज्जमाण कागणिमसाइ खावियत पाव, खक्खरगसएहिं हम्ममाणं, अणेगनरनारीसंपरिवुड चच्चरे चच्चरे खंडपडहएणं उग्घोसिज्जमाण। इम च णं एयारूव उग्घोसणं पडिसुणेइ—'नो खलु देवाणुप्पिया ! उज्झियगस्स दारगस्स केइ राया वा रायपुत्तो वा अवरज्झइ; अप्पणो से सयाइ कम्माइ अवरज्झति !

६—उस काल तथा उस समय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के ज्येष्ठ अन्तेवासी इन्द्रभूति नामक अनगार, जो कि तेजोलेश्या को सक्षिप्त करके अपने अन्दर धारण किये हुए हैं तथा वेले की तपस्या करते हुए भगवती सूत्र मे वर्णित जीवनचर्या चलाने वाले है, जैसे कि प्रथम-प्रहर मे स्वाध्याय करके, दूसरे प्रहर मे ध्यान और तीसरे प्रहर मे मुखवस्त्रिका पात्र आदि का प्रतिलेखन-प्रमार्जन करके धीमी गति से भगवान् महावीर के पास गए। षष्ठ-भक्त के पारण की आज्ञा प्राप्त की। फिर वाणिज-ग्राम नगर मे उच्च, नीच एव मध्यम कुलो मे भिक्षा के लिये ईर्यासमिति पूर्वक चलते हुए जहाँ राजमार्ग—प्रधान मार्ग है वहाँ पर पधारे।

वहाँ (राजमार्ग मे) उन्होने अनेक हाथियो को देखा। वे हाथी युद्ध के लिये उद्यत थे, जिन्हे

---

१. पाठान्तर-वज्झकक्खडियजुयनियत्थ (मोदी)

कवच पहिनाए हुए थे, जो शरीररक्षक उपकरण (झूल) आदि धारण किये हुए थे, जिनके उदर (पेट) दृढ बन्धन से बाधे हुए थे। जिनके झूलो के दोनो तरफ बडे बडे घण्टे लटक रहे थे। जो नाना प्रकार के मणियो और रत्नो से जडे हुए विविध प्रकार के ग्रैवेयक (कण्ठाभूषण) पहने हुए थे तथा जो उत्तर कचुक नामक तनुत्राणविशेष एव अन्य कवच आदि सामग्री धारण किये हुए थे। जो ध्वजा पताका तथा पचविध शिरोभूषण[1] से विभूषित थे एव जिन पर आयुध व प्रहरणादि लिए हुए महावत बैठे हुए थे अथवा उन हाथियो पर आयुध (वह शस्त्र जो फेका नही जा सकता, जैसे तलवार आदि) और प्रहरण (जो शस्त्र फेके जा सकते है, जैसे तीर आदि) लदे हुए थे।

इसी तरह वहाँ अनेक अश्वो को भी देखा, जो युद्ध के लिये उद्यत थे तथा जिन्हे कवच तथा शारीरिक रक्षा के उपकरण पहिनाए हुए थे। जिनके शरीर पर सोने की बनी हुई झूल पडी हुई थी तथा जो लटकाए हुए तनुत्राण से युक्त थे। जो बखतर विशेष से युक्त तथा लगाम से अन्वित मुख वाले थे। जो क्रोध से अधरो—होठो को चबा रहे थे। चामर तथा स्थासक (आभूषण-विशेष) से जिनका कटिभाग परिमडित-विभूषित हो रहा था तथा जिन पर सवारी कर रहे अश्वारोही-घुडसवार आयुध और प्रहरण ग्रहण किये हुए थे अथवा जिन पर शस्त्रास्त्र लदे हुए थे।

इसी तरह वहाँ बहुत से पुरुषो को भी देखा जो दृढ बन्धनो से बधे हुए लोहमय कुसूलादि से युक्त कवच शरीर पर धारण किये हुए, जिन्होने शरासन-पट्टिका—धनुष खीचने के समय हाथ की रक्षा के लिये बाधी जाने वाली चमडे की पट्टी—कसकर बाध रखी थी। जो गले मे ग्रैवेयक-कण्ठाभरण धारण किये हुए थे। जिनके शरीर पर उत्तम चिह्नपट्टिका-वस्त्रखण्ड-निर्मित चिह्न-निशानी लगी हुई थी तथा जो आयुधो और प्रहरणो (शस्त्रास्त्र) को ग्रहण किये हुए थे।

उन पुरुषो के मध्य मे भगवान् गौतम ने एक और पुरुष को देखा जिसके हाथो को मोडकर पृष्ठभाग के साथ रस्सी से बाधा हुआ था। जिसके नाक और कान कटे हुए थे। जिसका शरीर स्निग्ध (चिकना) किया गया था। जिसके कर और कटि-प्रदेश मे वध्य पुरुषोचित वस्त्र-युग्म (दो वस्त्र) धारण किया हुआ था अथवा बाधे हुए हाथ जिसके कडियुग (हथकडियो) पर रक्खे हुए थे अर्थात् जिसके दोनो हाथो मे हथकडियाँ पडी हुई थी, जिसके कण्ठ मे कण्ठसूत्र—धागे के समान लाल पुष्पो की माला थी, जो गेरु के चूर्ण से पोता गया था, जो भय से सत्रस्त, तथा प्राणो को धारण किये रखने का आकाक्षी था, जिसको तिल-तिल करके काटा जा रहा था, जिसको शरीर के छोटे-छोटे मास के टुकडे खिलाए जा रहे थे अथवा जिसके मास के छोटे-छोटे टुकडे काकादि पक्षियो के खाने के योग्य किये जा रहे थे। ऐसा वह पापात्मा सैकडो पत्थरो या चाबुको से मारा जा रहा था। जो अनेक स्त्री-पुरुष-समुदाय से घिरा हुआ और प्रत्येक चौराहे आदि पर उद्घोषित किया जा रहा था अर्थात् जहाँ चार या इससे अधिक रास्ते मिले हुए हो ऐसे स्थानो पर फूटे ढोल से उसके सम्बन्ध मे घोषणा सुनाई जा रही थी जो इस प्रकार है—

हे महानुभावो! इस उज्झितक बालक का किसी राजा अथवा राजपुत्र ने कोई अपराध नही किया अर्थात् इसकी दुर्दशा के लिए अन्य कोई दोषी नही है, किन्तु यह इसके अपने ही कर्मो का अपराध है—दोष है, जो इस दु स्थिति को प्राप्त है!

---

१ हाथी के शिर के पाच आभूषण बतलाए गए है, जैसे कि—तीन ध्वजाएँ और उनके बीच दो पताकाए।

७—तए णं से भगवओ गोयमस्स तं पुरिसं पासित्ता इमे अज्झत्थिए चितिए कप्पिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—'अहो णं इमे पुरिसे जाव नरयपडिरूवियं वेयणं वेएइ' त्ति कट्टु वाणियगामे नयरे उच्च-नीच-मज्झिमकुलाइं जाव अडमाणे अहापज्जत्तं सामुदाणियं गिण्हइ, गिण्हित्ता वाणियगामे नयरे मज्झमज्झेणं जाव पडिदंसेइ, पडिदंसित्ता समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता, नमंसित्ता एवं वयासी—'एवं खलु अहं भंते ! तुब्भेहिं अब्भणुन्नाए समाणे वाणियगामं जाव तहेव वेएइ। से णं भंते ! पुरिसे पुव्वभवे के आसी ? जाव[1] पच्चणुभवमाणे विहरइ ?

७—तत्पश्चात् उस पुरुष को देखकर भगवान् गौतम को यह चिन्तन, विचार, मन संकल्प उत्पन्न हुआ कि—'अहो ! यह पुरुष कैसी नरकतुल्य वेदना का अनुभव कर रहा है ! ऐसा विचार करके वाणिजग्राम नगर में उच्च, नीच, मध्यम (धनिक, निर्धन तथा मध्यम कोटि के) घरों में भ्रमण करते हुए यथापर्याप्त (आवश्यकतानुसार) भिक्षा लेकर वाणिजग्राम नगर के मध्य में से होते हुए श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पास आये। उन्हें लाई हुई भिक्षा दिखलाई। तदनन्तर भगवान् को वन्दना-नमस्कार करके उनसे इस प्रकार कहने लगे—

हे प्रभो ! आपकी आज्ञा से मैं भिक्षा के हेतु वाणिजग्राम नगर में गया। वहाँ मैंने एक ऐसे पुरुष को देखा जो साक्षात् नारकीय वेदना का अनुभव कर रहा है। हे भगवन् ! वह पुरुष पूर्वभव में कौन था ? जो यावत् नरक जैसी विषम वेदना भोग रहा है ?

पूर्वभव-विवरण

८—एवं खलु गोयमा ! तेणं कालेणं तेणं समएणं इहेव जम्बुद्दीवे दीवे भारहे वासे हत्थिणाउरे नामं नयरे होत्था, रिद्धत्थि०।[2] तत्थ णं हत्थिणाउरे नयरे सुणंदे णामं राया होत्था। महया हिमवंत०[3] महंत-मलय-मंदर-महिंदसारे। तत्थ णं हत्थिणाउरे नयरे बहुमज्झदेसभाए महं एगे गोमण्डवे होत्था। अणेगखम्भसयसंनिविट्ठे, पासाईए दरिसणिज्जे अभिरूवे पडिरूवे। तत्थ णं बहवे नगरगोरूवाणं सणाहा य अणाहा य नगरगावीओ य नगरबलीवद्दा य नगरपड्डयाओ य नगरवसभा य पउरतणपाणिया निब्भया निरुव्विग्गा सुहसुहेणं परिवसंति।

८—हे गौतम ! उस पुरुष के पूर्वभव का वृत्तान्त इस प्रकार है—उस काल तथा उस समय में इस जम्बूद्वीप नामक द्वीप के अन्तर्गत इस भरतक्षेत्र में हस्तिनापुर नामक एक समृद्ध नगर था। उस नगर का सुनन्द नामक राजा था। वह हिमालय पर्वत के समान महान् था। उस हस्तिनापुर नामक नगर के लगभग मध्यभाग में सैकड़ों स्तम्भों से निर्मित सुन्दर मनोहर, मन को प्रसन्न करने वाली एक विशाल गोशाला थी। वहाँ पर नगर के अनेक सनाथ—जिनका कोई स्वामी हो और अनाथ—जिनका कोई स्वामी न हो, ऐसी नगर की गायें, बैल, नागरिक छोटी गायें—बछड़ियाँ, भैंसे, नगर के सांड, जिन्हें प्रचुर मात्रा में घास-पानी मिलता था, भय तथा उपसर्गादि से रहित होकर परम सुखपूर्वक निवास करते थे।

---

१ प्रथम अ., सू. १९
२. औपपातिक—१
३ औपपातिक—१४

९—तत्थ ण हत्थिणाउरे नयरे भीमे नाम कूडग्गाहे होत्था, अहम्मिए जाव दुप्पडियाणदे। तस्स णं भीमस्स कूडग्गाहस्स उप्पला नाम भारिया होत्था, अहीणपडिपुण्णपंचिंदियसरीरा।[1] तए णं सा उप्पला कूडग्गाहिणी अन्नया कयाइ आवन्नसत्ता जाया यावि होत्था। तएणं णं तीसे उप्पलाए कूडग्गाहिणीए तिण्हं मासाण बहुपडिपुण्णाणं अयमेवारूवे दोहले पाउब्भूए—

९—उस हस्तिनापुर नगर मे भीम नामक एक कूटग्राह (धोखे से—कपटपूर्वक जीवो को फँसाने वाला) रहता था। वह स्वभाव से ही अधर्मी व कठिनाई से प्रसन्न होने वाला था। उस भीम कूटग्राह की उत्पला नामक भार्या थी जो अहीन (अन्यून) पचेन्द्रिय वाली थी। किसी समय वह उत्पला गर्भवती हुई। उस उत्पला नाम की कूटग्राह की पत्नी को पूरे तीन मास के पश्चात् इस प्रकार का दोहद—मनोरथ (जो कि गर्भिणी स्त्रियो को गर्भ के अनुरूप उत्पन्न होता है) उत्पन्न हुआ—

१०—'धन्नाओ णं ताओ अम्मयाओ [संपुण्णाओ णं ताओ अम्मयाओ, कयत्थाओ णं ताओ अम्मयाओ, कयपुण्णाओ ण ताओ अम्मयाओ, कयलक्खणाओ ण ताओ अम्मयाओ, कयविहवाओ णं ताओ अम्मयाओ, सुलद्धे णं तासि माणुस्सए जम्मजीवियफले जाओ णं बहूणं नगरगोरूवाणं सणाहाण य जाव वसहाण[2] य ऊहेहि य थणेहि य वसणेहि य छेप्पाहि य ककुहेहि य वहेहि य कण्णेहि य अच्छीहि य नासाहि य जिब्भाहि य ओट्ठेहि य कम्बलेहि य सोल्लेहि य तलिएहि य भज्जिएहि य परिसुक्केहि य लावणेहि य सुरं च महु च मेरग च जाइं च सीहुं च पसन्नं च आसाएमाणीओ विसाएमाणीओ, परिभाएमाणीओ परिभुंजेमाणीओ दोहलं विणेंति। त जइ णं अहमवि बहूणं नगर जाव[3] विणिज्जामि' त्ति कट्टु तसि दोहलंसि अविणिज्जमाणसि सुक्का भुक्खा निम्मंसा ओलुग्गा ओलुग्गसरीरा नित्तेया दीण-विमण-वयणा पंडुल्लइयमुहा ओमथिय-नयण-वयण-कमला जहोइय पुप्फवत्थगंधमल्लालंकाराहारं अपरिभुंजमाणी करयलमलियव्व कमलमाला ओहय जाव (मणसंकप्पा करयलपल्हत्थमुही अट्टज्झाणोवगया भूमिगयदिट्ठीया) झियाइ।

१०—वे माताएँ धन्य हैं, पुण्यवती है, कृतार्थ है, सुलक्षणा हैं, उनका ऐश्वर्य सफल है, उनका मनुष्यजन्म और जीवन भी सार्थक है, जो अनेक अनाथ या सनाथ नागरिक पशुओ यावत् वृषभो के ऊधस् (वह थैली जिसमे दूध भरा रहता है) स्तन, वृषण-अण्डकोष, पूछ, ककुद् (स्कन्ध का ऊपरी भाग) स्कन्ध, कर्ण, नेत्र, नासिका, जीभ, ओष्ठ (होठ) कम्बल—सास्ना (गाय के गले का चमडा) जो कि शूल्य (शूला-प्रोत), तलित (तले हुए) भृष्ट (भुने हुए), शुष्क (स्वय सूखे हुए) और लवण-सस्कृत मास के साथ सुरा, मधु (पुष्पनिष्पन्न मदिरा-विशेष) मेरक (मद्य विशेष जो तालफल से निर्मित होती है) सीधु (एक विशेष प्रकार की मदिरा जो गुड व धान के मेल से निष्पन्न होती है) प्रसन्ना (वह मदिरा जो द्राक्षा आदि से बनती है) इन सब मद्यो का सामान्य व विशेष रूप से आस्वादन, विस्वादन, परिभाजन-वितरण (दूसरो को बाँटती हुई) तथा परिभोग करती हुई अपने दोहद को पूर्ण करती है। काश! मैं भी अपने दोहद को इसी प्रकार पूर्ण करूँ।

इस विचार के अनन्तर उस दोहद के पूर्ण न होने से वह उत्पला नामक कूटग्राह की पत्नी सूखने लगी, (भोजन न करने से बल रहित होकर) भूखे व्यक्ति के समान दीखने लगी, मास रहित-

१ द्वि अ, सूत्र—३
२ द्वि अ, सूत्र—८
३ द्वि अ, सूत्र—८

अस्थि-शेष हो गयी, रोगिणी व रोगी के समान शिथिल शरीर वाली, निस्तेज—कान्तिरहित, दीन तथा चिन्तातुर मुख वाली हो गयी। उसका बदन फीका तथा पीला पड गया, नेत्र तथा मुख-कमल मुर्झा गया, यथोचित पुष्प, वस्त्र, गन्ध, माल्य-फूलो की गूथी हुई माला-आभूषण और हार आदि का उपभोग न करने वाली, करतल से मर्दित कमल की माला की तरह म्लान हुई कर्तव्य व अकर्तव्य के विवेक से रहित चिन्ताग्रस्त रहने लगी।

११—इम च णं भीमे कूडग्गाहे जेणेव उप्पला कूडग्गाहिणी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता ओहय० जाव पासइ, एवं वयासी—'किं णं तुमे देवाणुप्पिए ! ओहय जाव झियासि ?'

तए ण सा उप्पला भारिया भीमं कूडग्गाहं एवं वयासी—'एवं खलु, देवाणुप्पिया ! मम तिण्हं मासाण बहुपडिपुण्णाणं दोहला पाउब्भूया—'धन्ना णं ताओ जाओ णं वहूणं गोरूवाण ऊहेहि य जाव लावणेहि य सुरं च ६ आसाएमाणीओं ४ दोहलं विणेंति।' तए ण अहं देवाणुप्पिया! तसि दोहलसि अविणिज्जमाणसि जाव झियामि।'

११—इतने मे भीम नामक कूटग्राह, जहाँ पर उत्पला नाम की कूटग्राहिणी थी, वहाँ आया और उसने आर्तध्यान ध्याती हुई चिन्ताग्रस्त उत्पला को देखा। देखकर कहने लगा—'देवानुप्रिये ! तुम क्यो इस तरह शोकाकुल, हथेली पर मुख रखकर आर्तध्यान मे मग्न हो रही हो ? तदनन्तर वह उत्पला भार्या भीम नामक कूटग्राह को इस प्रकार कहने लगी—स्वामिन् ! लगभग तीन मास पूर्ण होने पर मुझे यह दोहद उत्पन्न हुआ कि वे माताएँ धन्य हैं, कि जो चतुष्पाद पशुओ के ऊधस् स्तन आदि के लवण-सस्कृत माँस का अनेक प्रकार की मदिराओ के साथ आस्वादन करती हुई अपने दोहद को पूर्ण करती है। उस दोहद के पूर्ण न होने से निस्तेज व हतोत्साह होकर मैं आर्तध्यान मे मग्न हूँ। (यहाँ पूर्वोक्त विवरण समझ लेना चाहिये।)

१२—तए णं से भीमे कूडग्गाहे उप्पलं भारियं एवं वयासी—'मा णं तुमं देवाणुप्पिया ! ओहयमणसकप्पा जाव झियाहि; अहं ण तहा करिस्सामि जहा णं तव दोहलस्स सपत्ती भविस्सइ।' ताहिं इट्ठाहिं जाव (कंताहिं पियाहिं मणुण्णाहिं मणामाहिं) वग्गूहिं समासासेइ।

तए ण से भीमे कूडग्गाहे अद्धरत्तकालसमयंसि एगे अबीए सन्नद्ध जाव (बद्धवम्मियकवए उप्पीलियसरासणपट्टीए पिणद्धगेवेज्जे विमलवरबद्धचिंधपट्टे गहियाउह) पहरणे सयाओ गिहाओ निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता हत्थिणाउर नयर मज्झमज्झेणं जेणेव गोमण्डवे तेणेव उवागए, बहूण नगरगोरूवाणं जाव वसभाण य अप्पेगइयाणं ऊहे छिंदइ जाव अप्पेगइयाण कंबले छिंदइ, अप्पेगइयाण अन्नमन्नाइं अगोवंगाइ वियगेइ, वियगेत्ता जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता उप्पलाए कूडग्गाहिणीए उवणेइ। तए ण सा उप्पला भारिया तेहिं बहूहिं गोमंसेहि य सोल्लेहि य सुर च-५ आसाएमाणी-४ त दोहलं विणेइ। तए णं सा उप्पला कूडग्गाहिणी संपुण्णदोहला संमाणियदोहला विणीयदोहला वोच्छिन्नदोहला संपन्नदोहला त गब्भ सुहसुहेण परिवहइ।

१२—तदनन्तर उस भीम कूटग्राह ने अपनी उत्पला भार्या से कहा—देवानुप्रिये ! तुम चिन्ताग्रस्त व आर्तध्यान युक्त न होओ, मैं वह सब कुछ करूँगा जिससे तुम्हारे इस दोहद की परिपूर्ति हो जायगी। इस प्रकार के इष्ट, प्रिय, कान्त, मनोहर, मनोज्ञ वचनो से उसने उसे समाश्वासन दिया।

तत्पश्चात् भीम कूटग्राह आधी रात्रि के समय अकेला ही दृढ कवच पहनकर, धनुष-वाण

से सज्जित होकर, ग्रैवेयक धारण कर एव आयुध प्रहरणो को लेकर अपने घर से निकला और हस्तिनापुर नगर के मध्य से होता हुआ जहाँ पर गोमण्डप था वहाँ पर आया, और आकर वह नागरिक पशुओ यावत् वृषभो मे से कई एक के ऊधस्, कई एक के सास्ना-कम्बल आदि व कई एक के अन्यान्य अङ्गोपाङ्गो को काटता है और काटकर अपने घर आता है। आकर अपनी भार्या उत्पला को दे देता है। तदनन्तर वह उत्पला उन अनेक प्रकार के शूल आदि पर पकाये गये गोमासो के साथ अनेक प्रकार की मदिरा आदि का आस्वादन, विस्वादन करती हुई अपने दोहद को परिपूर्ण करती है। इस तरह वह परिपूर्ण दोहद वाली, सन्मानित दोहद वाली, विनीत दोहद वाली, व्युच्छिन्न दोहद वाली व सम्पन्न दोहद वाली होकर उस गर्भ को सुखपूर्वक धारण करती है।

१३—तए णं सा उप्पला कूडग्गाहिणी अन्नया कयाइ नवण्ह मासाण बहुपडिपुण्णाण दारग पयाया। तए णं तेणं दारएणं जायमेत्तेणं चेव महया महया चिच्ची सद्देण विघुट्ठे विस्सरे आरसिए।

तए ण तस्स दारगस्स आरसिय-सद्दं सोच्चा निसम्म हत्थिणाउरे नयरे बहवे नगरगोरूवा जाव वसभा य भीया तत्था तसिया उव्विग्गा सव्वओ समंता विप्पलाइत्था। तए ण तस्स दारगस्स अम्मापियरो अयमेयारूवं नामधेज्जं करेन्ति—'जम्हा णं अम्ह इमेणं दारएणं जायमेत्तेणं चेव महया महया चिच्ची सद्देणं विघुट्ठे विस्सरे आरसिए, तए णं एयस्स दारगस्स आरसियसद्दं सोच्चा निसम्म हत्थिआउरे नयरे बहवे नगरगोरूवा जाव भीया तत्था तसिया उव्विग्गा, सव्वओ समता विप्पलाइत्था, तम्हा णं होउ अम्हं दारए 'गोत्तासए' नामेण।

तए णं से गोत्तासए दारए उम्मुक्कबालभावे जाए यावि होत्था।

१३—तदनन्तर उस उत्पला नामक कूटग्राहिणी ने किसी समय नव-मास परिपूर्ण हो जाने पर पुत्र को जन्म दिया। जन्म के साथ ही उस बालक ने अत्यन्त कर्णकटु तथा चीत्कारपूर्ण भयकर आवाज की। उस बालक के कठोर, चीत्कारपूर्ण शब्दो को सुनकर तथा अवधारण कर हस्तिनापुर नगर के बहुत से नागरिक पशु यावत् वृषभ आदि भयभीत व उद्वेग को प्राप्त होकर चारो दिशाओ मे भागने लगे। इससे उसके माता-पिता ने इस तरह उसका नाम-सस्करण किया कि जन्म के साथ ही इस बालक ने 'चिच्ची' चीत्कार के द्वारा कर्णकटु स्वर युक्त आक्रन्दन किया, इस प्रकार के उस कर्णकटु, चीत्कारपूर्ण आक्रन्दन को सुनकर तथा अवधारण कर हस्तिनापुर के गौ आदि नागरिक पशु भयभीत व उद्विग्न होकर चारो तरफ भागने लगे, अत इस बालक का नाम गोत्रास (गाय आदि पशुओ को त्रास देने वाला) रक्खा जाता है।

तदनन्तर यथासमय उस गोत्रास नामक बालक ने बाल्यावस्था को त्याग कर युवावस्था मे प्रवेश किया।

१४—तए णं से भीमे कूडग्गाहे अन्नया कयाइ कालधम्मुणा संजुत्ते। तए णं से गोत्तासए दारए बहुएणं मित्त-नाइ-नियग-सयण सम्बन्धि-परियणेणं सद्धिं संपरिवुडे रोयमाणे कन्दमाणे विलवमाणे भीमस्स कूडग्गाहस्स नीहरण करेइ, करेत्ता बहूहिं लोइयमयकिच्चाइं करेइ। तए णं से सुनदे राया गोत्तासं दारय अन्नया कयाइ सयमेव कूडग्गाहत्ताए ठावेइ। तए णं से गोत्तासे दारए कूडग्गाहे जाए यावि होत्था—अहम्मिए जाव दुप्पडियाणंदे।

१४—तत्पश्चात् (गोत्रास के युवक हो जाने पर) भीम कूटग्राह किसी समय कालधर्म (मृत्यु) को प्राप्त हुआ। तव गोत्रास वालक ने अपने मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन, सम्बन्धी और परिजनो से परिवृत होकर रुदन, विलपन तथा आक्रन्दन करते हुए अपने पिता भीम कूटग्राह का दाहसस्कार किया। अनेक लौकिक मृतक-क्रियाएँ की। तदनन्तर सुनन्द नामक राजा ने किसी समय स्वयमेव गोत्रास वालक को कूटग्राह के पद पर नियुक्त किया। गोत्रास भी (अपने पिता की ही भाति) महान् अधर्मी व दुष्प्रत्यानन्द (वडी कठिनता से प्रसन्न होने वाला) था।

१५—तए णं से गोत्तासे दारए कूडग्गाहित्ताए कल्लाकल्लिं अद्धरत्तियकालसमयंसि एगे अबीए सन्नद्धबद्धकवए जाव गहिया-उहप्पहरणे सयाओ गिहाओ निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव गोमण्डवे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता वहूण नगरगोरूवाण सणाहाण य जाव[1] वियंगेइ, जेणेव सए गिहे तेणेव उवागए। तए ण से गोत्तासे कूडग्गाहे तेहिं वहूहिं गोमसेहि य सोल्लेहि य जाव (तलिएहि य भज्जिएहि य परिसुक्केहि य लावणेहि य सुर च ६ आसाएमाणे विसाएमाणे जाव विहरइ। तए णं से गोत्तासए कूडग्गाहे एयकम्मे एयप्पहाणे एयविज्जे एयसमायारे सुवहुं पावकम्मं समज्जिणित्ता पंचवाससयाइं परमाउयं पालइत्ता अट्टदुहट्टोवगए कालमासे काल किच्चा दोच्चाए पुढवीए उक्कोसं तिसागरोवमठिइएसु नेरइएसु नेरइयत्ताए उववन्ने।

१५—उसके बाद वह गोत्रास कूटग्राह प्रतिदिन आधी रात्रि के समय सैनिक की तरह तैयार होकर कवच पहिनकर और शस्त्रास्त्रो को धारण कर अपने घर से निकलता। निकलकर गोमण्डप मे जाता। वहाँ पर अनेक गौ आदि नागरिक पशुओ के अङ्गोपाङ्गो को काटकर अपने घर आ जाता। आकर उन गौ आदि पशुओ के शूलपक्व तले, भुने, सूखे और नमकीन मासो के साथ मदिरा आदि का आस्वादन, विस्वादन करता हुआ जीवनयापन करता।

तदनन्तर वह गोत्रास कूटग्राह इस प्रकार के कर्मोवाला, इस प्रकार के कार्यो मे प्रधानता रखने वाला, इस प्रकार की पाप-विद्या को जानने वाला तथा ऐसे क्रूर आचरणो वाला नाना प्रकार के पापकर्मो का उपार्जन कर पाच सौ वर्ष का पूरा आयुष्य भोगकर चिन्ता और दु.ख से पीडित होकर मरणावसर मे काल करके उत्कृष्ट तीन सागर की उत्कृष्ट स्थिति वाले दूसरे नरक मे नारक रूप से उत्पन्न हुआ।

१६—तए णं विजयमित्तस्स सत्थवाहस्स सुभद्दा नामं भारिया जायनिंदुया यावि होत्था। जाया जाया दारगा विणिहायमावज्जंति। तए णं से गोत्तासे कूडग्गाहे दोच्चाए पुढवीए अणंतरं उव्वट्टित्ता इहेव वाणियगामे नयरे विजयमित्तस्स सत्थवाहस्स सुभद्दाए भारियाए कुच्छिसि पुत्तत्ताए उववन्ने। तए णं सा सुभद्दा सत्थवाही अन्नया कयाइ नवण्हं मासाणं वहुपडिपुण्णाणं दारगं पयाया।

१६—विजयमित्र की सुभद्रा नाम की भार्या जातनिन्दुका (जन्म लेते ही मरने वाले वच्चो को जन्म देने वाली) थी। अतएव जन्म लेते ही उसके वालक विनाश को प्राप्त हो जाते (मर जाते) थे। तत्पश्चात् वह गोत्रास कूटग्राह का जीव भी दूसरे नरक से निकलकर सीधा इसी वाणिजग्राम नगर के विजयमित्र सार्थवाह की सुभद्रा नाम की भार्या के उदर मे पुत्ररूप से उत्पन्न हुआ—गर्भ मे

---

१ द्वि अ सूत्र ८

आया। तदनन्तर किसी अन्य समय मे नव मास परिपूर्ण होने पर सुभद्रा सार्थवाही ने पुत्र को जन्म दिया।

१७—तए णं सा सुभद्दा सत्थवाही तं दारगं जायमेत्तयं चेव एगते उक्कुरुडियाए उज्झावेइ, उज्झावित्ता दोच्चंपि गिण्हावेइ गिण्हावित्ता अणुपुव्वेणं सारक्खेमाणी संगोवेमाणी संवड्ढेइ।

तए णं तस्स दारगस्स अम्मापियरो ठिइवडियं च चन्दसूरपासणियं च जागरियं च महया इड्ढीसक्कारसमुदएण करेन्ति। तए णं तस्स दारगस्स अम्मापियरो एक्कारसमे दिवसे निव्वत्ते, संपत्ते बारसमे दिवसे इममेयारूवं गोण्णं गुणनिप्फन्नं नामधेज्जं करेन्ति—'जम्हा णं अम्हं इमे दारए जायमेत्तए चेव एगते उक्कुरुडियाए उज्झिए, तम्हा ण होउ अम्हं दारए उज्झिए नामेण। तए णं से उज्झिए दारए पचधाईपरिग्गहिए, त जहा—खीरधाईए मज्जणधाईए मण्डणधाईए कीलावणधाईए अंकधाईए, जहा दढपइन्ने, जाव निव्वाधाए गिरिकन्दरमल्लीणे विव चम्पकपायवे सुहसुहेणं परिवड्ढइ।

१७—तत्पश्चात् सुभद्रा सार्थवाही उस बालक को जन्मते ही एकान्त मे कूडे-कर्कट के ढेर पर डलवा देती है, और पुन. उठवा लेती है। तत्पश्चात् क्रमश सरक्षण व सगोपन करती हुई उसका परिवर्द्धन करने लगती है।

उसके बाद उस बालक के माता-पिता स्थितिपतित-कुलमर्यादा के अनुसार पुत्रजन्मोचित बधाई बाटने आदि की क्रिया करते है। चन्द्र-सूर्य-दर्शन-उत्सव व जागरण महोत्सव भी महान् ऋद्धि एव सत्कार के साथ करते हैं। तत्पश्चात् उस बालक के माता-पिता ग्यारहवें दिन के व्यतीत हो जाने पर तथा बारहवाँ दिन आ जाने पर इस प्रकार का गौण-गुण से सम्बन्धित व गुणनिष्पन्न-गुणानुरूप नामकरण करते है—क्योकि हमारा यह बालक एकान्त मे उकरडे—कचरा फेंकने की जगह पर फेक दिया गया था, अत हमारा यह बालक 'उज्झितक' नाम से प्रसिद्ध हो। तदनन्तर वह उज्झितक कुमार पाच धायमाताओ की देखरेख मे रहने लगा। उन धायमाताओ के नाम ये हैं—क्षीरधात्री—दूध पिलाने वाली, स्नानधात्री—स्नान कराने वाली, मण्डनधात्री—वस्त्राभूषण से अलकृत करने वाली, क्रीडापनधात्री—क्रीडा कराने वाली, और अङ्कधात्री—गोद मे उठाकर खिलाने वाली। इन धाय-माताओ के द्वारा दृढप्रतिज्ञ की तरह निर्वात—वायु से रहित एव निर्व्याघात-आघात से रहित, पर्व-तीय कन्दरा मे अवस्थित चम्पक वृक्ष की तरह सुखपूर्वक वृद्धि को प्राप्त होने लगा।

१८—तए णं से विजयमित्ते सत्थवाहे अन्नया कयाइ गणिमं च धरिमं च मेज्जं च पारिछेज्जं च चउव्विहं भंडगं गहाय लवणसमुद्दं पोयवहणेण उवागए। तए ण से तत्थ लवणसमुद्दे पोयविपत्तीए निव्वुड्डभडसारे अत्ताणे असरणे कालधम्मुणा सजुत्ते। तए णं त विजयमित्त सत्थवाहं जे जहा बहवे ईसर-तलवर-माडबिय-कोडुंबिय-इब्भ-सेट्ठि-सत्थवाहा लवणसमुद्दे पोयविवत्तीए छूढं निव्वुड्डभ-डसार कालधम्मुणा संजुत्त सुणेन्ति, ते तहा हत्थनिक्खेवं च बाहिरभाण्डसार च गहाय एगते अवक्कमंति।[1]

---

1 प्रस्तुत सूत्र मे हस्तनिक्षेप व बाह्यभाण्डसार इन शब्दो का प्रयोग किया गया है, आचार्य अभयदेव सूरि ने इन पदो की निम्न व्याख्या की है—'हस्तेनिक्षेपो-न्यास समर्पण यस्य द्रव्यस्य तद् हस्तनिक्षेपम्, हस्तनिक्षेप-व्यतिरिक्त च भाण्डसारम्'। धरोहर को हस्तनिक्षेप कहते है अर्थात् किसी की साक्षी के बिना अपने हाथ से दिया गया सारभाण्ड हस्तनिक्षेप है और किसी की साक्षी से लोगो की जानकारी मे दिया गया सारभाण्ड बाह्य-भाण्डसार के नाम से प्रचलित है।

१८—इसके बाद विजयमित्र सार्थवाह ने जहाज द्वारा गणिम (गिनती से बेची जाने वाली वस्तु, जैसे नारियल), धरिम (जो तराजू से तोलकर वेची जाय, जैसे घृत, तेल, शर्करा आदि), मेय (मापकर बेचे जाने योग्य पदार्थ जैसे कपडा, फीता आदि) और पारिच्छेद्य (जिन वस्तुओ का क्रय-विक्रय परीक्षाधीन हो, जैसे हीरा, पन्ना आदि) रूप चार प्रकार की वेचने योग्य वस्तुएँ लेकर लवण-समुद्र मे प्रस्थान किया। परन्तु लवण-समुद्र मे जहाज के विनष्ट हो जाने से विजयमित्र की उपर्युक्त चारो प्रकार की महामूल्य वस्तुएँ जलमग्न हो गयी और वह स्वय त्राण रहित (जिसकी कोई रक्षा करने वाला न हो) और अशरण (जिसको कोई आश्रय देने वाला न हो) होकर कालधर्म को प्राप्त हो गया। तदनन्तर ईश्वर, तलवर, माडम्बिक, कौटुम्बिक, इभ्य—धनी, श्रेष्ठी—सेठ तथा सार्थवाहो ने जब लवण समुद्र मे जहाज के नष्ट और महामूल्य वाले क्रयाणक के जलमग्न हो जानेपर त्राण और शरण से रहित विजयमित्र की मृत्यु का वृत्तान्त सुना तो वे हस्तनिक्षेप-धरोहर व वाह्य (उसके अति-रिक्त) भाण्डसार को लेकर एकान्त स्थान मे (वाणिजग्राम से वाहर ऐसे स्थान पर कि जिसका दूसरो को पता न चल सके) चले गये।

१९—तए णं सा सुभद्दा सत्थवाही विजयमित्त सत्थवाहं लवणसमुद्दे पोयविवत्तीए निव्वुड-भाण्डसार कालधम्मुणा सजुत्तं सुणेइ, सुणित्ता महया पइसोएणं अप्फुन्ना समाणी परसुनियत्ता विव-चम्पगलया धस त्ति धरणीयलसि सव्वगेण सनिवडिया। तए ण सा सुभद्दा सत्थवाही मुहुत्तन्तरेण आसत्था समाणी बहूहि मित्त जाव (-नाइ-नियग-सजण-सबधि-परियणेण) सद्धि परिवुडा रोयमाणी कन्दमाणी विलवमाणी विजयमित्त-सत्थवाहस्स लोइयाइ मयकिच्चाइं करेइ। तए णं सा सुभद्दा सत्थवाही अन्नया कयाइ लवणसमुद्दोत्तरण च लच्छिविणासं च पोयविणासं च पइमरणं च अणु-चिन्तेमाणी अणुचिन्तेमाणी कालधम्मुणा सजुत्ता।

१९—तदनन्तर सुभद्रा सार्थवाही ने जिस समय लवणसमुद्र मे जहाज के नष्ट हो जाने के कारण भाण्डसार के जलमग्न हो जाने के साथ विजयमित्र सार्थवाह की मृत्यु के वृत्तान्त को सुना, तब वह पतिवियोगजन्य महान् शोक से ग्रस्त हो गई। कुल्हाडे से कटी हुई चम्पक वृक्ष की शाखा की तरह धडाम से पृथ्वीतल पर गिर पडी। तत्पश्चात् वह सुभद्रा-सार्थवाही एक मुहूर्त्त के अनन्तर अर्थात् कुछ समय के पश्चात् आश्वस्त हो अनेक मित्रो, ज्ञातिजनो, स्वजनो, सम्वन्धियो तथा परिजनो से घिरी हुई रुदन क्रन्दन विलाप करती हुई विजयमित्र के लौकिक मृतक-क्रियाकर्म करती है। तदनन्तर वह सुभद्रा सार्थवाही किसी अन्य समय लवणसमुद्र मे पति का गमन, लक्ष्मी का विनाश, पोत-जहाज का जलमग्न होना तथा पति की मृत्यु की चिन्ता मे निमग्न रहती हुई काल-धर्म—मृत्यु को प्राप्त हो गयी।

१९—तए ण ते नगरगुत्तिया सुभद्द सत्थवाहिं कालगयं जाणित्ता उज्झियगं दारग सयाओ गिहाओ निच्छुभेन्ति, निच्छुभित्ता तं गिह अन्नस्स दलयन्ति।

तए ण से उज्झियए दारए सयाओ गिहाओ निच्छूढे समाणे वाणियगामे नगरे सिंघाडग जाव (तिग-चउक्क-चच्चर-महापह-) पहेसु जूयखलएसु, वेसियाघरेसु पाणागारेसु य सुहंसुहेणं परिवड्ढइ। तए ण से उज्झियए दारए अणोहट्टिए अनिवारए सच्छन्दमई सइरप्पयारे मज्जप्पसगी चोरजूयवेस-दारप्पसंगी जाए यावि होत्था। तए ण से उज्झियए अन्नया कयाइ कामज्झयाए गणियाए सपलग्गे

जाए यावि होत्था। कामज्झयाए गणियाए सद्धि विउलाइ उरालाइ माणुस्सगाइ भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरइ।

१९—तदनन्तर नगररक्षक पुरुषो ने सुभद्रा सार्थवाही की मृत्यु के समाचार जानकर उज्झितक कुमार को अपने घर से निकाल दिया और उसके घर को किसी दूसरे को (जो उज्झितक के पिता से रुपये मागता था, अधिकारी लोगो ने उज्झितक को निकाल कर रुपयो के बदले उसका घर उस उत्तमर्ण को) सौंप दिया।

अपने घर से निकाला जाने पर वह उज्झितक कुमार वाणिजग्राम नगर के त्रिपथ, चतुष्पथ, चत्वर, राजमार्ग एव सामान्य मार्गो पर, द्यूतगृहो, वेश्यागृहो व मद्यपानगृहो मे सुखपूर्वक भटकने लगा। तदनन्तर वेरोकटोक स्वच्छन्दमति एव निरकुश बना हुआ वह चौर्यकर्म, द्यूतकर्म, वेश्यागमन और परस्त्रीगमन मे आसक्त हो गया। तत्पश्चात् किसी समय कामध्वजा वेश्या के साथ विपुल, उदार-प्रधान मनुष्य सम्बन्धी विषयभोगो का उपभोग करता हुआ समय व्यतीत करने लगा।

२०—तए ण तस्स विजयमित्तस्स रन्नो अन्नया कयाइ सिरीए देवीए जोणिसूले पाउब्भूए यावि होत्था। नो संचाएइ विजयमित्ते राया सिरीए देवीए सद्धि उरालाइं माणुस्सगाइ भोग-भोगाइं भुंजमाणे विहरित्तए।

तए णं विजयमित्ते राया अन्नया कयाइ उज्झियदारयं कामज्झाए गणियाए गिहाओ निच्छुभावेइ, निच्छुभावित्ता कामज्झयं गणियं अब्भितरियं ठावेइ, ठावइत्ता कामज्झयाए गणिआए सद्धि उरालाइ भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरइ।

२०—तदनन्तर उस विजयमित्र राजा की श्री नामक देवी को योनिशूल (योनि मे होने वाला वेदना-प्रधान रोग) उत्पन्न हो गया। इसलिये विजयमित्र राजा अपनी रानी के साथ उदार-प्रधान मनुष्य सम्बन्धी कामभोगो को भोगने मे समर्थ न रहा। अत अन्य किसी समय उस राजा ने उज्झितककुमार को कामध्वजा गणिका के स्थान से निकलवा दिया और कामध्वजा वेश्या के साथ मनुष्य सम्बन्धी उदार-प्रधान विषयभोगो का उपभोग करने लगा।

२१—तए ण से उज्झियए दारए कामज्झयाए गणियाए गिहाओ निच्छुभेमाणे कामज्झयाए गणिआए मुच्छिए, गिद्धे, गढिए, अज्झोववन्ने अन्नत्थ कत्थइ सुइ च रइ च धिइं च अविन्दमाणे तच्चित्ते तम्मणे तल्लेसे तदज्झवसाणे तदट्ठोवउत्ते तयप्पियकरणे तब्भावणाभाविए कामज्झयाए गणियाए बहूणि अन्तराणि य छिद्दाणि य पडिजागरमाणे-पडिजागरमाणे विहरइ। तए णं से उज्झियए दारए अन्नया कयाइ कामज्झयं गणियं अंतरं लभेइ, लभित्ता कामज्झयाए गणियाए गिह रहसियं अणुप्पविसइ, अणुप्पविसित्ता कामज्झयाए गणियाए सद्धि उरालाइं माणुस्सगाइ भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरइ।

२१—तदनन्तर कामध्वजा गणिका के घर से निकाले जाने पर कामध्वजा गणिका मे मूर्च्छित (उसके ही ध्यान मे मूढ—पागल बना हुआ) गृद्ध (उस वेश्या की ही आकाक्षा—इच्छा रखने वाला) ग्रथित (उसके ही स्नेहजाल मे जकडा हुआ) और अध्युपपन्न (उस वेश्या की ही चिन्ता मे आसक्त

रहने वाला) वह उज्झितक कुमार अन्यत्र कही भी स्मृति—स्मरण, रति—प्रीति व धृति—मानसिक शान्ति को प्राप्त न करता हुआ, उसी मे चित्त व मन को लगाए हुए, तद्विषयक परिणामवाला, तद्विषयक अध्यवसाय-योगक्रिया, उसी सम्बन्धी प्रयत्न-विशेष वाला, उसकी ही प्राप्ति के लिए उद्यत, उसी मे मन वचन और इन्द्रियो को समर्पित करने वाला, उसी की भावना से भावित होता हुआ। कामध्वजा वेश्या के अनेक अन्तर (ऐसा अवसर कि जिस समय राजा का आगमन न हो) छिद्र (राज-परिवार का कोई व्यक्ति भी न हो) व विवर (कोई सामान्य पुरुष भी जिस समय न हो) की गवेषणा करता हुआ जीवनयापन कर रहा था।

तदनन्तर वह उज्झितक कुमार किसी अन्य समय मे कामध्वजा गणिका के पास जाने का अवसर प्राप्तकर गुप्तरूप से उसके घर मे प्रवेश करके कामध्वजा वेश्या के साथ मनुष्य सम्बन्धी उदार विषयभोगो का उपभोग करता हुआ जीवनयापन करने लगा!

२२—इमं च ण वलमित्ते राया ण्हाए जाव (कयवलिकम्मे कयकोउअमगल) पायच्छित्ते सव्वालंकारविभूसिए मणुस्सवागुरापरिक्खित्ते जेणेव कामज्झयाए गणियाए गेहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तत्थ णं उज्झियए दारए कामज्झयाए गणियाए सद्धिं उरालाइ भोग-भोगाइं जाव विहरमाण पासइ, पासित्ता आसुरुत्ते रुट्ठे, कुविए चडिक्किए मिसिमिसेमाणे तिवलियभिउडिं निडाले साहट्टु उज्झियगं दारग पुरिसेहिं गिण्हावेइ, गेण्हावित्ता अट्ठि-मुट्ठि-जाणु-कोप्पर-पहार-सभग्ग-महियगत्तं करेइ, करेत्ता अवओडयबन्धण करेइ, करेत्ता एएण विहाणेणं वज्झ आणवेइ।

एवं खलु, गोयमा! उज्झियए दारए पुरापोराणाणं कम्माण जाव पच्चणुभवमाणे विहरइ।

२२—इधर किसी समय वलमित्र नरेश, स्नान, वलिकर्म, कौतुक, मगल (दुष्ट स्वप्नो के फल को विनष्ट करने के लिये) प्रायश्चित्त के रूप मे मस्तक पर तिलक एवं मागलिक कार्य करके सर्व अलकारो से अलकृत हो, मनुष्यो के समूह से घिरा हुआ कामध्वजा वेश्या के घर गया। वहाँ उसने कामध्वजा वेश्या के साथ मनुष्य सम्बन्धी भोगो का उपभोग करते हुए उज्झितक कुमार को देखा। देखते ही वह क्रोध से लाल-पीला हो गया। मस्तक पर त्रिवलिक भृकुटि—तीन रेखाओ वाली भोह (लोचन-विकारविशेष) चढाकर अपने अनुचरो के द्वारा उज्झितक कुमार को पकडवाया। पकडवाकर यष्टि (लकडी), मुष्टि (मुक्का), जानु (घुटना), कूर्पर (कोहनी) के प्रहारो से उसके शरीर को चूर-चूर और मथित करके अवकोटक वन्धन (जिस वन्धन मे ग्रीवा को पृष्ठ भाग मे ले जाकर हाथो के साथ वाधा जाय) से वाधा और बाँधकर 'इसी प्रकार से यह वध्य है' (जैसा तुमने देखा है) ऐसी आज्ञा दी।

हे गौतम! इस प्रकार वह उज्झितक कुमार पूर्वकृत पापमय कर्मो का फल भोग रहा है।

उज्झितक का भविष्य

२३—'उज्झियए णं भंते! दारए इओ कालमासे काल किच्चा कहिं गच्छिहिइ, कहिं उववज्जिहिइ?'

गोयमा! उज्झियए दारगे पणवीसं वासाइं परमाउयं पालइत्ता अज्जेव तिभागावसेसे दिवसे सूलीभिन्ने कए समाणे कालमासे कालं किच्चा इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए नेरइयत्ताए उववज्जिहिइ।

से णं तओ अणंतरं उव्वट्टित्ता इहेव जबूद्दीवे दीवे भारहे वासे वेयड्ढगिरिपायमूले वाणरकुलंसि वाणरत्ताए उववज्जिहिइ। से णं तत्थ उम्मुक्कवालभावे तिरियभोगेसु मुच्छिए, गिद्धे, गढिए, अज्झोववन्ने, जाए जाए वाणरपेल्लए वहेइ। तं एयकम्मे एयप्पहाणे एयविज्जे एयसमायारे कालमासे कालं किच्चा इहेव जम्बुद्दीवे दीवे भारहे वासे इन्दपुरे नयरे गणियाकुलंसि पुत्तत्ताए पच्चायाहिइ।

तए णं तं दारयं अम्मापियरो जायमेत्तकं वद्धे हिन्ति, नपुंसगकम्मं सिक्खावेहिंति। तए णं तस्स दारगस्स अम्मापियरो निव्वत्तबारसाहस्स इमं एयारूवं नामधेज्जं करेहिंति, तं जहा—'होउ णं अम्हं इमे दारए पियसेणे नामं नपुंसए।' तए णं से पियसेणे नपुंसए उम्मुक्कवालभावे जोव्वणगमणुप्पत्ते विन्नयपरिणयमेत्ते रूवेण य जोव्वणेण य लावण्णेण य उक्किट्ठे उक्किट्ठसरीरे भविस्सइ।

तए णं से पियसेणे नपुंसए इन्दपुरे नयरे वहवे राईसर-जाव (तलवर-माडबिय-कोडुंबिय-इब्भ-सेट्ठि-सेणावइ-) पभिइओ वहूहि य विज्जापयोगेहि य मतचुण्णेहि य हियउड्डावणाहि य निण्हवणेहि य पण्हवणेहि य वसीकरणेहि य आभियोगिएहि य अभियोगित्ता उरालाइं माणुस्सगाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरिस्सइ।

२३—गौतम स्वामी ने प्रश्न किया—हे प्रभो! यह उज्झितक कुमार यहाँ से कालमास मे काल करके कहाँ जायगा? और कहाँ उत्पन्न होगा?

भगवान्—गौतम! उज्झितक कुमार २५ वर्ष की पूर्ण आयु को भोगकर आज ही त्रिभागावशेष दिन मे (दिन के चौथे प्रहर मे) शूली द्वारा भेद को प्राप्त होकर कालमास मे काल करके—मर कर रत्नप्रभा नामक प्रथम नरक मे नारक रूप मे उत्पन्न होगा। वहाँ से निकलकर सीधा इसी जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे भारतवर्ष के वैताढ्य पर्वत के पादमूल—तलहटी (पहाड के नीचे की भूमि मे) वानर कुल मे वानर के रूप मे उत्पन्न होगा। वहाँ पर वालभाव को त्यागकर युवावस्था को प्राप्त होता हुआ वह पशु सम्बन्धी भोगो मे मूर्च्छित, गृद्ध-ग्रथित भोगो के स्नेहपाश मे जकडा हुआ और भोगो ही मे मन को लगाए रखने वाला होगा। वह उत्पन्न हुए वानरशिशुओ का अवहनन (घात) किया करेगा। ऐसे कुकर्म मे तल्लीन हुआ वह काल-मास मे काल करके इसी जम्बूद्वीप नामक द्वीप के अन्तर्गत इन्द्रपुर नामक नगर मे गणिका के घर मे पुत्र रूप मे उत्पन्न होगा। माता-पिता उत्पन्न होते ही उस वालक को वर्द्धितक (नपुंसक) वना देगे और नपुंसक के कार्य सिखलाएगे। बारह दिन के व्यतीत हो जाने पर उसके माता-पिता उसका 'प्रियसेन' यह नामकरण करेंगे। बाल्यभाव को त्याग कर युवावस्था को प्राप्त तथा विज्ञ—विशेष ज्ञान वाला, एव बुद्धि आदि की परिपक्व अवस्था को उपलब्ध करने वाला वह प्रियसेन नपुंसक रूप, यौवन व लावण्य के द्वारा उत्कृष्ट-उत्तम और उत्कृष्ट शरीर वाला होगा।

तदनन्तर वह प्रियसेन नपुंसक इन्द्रपुर नगर के राजा, ईश्वर यावत् अन्य मनुष्यो को अनेक प्रकार के प्रयोगो से, मन्त्रो से मन्त्रित चूर्ण, भस्म आदि से, हृदय को शून्य कर देने वाले, अदृश्य कर देने वाले, वश मे करने वाले, प्रसन्न कर देने वाले और पराधीन कर देने वाले प्रयोगो से वशीभूत करके मनुष्य सम्बन्धी उदार भोगो को भोगता हुआ समययापन करेगा।

२४—तए णं से पियसेणे नपुंसए एयकम्मे एयप्पहाणे एयविज्जे एयसमायारे सुबहुं पावकम्मं समज्जिणित्ता एकवीसं वाससयं परमाउयं पालइत्ता कालमासे कालं किच्चा इमीसे रयणप्पभाए

पुढवीए नेरइयत्ताए उववज्जिहिइ। तत्तो सरीसवेसु ससारो तहेव जहा पढमे[1] जाव पुढवि०। से णं तओ अणतर उव्वट्टित्ता इहेव जम्बुद्दीवे दीवे भारहे वासे चम्पाए नयरीए महिसत्ताए पच्चायाहिइ। से ण तत्थ अन्नया कयाइ गोट्ठिल्लएहिं जीवियाओ ववरोविए समाणे तत्थेव चम्पाए नयरीए सेट्ठिकुलंसि पुत्तत्ताए पच्चायाहिइ। से ण तत्थ उम्मुक्कबालभावे तहारूवाणं थेराण अतिए केवलं बोहिं बुज्झिहिइ, अणगारे भविस्सइ, सोहम्मे कप्पे, जहा पढमे, जाव अतं करेहिइ, त्ति निक्खेवो।

इस तरह वह प्रियसेन नपु सक इन पापपूर्ण कामो मे ही (अपना कर्तव्य, प्रधान लक्ष्य, विज्ञान एव सर्वोत्तम आचरण) वनाएगा। इन दुष्प्रवृत्तियो के द्वारा वह वहुत पापकर्मो का उपार्जन करके १२१ वर्ष की परम आयु को भोगकर मृत्यु के समय मे मृत्यु को प्राप्त होकर इस रत्नप्रभा नामक प्रथम नरक मे नारक के रूप मे उत्पन्न होगा। वहाँ से निकलकर सरीसृप—छाती के वल मे चलने वाले सर्प आदि प्राणियो की योनियो मे जन्म लेगा। वहाँ से उसका ससार-भ्रमण प्रथम अध्ययन मे वर्णित मृगापुत्र की तरह होगा यावत् पृथिवीकाय आदि मे जन्म लेगा। वहाँ से निकलकर इसी जम्बूद्वीप नामक द्वीप के अन्तर्गत भारतवर्ष की चम्पा नामक नगरी मे भैसा (महिष) के रूप मे जन्म लेगा। वहाँ गोष्ठिको-मित्रमण्डली के द्वारा मारे जाने पर उसी नगरी के श्रेष्ठिकुल मे पुत्ररूप मे उत्पन्न होगा। वहाँ पर वाल्यावस्था को पार करके यौवन अवस्था को प्राप्त होता हुआ वह तथारूप-विशिष्ट सयमी स्थविरो के पास शका काक्षा आदि दोषो से रहित वोधिलाभ को प्राप्तकर अनगार धर्म को ग्रहण करेगा। वहाँ से कालमास मे कालकर सौधर्म नामक प्रथम देवलोक मे उत्पन्न होगा। यावत् मृगापुत्र के समान कर्मो का अन्त करेगा। यहाँ इस अध्ययन का निक्षेप समझ लेना चाहिये।

---

१ देखिए प्र अ, सूत्र-३२

तृतीय अध्ययन

अभग्नसेन

उत्क्षेप

१—तच्चस्स उक्खेवो।

१—तृतीय अध्ययन की प्रस्तावना पूर्ववत् ही जान लेनी चाहिये।

२—तेण कालेण तेणं समएणं पुरिमताले नामं नयरे होत्था, रिद्ध०।[1] तस्स णं पुरिमतालस्स नयरस्स उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए एत्थ ण अमोहदंसणे (अमोहदंसी) उज्जाणे। तत्थ ण अमोहदंसिस्स जक्खस्स जक्खाययणे होत्था। तत्थ ण पुरिमताले महब्वले नाम राया होत्था।

२—उस काल उस समय मे पुरिमताल नामक एक नगर था। वह भवनादि की अधिकता से तथा धन-धान्य आदि से परिपूर्ण था। उस पुरिमताल नगर के ईशान-कोण मे अमोघदर्शी नामक एक उद्यान था। उस उद्यान मे अमोघदर्शी नामक यक्ष का एक यक्षायतन था। पुरिमताल नगर मे महाबल नामक राजा राज्य करता था।

चोरपल्ली

३—तत्थ णं पुरिमतालस्स नयरस्स उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए देसप्पते अडवी सठिया। एत्थ णं सालाडवी नामं चोरपल्ली होत्था। विसम-गिरिकन्दरकोलम्बसनिविट्ठा वंसीकलंकपागारपरिक्खित्ता छिन्नसेलविसमप्पवायफरिहोवगूढा अभिंतरपाणीया सुदुल्लभजलपेरंता अणेगखण्डी विदियजणदिन्न-निग्गमप्पवेसा सुबहुयस्स वि कुवियस्स जणस्स दुप्पहंसा यावि होत्था।

३—उस पुरिमताल नगर के ईशान कोण मे सीमान्त पर स्थित अटवी मे शालाटवी नाम की चोरपल्ली (चोरो के रहने का प्रच्छन्न स्थान) थी जो पर्वतीय भयकर गुफाओ के प्रान्तभाग—किनारे पर स्थित थी। बास की जाली की बनी हुई वाडरूप प्राकार (कोट) से घिरी हुई थी। छिन्न—अपने अवयवो से कटे हुए—पर्वत के ऊँचे-नीचे प्रपात-गर्तरूप खाई वाली थी। उसमे पानी की पर्याप्त सुविधा थी। उसके बाहर दूर-दूर तक पानी अप्राप्य था। उसमे भागने वाले मनुष्यो के मार्गरूप अनेक गुप्तद्वार थे। जानकार व्यक्ति ही उसमे निर्गम-प्रवेश (आवागमन) कर सकता था। बहुत से मोष-व्यावर्तक—चोरो से चुराई वस्तुओ को वापिस लाने के लिये उद्यत मनुष्यो द्वारा भी उसका पराजय नही किया जा सकता था।

चोरसेनापति विजय

४—तत्थ णं सालाडवीए चोरपल्लीए विजए नामं चोरसेणावई परिवसइ। अहम्मिए जाव (अहम्मिट्ठे अहम्मक्खाई अहम्माणुए अहम्मपलोई अहम्मपलज्जणे अहम्मसीलसमुदायारे अहम्मेण

---

१ औप सूत्र-३

चेव वित्तिं कप्पेमाणे विहरइ-हण-छिंद-भिंद-वियत्तए) लोहियपाणी बहुनयरनिग्गयजसे, सूरे, दढप्पहारे, साहसिए, सद्दवेही परिवसइ असिलट्ठिपढममल्ले। से णं तत्थ सालाडवीए चोरपल्लीए पचण्हं चोरसयाणं आहेवच्चं जाव (पोरेवच्चं सामित्तं भट्टित्तं महत्तरगत्तं आणाईसर-सेणावच्चं कारेमाणे पालेमाणे विहरइ।

४—उस शालाटवी चोरपल्ली मे विजय नाम का चोर सेनापति रहता था। वह महा अधर्मी था यावत् (अधर्मनिष्ठ, अधर्म की बात करने वाला, अधर्म का अनुयायी, अधर्मदर्शी, अधर्म मे अनुराग वाला, अधर्माचारशील, अधर्म से जीवन-यापन करने वाला, मारो, काटो, छेदो, भेदो, ऐसा ही बोलने वाला था) उसके हाथ सदा खून से रगे रहते थे। उसका नाम अनेक नगरो मे फैला हुआ था। वह शूरवीर, दृढप्रहारी, साहसी, शब्दवेधी—(बिना देखे मात्र शब्द से लक्ष्य का ज्ञान प्राप्त कर बीधने वाला) तथा तलवार और लाठी का अग्रगण्य-प्रधान योद्धा था। वह सेनापति उस चोरपल्ली मे पाच सौ चोरो का स्वामित्व, अग्रेसरत्व, नेतृत्व, बडप्पन करता हुआ रहता था।

५—तत्थ णं से विजए चोरसेणावई बहूणं चोराण य पारदारियाण य गंठिभेयाण य संधिच्छेयाण य खंडपट्टाण य अन्नेसिं च बहूण छिन्न-भिन्न-बाहिराहियाण कुडंगे यावि होत्था।

तए ण से विजए चोरसेणावई पुरिमतालस्स नयरस्स उत्तरपुरत्थिमिल्लं जणवयं बहूहिं गामघाएहि य नगरघाएहि य गोग्गहणेहि य बन्दिग्गहणेहि य पन्थकोट्टेहि य खत्त-खणणेहि य ओवीलेमाणे, विद्धंसेमाणे, तज्जेमाणे, तालेमाणे नित्थाणे निद्धणे निक्कणे करेमाणे विहरइ महाबलस्स रण्णो अभिक्खण अभिक्खणं कप्पाय गेण्हइ।

५—तदनन्तर वह विजय नामक चोरसेनापति अनेक चोर, पारदारिक—परस्त्रीलम्पट, ग्रन्थिभेदक—गाठ काटने वाले, सन्धिच्छेदक-साध लगाने वाले, जुआरी) धूर्त वगैरह लोग (कि जिनके पास पहिनने के लिये वस्त्र-खण्ड भी न हो) तथा अन्य बहुत से छिन्न—हाथ आदि जिनके कटे हुए हैं, भिन्न—नासिका आदि से रहित तथा शिष्टमण्डली से बहिष्कृत व्यक्तियो के लिये कुटङ्क-वास के वन के समान गोपक या सरक्षक था।

वह विजय चोरसेनापति पुरिमताल नगर के ईशान कोणगत जनपद—देश को-अनेक ग्रामो को नष्ट करने से, अनेक नगरो का नाश करने से, गाय आदि पशुओ के अपहरण से, कैदियो को चुराने से, पथिको को लूटने से, खात-सेंध लगाकर चोरी करने से, पीडित करता हुआ, विध्वस्त करता हुआ, तर्जित—तर्जनायुक्त करता हुआ, चाबुक आदि से ताडित करता हुआ, स्थानरहित धनरहित तथा धान्यादि से रहित करता हुआ तथा महाबल राजा के राजदेयकर-महसूल को भी बारम्बार स्वय ग्रहण करता हुआ समय व्यतीत करता था।

अभग्नसेन

६—तस्स ण विजयस्स चोरसेणावइस्स खन्दसिरी नामं भारिया होत्था, अहीण०।[1] तस्स

1 द्वि अ, सूत्र-३

ण विजयचोरसेणावइस्स पुत्ते खदसिरीए भारियाए अत्तए अभग्गसेणे नाम दारए होत्था, अहीण—पडिपुण्णपचिदियसरीरे विन्नायपरिणयमेत्ते जोव्वणगमणुप्पत्ते ।

६—उस विजय नामक चोरसेनापति की स्कन्दश्री नाम की परिपूर्ण पाच इन्द्रियो से युक्त सर्वांगसुन्दरी पत्नी थी । उस विजय चोरसेनापति का पुत्र एव स्कन्दश्री का आत्मज अभग्गसेन नाम का एक वालक था, जो अन्यून—सम्पूर्ण पाच इन्द्रियो वाला—सगठित शरीर वाला तथा विशेष ज्ञान रखने वाला और वुद्धि की परिपक्वता से युक्त यौवनावस्था को प्राप्त किये हुए था ।

७—तेण कालेण तेण समएण समणे भगव महावीरे पुरिमतालनयरे समोसढे । परिसा निग्गया । राया निग्गओ । धम्मो कहिओ । परिसा राया य पडिगओ ।

७—उस काल तथा उस समय मे पुरिमताल नगर मे श्रमण भगवान् महावीर स्वामी पधारे । परिषद्-जनसमूह धर्मदेशना श्रवण करने गये । राजा भी गया । भगवान् ने धर्मोपदेश दिया । धर्मोपदेश सुनकर राजा तथा जनता वापिस अपने स्थान को लौट आये ।

८—तेण कालेण तेण समएण समणस्स भगवओ महावीरस्स जेट्ठे अन्तेवासी गोयमे जाव[1] रायमग्गं समोगाढे । तत्थ ण वहवे हत्थी पासइ, वहवे आसे, पुरिसे सन्नद्धवद्धकवए । तेसिं णं पुरिसाणं मज्झगयं एग पुरिसं पासइ अवओडयवधण जाव[2] उग्घोसिज्जमाण । तए ण तं पुरिस रायपुरिसा पढमसि चच्चरसि निसीयावेन्ति, निसीयावेत्ता अट्ठ चुल्लपिउए अग्गओ घाएन्ति, घाएत्ता कसप्पहारेहिं तालेमाणा तालेमाणा कलुण काकणिमसाइ खावेंति, रुहिरपाणिय च पाएन्ति । तयाणन्तर च दोच्चसि चच्चरसि अट्ठ चुल्लमाउयाओ अग्गओ घाएन्ति, घाएत्ता कसपहारेहिं तालेमाणा तालेमाणा कलुण कागणिमंसाइ खावेंति, रुहिरपाणिय च पाएन्ति । एवं तच्चे चच्चरे अट्ठमहापिउए, चउत्थे अट्ठ महा-माउयाओ, पचमे पुत्ते, छट्ठे सुण्हाओ, सत्तमे जामाउया, अट्ठमे धूयाओ, नवमे नत्तुया, दसमे नत्तुईओ, एक्कारसमे नत्तुयावई, वारसमे नत्तुइणीओ, तेरसमे पिउस्सियपइया, चोद्दसमे पिउस्सियाओ, पन्नरसमे माउस्सियापइया, सोलसमे माउस्सियाणो, सत्तरसमे मामियाओ, अट्ठारसमे अवसेस मित्त-नाइ-नियग-सयण-संवधि-परियण अग्गओ घाएंति, घाएत्ता कसप्पहारेहिं तालेमाणा तालेमाणा कलुण कागणिमसाइ खावेंति, रुहिरपाणिय च पाएन्ति ।

८—उस काल एव उस समय मे श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के प्रधान शिष्य श्री गौतम स्वामी राजमार्ग मे पधारे । वहां उन्होने वहुत से हाथियो, घोडो तथा सैनिको की तरह शस्त्रो से सुसज्जित और कवच पहिने हुए अनेक पुरुषो को देखा । उन सव पुरुषो के वीच अवकोटक वन्धन[3] से युक्त उद्घोषित एक पुरुष को भी देखा, जैसा दूसरे अध्ययन मे कहा गया है ।

तदनन्तर राजपुरुष उस पुरुष को चत्वर (चार मार्गो से अधिक मार्ग जहाँ एकत्रित हो) पर बैठाकर उसके आगे आठ लघुपिताओं (चाचाओं) को मारते हैं । तथा कशादि प्रहारो से ताडित करते हुए दयनीय स्थिति को प्राप्त हुए उस पुरुष को उसके ही शरीर मे से काटे गये मास के छोटे-छोटे

---

१ द्वि. अ , सूत्र-६ २. द्वि. अ सूत्र-६

३ द्वि अ , सूत्र-७

टुकडो को खिलाते हैं और रुधिर का पान कराते हैं। तदनन्तर द्वितीय चत्वर पर उसकी आठ लघु-माताओ को (चाचियो को) उसके समक्ष ताडित करते हैं और मास खिलाते तथा रुधिरपान कराते हैं। इसी तरह तीसरे चत्वर पर आठ महापिताओ (पिता के ज्येष्ठ भ्राताओ—ताउओ) को, चौथे चत्वर पर आठ महामाताओ (पिता के ज्येष्ठ भ्राताओ की धर्मपत्नियो—ताइयो) को, पाचवे पर पुत्रो को, छट्ठे पर पुत्रवधुओ को, सातवे पर जामाताओ को, आठवे पर लडकियो को, नवमे पर नप्ताओ (पौत्रो व दोहित्रो) को, दसवे पर लडके और लडकियो की लड़कियो (पौत्रियो व दौहित्रियो) को, ग्यारहवे पर नप्तृकापतियो (पौत्रियो व दौहित्रियो के पतियो) को, तेरहवे पर पिता की वहिनो के पतियो (फूफाओ) को, चौदहवे पर पिता की बहिनो (बुआओ) को, पन्द्रहवे पर माता की वहिनो के पतियो (मौसाओ) को, सोलहवे पर माता की वहिनो को (मौसियो को), सत्रहवे पर मामा की स्त्रियो (मामियो) को, अठारहवे पर शेष मित्र, ज्ञाति, स्वजन सम्बन्धी और परिजनो को उस पुरुप के आगे मारते हैं तथा चाबुक के प्रहारो से ताडित करते हुए वे राजपुरुष करुणाजनक उस पुरुष को उसके शरीर से निकाले हुए मास के टुकडे खिलाते और रुधिर का पान कराते हैं।

अभग्नसेन का पूर्वभव

९—तए णं से भगवं गोयमे त पुरिस पासइ पासित्ता इमे एयारूवे जाव समुप्पन्ने जाव तहेव निग्गए एव वयासी—'एव खलु अहं ण भते ! तं चेव जाव से णं भन्ते ! पुरिसे पुव्वभवे के आसी[1] जाव विहरइ।'

९—तदनन्तर भगवान् गौतम के हृदय मे उस पुरुष को देखकर यह सङ्कल्प उत्पन्न हुआ यावत् पूर्ववत् वे नगर से बाहर निकले तथा भगवान् के पास आकर निवेदन करने लगे—भगवन् ! मैं आपकी आज्ञानुसार नगर मे गया, वहाँ मैने एक पुरुष को देखा यावत् भगवन् ! वह पुरुष पूर्वभव मे कौन था ? जो इस तरह अपने कर्मों का फल पा रहा है ?

अभग्नसेन का निन्नयभव

१०—एव खलु गोयमा ! तेण कालेण तेणं समएण इहेव जंबुद्दीवे दीवे, भारहे वासे पुरिमताल नाम नयरे होत्था, रिद्धत्थमियसमिद्धे[1]। तत्थ ण पुरिमताले नयरे उदिए नामं राया होत्था, महया० [2]। तत्थ ण पुरिमताले निन्नए नामं अडयवाणिए होत्था। अड्ढे जाव[3] अपरिभूए, अहम्मिए[4] जाव दुप्पडियाणन्दे। तस्स ण निन्नयस्स बहवे पुरिसा दिन्नभइभत्तवेयणा कल्लाकल्लिं कुद्दालियाओ य पत्थियपिडए य गिण्हंति, गिण्हित्ता पुरिमतालस्स नगरस्स परिपेरन्तेसु वहवे काइअंडए य घूइअडए य पारेवइअंडए य टिट्टिभिअडए य बगि-मयूरी-कुक्कुडिअडए य अन्नेसिं च बहूण जलयर-थलयर-खहयरमाईण अडाइं गेण्हति, गेण्हेत्ता पत्थियपिडगाइ भरेंति, भरेत्ता जेणेव निन्नयए अडवाणियए तेणामेव उवागच्छति उवागच्छित्ता निन्नयस्स अडवाणियस्स उवर्णेति।

१०—इस प्रकार निश्चय ही हे गौतम ! उस काल तथा उस समय इस जम्बूद्वीप नामक द्वीप

१ औप. सूत्र-१
२. औप० सूत्र-१४
३ औप सूत्र १४१
४ तृतीय अध्ययन-४

के अन्तर्गत भारतवर्ष मे पुरिमताल नामक समृद्धिपूर्ण नगर था। उस पुरिमताल नगर मे उदित नाम का राजा राज्य करता था, जो हिमालय पर्वत की तरह महान् था। उस पुरिमताल नगर मे निर्णय नाम का एक अण्डो का व्यापारी भी रहता था। वह धनी तथा पराभव को न प्राप्त होने वाला, अधर्मी यावत् (अधर्मानुयायी, अधर्मनिष्ठ, अधर्म की कथा करने वाला, अधर्मदर्शी, अधर्माचारी) एव परम असन्तोषी था।

निर्णयनामक अण्डवणिक के अनेक दत्तभृतिभक्तवेतन (रुपये पैसे और भोजन के रूप से वेतन ग्रहण करने वाले) अनेक पुरुष प्रतिदिन कुद्दाल व बास की पिटारियो को लेकर पुरिमताल नगर के चारो ओर अनेक, कौवी (कौए की मादा) के अण्डो को, घूकी (उल्लू की मादा) के अण्डो को कबूतरी के अण्डो को, बगुली के अण्डो को, मोरनी के अण्डो को, मुर्गी के अण्डो को, तथा अनेक जलचर, स्थलचर, व खेचर आदि जीवो के अण्डो को लेकर पिटारियो मे भरते थे और भरकर निर्णय नामक अण्डो के व्यापारी के पास आते थे, आकर उस अण्डव्यापारी को अण्डो से भरी हुई वे पिटारियाँ देते थे।

११—तए ण तस्स निन्नयस्स अंडवाणियस्स बहवे पुरिसा दिन्नभइभत्तवेयणा बहवे काइ अण्डए जाव[२] कुक्कुडिअण्डए य अन्नेसि च बहूणं जलयर-थलयर-खहयरमाईणं अण्डयए तवएसु य कवल्लीसु य कदुएसु य भज्जणएसु य इंगालेसु य तलेंति, भज्जेंति, सोल्लेन्ति, तलित्ता भज्जित्ता सोलेत्ता रायमग्गे अंतरावणसि अडयपणिएणं वित्ति कप्पेमाणा विहरंति। अप्पणा यावि णं से निन्नयए अण्डवाणियए तेहिं बहूहिं काइअंडएहि य जाव कुक्कुडिअंडएहि य सोल्लेहि य तलिएहि य भज्जिएहि य सुरं च महुं च मेरग च जाइ च सीधु च आसाएमाणे-४ विहरइ।

११—तदनन्तर वह निर्णय नामक अण्डवर्णक् के अनेक वेतनभोगी पुरुष बहुत से कौवी यावत् कुकडी के अण्डो तथा अन्य जलचर, स्थलचर एव खेचर आदि पूर्वोक्त जीवो के अण्डो को तवो पर कडाहो पर हाथो मे एव अगारो मे तलते थे, भूनते थे, पकाते थे। तलकर, भूनकर एव पकाकर राजमार्ग की मध्यवर्ती दुकानो पर अण्डो के व्यापार से आजीविका करते हुए समय व्यतीत करते थे। वह निर्णय नामक अण्डवणिक् स्वय भी अनेक कौवी यावत् कुकडी के अण्डो के, जो कि पकाये हुए, तले हुए और भुने हुए थे, साथ ही सुरा, मधु, मेरक, जाति तथा सीधु इन पचविध मदिराओ का आस्वादन करता हुआ जीवन-यापन कर रहा था।

अभग्नसेन का वर्तमान-भव

१२—तए ण से निन्नए अडवाणियए एयकम्मे एयप्पहाणे एयविज्जे एयसमायारे सुबहुं पावकम्मं समज्जिणित्ता एग वाससहस्सं परमाउयं पालइत्ता कालमासे काल किच्चा तच्चाए पुढवीए उक्कोसेण सत्तसागरोवमठिइएसु नेरइएसु नेरइयत्ताए उववन्ने। से णं तओ अणंतर उव्वट्टित्ता इहेव सालाडवीए चोरपल्लीए विजयस्स चोरसेणावइस्स खदसिरीए भारियाए कुच्छिसि पुत्तत्ताए उववन्ने।

१२—तदनन्तर वह निर्णय नामक अण्डवाणिक् इस प्रकार के पापकर्मों का करने वाला अत्यधिक पापकर्मो को उपार्जित करके एक हजार वर्ष की परम आयुष्य को भोगकर मृत्यु के समय मे

---

२ तृ. अ, सूत्र १०

मृत्यु को प्राप्त करके तीसरी पृथ्वी—नरक मे उत्कृष्ट सात सागरोपम की स्थितिवाले नारको मे नारक रूप से उत्पन्न हुआ। वह निर्णयनामक अण्डवणिक् नरक से निकलकर विजयनामक चोरसेनापति की स्कन्दश्री भार्या के उदर मे पुत्र रूप मे उत्पन्न हुआ।

१३—तए ण तीसे खन्दसिरीए भारियाए अन्नया कयाइ तिण्ह मासाण बहुपडिपुण्णाण इमे एयारूवे दोहले पाउब्भूए। 'धन्नाओ ण ताओ अम्मयाओ जाओ ण बहूहि मित्त-नाइ-नियग-सयण-सबधि-परियणमहिलाहि अन्नाहि य चोरमहिलाहि सद्धि सपरिवुडा ण्हाया कयवलिकम्मा जाव (कयकोउयमंगल-) पायच्छित्ता सव्वालंकारविभूसिया विउलं असण पाणं खाइम साइमं सुर च मज्ज च आसाएमाणी विसाएमाणी परिभाएमाणी परिभुजेमाणी विहरति। जिमियभुत्तुत्तरागयाओ पुरिसनेवत्थिया सन्नद्धबद्धवम्मियकवइया जाव[1] गहियाउहप्पहरणा भरिएहि फलएहि, निक्किट्ठाहि असीहि, असागएहि तोणेहि सजीवेहि धणूहि, समुक्खित्तेहि सरेहि, समुल्लासियाहि दामाहि, लबियाहि य ओसारियाहि उरुघण्टाहि, छिप्पतूरेण वज्जमाणेण महया उक्किट्ठ जाव (सीहनाय-बोल-कलकलरवेण) समुद्दरवभूय पिव करेमाणीओ सालाडवीए चोरपल्लीए सव्वओ समता आलोएमाणीओ आलोएमाणीओ आहिंडमाणीओ दोहलं विणेन्ति। त जइ अहं पि जाव दोहल विणिज्जामि' त्ति कट्टु तसि दोहलसि अविणिज्जमाणसि जाव सुक्का भुक्खा जाव अट्टज्झाणोवगया भूमिगयदिट्ठीया झियाइ।

१३—किसी अन्य समय लगभग तीन मास परिपूर्ण होने पर स्कन्दश्री को यह दोहद (सकल्प) उत्पन्न हुआ—वे माताएँ धन्य हैं, जो मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन, सम्बन्धियो और परिजनो की महिलाओ तथा अन्य महिलाओ से परिवृत होकर स्नान यावत् अनिष्टोत्पादक स्वप्नादि को निष्फल बनाने के लिये प्रायश्चित्त रूप मे माङ्गलिक कृत्यो को करके सर्वप्रकार के अलकारो से अलकृत हो, बहुत प्रकार के अशन, पान, खादिम स्वादिम पदार्थो तथा सुरा, मधु, मेरक, जाति और प्रसन्नादि मदिराओ का आस्वादन, विस्वादन, परिभाजन और परिभोग करती हुई विचरती है, तथा भोजन के पश्चात् जो उचित स्थान पर उपस्थित हुई है, जिन्होने पुरुष का वेष पहना हुआ है और जो दृढ बन्धनो से बधे हुए, लोहमय कसूलक आदि से युक्त कवच-लोहमय वस्तर को शरीर पर धारण किये हुए है, यावत् आयुध और प्रहरणो से युक्त हैं, तथा वाम हस्त मे धारण किये हुए फलक-ढालो से, कोश-म्यान से बाहर निकली हुई तलवारो से, कन्धे पर रखे हुए तरकशो से ऊँचे किये हुए पाशो-जालो अथवा शस्त्रविशेषो से, सजीव-प्रत्यचा युक्त धनुषो से, सम्यक्तया फेंके जाने वाले बाणो से, लटकती व अवसारित चालित जघा-घण्टियो के द्वारा तथा क्षिप्रतूर्य (शीघ्र बजाया जाने वाला बाजा) बजाने से महान्, उत्कृष्ट-आनन्दमय महाध्वनि से समुद्र की आवाज के समान आकाशमण्डल को शब्दायमान करती हुई शालाटवी नामक चोरपल्ली के चारो ओर अवलोकन तथा उसके चारो तरफ भ्रमण करती हुई अपना दोहद पूर्ण करती हैं।

क्या अच्छा हो यदि मैं भी इसी भाति अपने दोहद को पूर्ण करूँ? ऐसा विचार करने के पश्चात् वह दोहद के पूर्ण न होने से उदास हुई, दुबली पतली और जमीन पर नजर गडाए आर्त ध्यान करने लगी।

---

१ द्वि अ, सूत्र-६

१४—तए ण से विजए चोरसेणावई खदसिरिं भारियं ओहयमणसंकप्पं जाव पासइ, पासित्ता एवं वयासी—'किं ण तुमं देवाणुप्पिया ! ओहयमणसंकप्पा जाव झियासि ?'

तए णं सा खंदसिरी विजयचोरसेणावइं एव वयासी—'एवं खलु देवाणुप्पिया ! मम तिण्हं मासाण जाव झियामि ।'

तए ण से विजए चोरसेणावई खंदसिरीए भारियाए अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म खद-सिरिभारियं एवं वयासी—'अहासुहं देवाणुप्पिए !' त्ति एयमट्ठं पडिसुणेइ ।

१४—तदनन्तर विजय चोरसेनापति ने आर्तध्यान करती हुई स्कन्दश्री को देखकर इस प्रकार पूछा—देवाणुप्रिये ! तुम उदास हुई क्यो आर्तध्यान कर रही हो ?

स्कन्दश्री ने विजय चोरसेनापति के उक्त प्रश्न के उत्तर मे कहा—देवानुप्रिय ! मुझे गर्भ धारण किये हुए तीन मास हो चुके है । मुझे पूर्वोक्त दोहद हुआ, उसकी पूर्ति न होने से कर्तव्य-अकर्तव्य-शून्य होकर शोकाकुल एव आर्तध्यान कर रही हूँ ।

तब विजय चोरसेनापति ने अपनी स्कन्दश्री भार्या का यह कथन सुन और समझ कर स्कन्दश्री भार्या को इस प्रकार कहा—हे सुभगे ! तुम इस दोहद की अपनी इच्छा के अनुकूल पूर्ति कर सकती हो, इसकी चिन्ता न करो ।

१५—तए णं सा खंदसिरिभारिया विजएण चोरसेणावइणा अब्भणुन्नाया समाणी हट्ठा तुट्ठा बहूहिं मित्त-नाइ-नियग-सयण-सबंधि-परियण-महिलाहिं जाव अन्नाहि य बहूहिं चोरमहिलाहिं सद्धि संपरिवुडा ण्हाया जाव विभूसिया विउलं असणं-४ सुरं च-५ आसाएमाणी-४ विहरइ । जिमियभुत्तुत्त-रागया पुरिसनेवत्था सन्नद्धबद्ध० जाव आहिंडमाणी दोहलं विणेइ । तए ण सा खदसिरिभारिया सपुण्णदोहला, संमाणियदोहला विणीयदोहला वोच्छिन्नदोहला संपन्नदोहला० त गब्भ सुहसुहेण परिवहइ ।

१५—तदनन्तर वह स्कन्दश्री पति के वचनो को सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुई । हर्षातिरेक से बहुत सहचारियो व चोरमहिलाओ को साथ मे लेकर स्नानादि से निवृत्त हो, अलकारो से अलकृत होकर विपुल अशन, पान, व सुरा मदिरा आदि का आस्वादन, विस्वादन करने लगी । इस तरह सबके साथ भोजन करने के पश्चात् उचित स्थान पर एकत्रित होकर पुरुषवेष को धारण कर तथा दृढ बन्धनो से बधे हुए लोहमय कसूलक आदि से युक्त कवच को शरीर पर धारण करके यावत् भ्रमण करती हुई अपने दोहद को पूर्ण करती है । तत्पश्चात् वह स्कन्दश्री दोहद के सम्पूर्ण होने, सम्मानित होने, विनीत होने, तथा सम्पन्न होने पर अपने उस गर्भ को परमसुखपूर्वक धारण करती हुई रहने लगी ।

१६—तए णं सा चोरसेणावइणी नवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं दारगं पयाया । तए णं से विजए चोरसेणावई तस्स दारगस्स महया इड्ढीसक्कारसमुदएण दसरत्तं ठिइवडियं करेइ । तए ण से विजए चोरसेणावई तस्स दारगस्स एक्कारसमे दिवसे विउल असण-४ उवक्खडावेइ, उवक्खडावित्ता मित्तनाइ० आमंतेइ, आमंतित्ता जाव तस्सेव मित्तनाइ० पुरओ एव वयासी—'जम्हा णं अम्हं इमंसि दारगंसि गब्भगयंसि समाणंसि इमे एयारूवे दोहले पाउब्भूए, तम्हा ण होउ अम्हं दारए अभग्गसेणे नामेण ।'

तए ण से अभग्गसेणे कुमारे पचधाईपरिग्गहिए जाव[1] परिवड्ढइ। तए णं से अभग्गसेणे कुमारे उम्मुक्कबालभावे यावि होत्था। अट्ठदारियाओ, जाव अट्ठओ दाओ। उप्पि पासाए भुंजमाणे विहरइ।

१६—तदन्तर उस चोर सेनापति की पत्नी स्कन्दश्री ने नौमास के परिपूर्ण होने पर पुत्र को जन्म दिया। विजय चोरसेनापति ने भी दश दिन पर्यन्त महान् वैभव के साथ स्थिति-पतित-कुलक्रमागत उत्सव मनाया। उसके बाद बालक के जन्म के ग्यारहवे दिन विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम तैयार कराया। मित्र, ज्ञाति, स्वजनो आदि को आमन्त्रित किया, जिमाया और उनके सामने इस प्रकार कहा, 'जिस समय यह बालक गर्भ मे आया था, उस समय इसकी माता को एक दोहद उत्पन्न हुआ था (उस दोहद को भग्न नही होने दिया) अत माता को जो दोहद उत्पन्न हुआ वह अभग्न रहा तथा निर्विघ्न सम्पन्न हुआ। इसलिये इस बालक का 'अभग्नसेन' यह नामकरण किया जाता है।' तदनन्तर वह अभग्नसेन बालक क्षीरधात्री आदि पाच धायमाताओ के द्वारा सभाला जाता हुआ वृद्धि को प्राप्त होने लगा। अनुक्रम से कुमार अभग्नसेन ने बाल्यावस्था को पार करके युवावस्था मे प्रवेश किया। आठ कन्याओ के साथ उसका विवाह हुआ। विवाह मे उसके माता-पिता ने आठ-आठ प्रकार की वस्तुएँ प्रीतिदान—दहेज मे दी और वह ऊँचे प्रासादो मे रहकर मनुष्य सम्बन्धी भोगो का उपभोग करने लगा।

१७—तए ण से विजए चोरसेणावई अन्नया कयाइ कालधम्मुणा संजुत्ते।

तए णं से अभग्गसेणे कुमारे पंचहिं चोरसएहिं सद्धिं सपरिवुडे रोयमाणे, कंदमाणे, विलवमाणे विजयस्स चोरसेणावइस्स महया इड्ढीसक्कारसमुदएण नीहरणं करेइ, करेत्ता, बहूइं लोइयाइं मच्चकिच्चाइं करेइ, करेत्ता केणइ कालेणं अप्पसोए जाए यावि होत्था।

१७—तत्पश्चात् किसी समय वह विजय चोरसेनापति कालधर्म (मरण) को प्राप्त हो गया।

उसकी मृत्यु पर कुमार अभग्नसेन ने पाच सौ चोरो के साथ रोते हुए, आक्रन्दन करते हुए और विलाप करते हुए अत्यन्त ठाठ के साथ एव सत्कार सम्मान के साथ विजय चोरसेनापति का नीहरण—दाहसस्कार किया। बहुत से लौकिक मृतककृत्य अर्थात् दाहसस्कार से लेकर पिता के निमित्त किए जाने वाले दान भोजनादि कार्य किए। थोडे समय के पश्चात् अभग्नसेन शोक रहित हो गया।

१८—तए णं ते चोरपंचसयाइं अन्नया कयाइ अभग्गसेण कुमारं सालाडवीए चोरपल्लीए महया महया इड्ढीसक्कारेणं चोरसेणावइत्ताए अभिसिंचति। तए णं से अभग्गसेणे कुमारे चोरसेणावई जाए अहम्मिए जाव[2] कप्पाय गिण्हइ।

१८—तदनन्तर उन पाच सौ चोरो ने बड़े महोत्सव के साथ अभग्नसेन को शालाटवी नामक चोरपल्ली मे चोर सेनापति के पद पर प्रस्थापित किया। सेनापति के पद पर नियुक्त हुआ वह

---

१ द्वि अ, सूत्र १६
२ तृ अ, सूत्र-४-५

अभग्नसेन, अधार्मिक, अधर्मनिष्ठ, अधर्मदर्शी एव अधर्म का आचरण करता हुआ यावत् राजदेय कर-महसूल को भी ग्रहण करने लगा।

१९—तए ण ते जाणवया पुरिसा अभग्गसेणेण चोरसेणावइणा बहुगामघायावणाहिं ताविया समाणा अन्नमन्नं सद्दावेंति, सद्दावेत्ता एवं वयासी—

'एव खलु, देवाणुप्पिया ! अभग्गसेणे चोरसेणावई पुरिमतालस्स नयरस्स उत्तरिल्लं जणवयं बहूहिं गामघाएहिं जाव[1] निद्धण करेमाणे विहरइ। 'त सेय खलु, देवाणुप्पिया ! पुरिमताले नयरे महब्बलस्स रण्णो एयमट्ठं विन्नवित्तए।'

तए णं ते जाणवया पुरिसा एयमट्ठ अन्नमन्नेण पडिसुणेंति, पडिसुणेत्ता महत्थं महग्घं महरिहं रायारिहं पाहुडं गिण्हंति, गिण्हित्ता जेणेव पुरिमताले नयरे तेणेव उवागया, जेणेव महाबले राया तेणेव उवागया। महाबलस्स रण्णो तं महत्थं जाव पाहुड उवणेंति, उवणेत्ता करयलपरिग्गहियं मत्थए अंजलिं कट्टु महाबलं रायं एवं वयासी—

'एवं खलु सामी ! सालाडवीए चोरपल्लीए अभग्गसेणे चोरसेणावई अम्हे बहूहिं गामघाएहि य जाव[2] निद्धणे करेमाणे विहरइ। त इच्छामो णं, सामी ! तुज्झं बाहुच्छायापरिग्गहिया निब्भया निरुवसग्गा सुहेणं परिवसित्तए' त्ति कट्टु पायवडिया पंजलिउडा महाबल राय एयमट्ठ विन्नवेंति।

१९—तदनन्तर अभग्नसेन नामक चोरसेनापति के द्वारा बहुत ग्रामो के विनाश से सन्तप्त हुए उस देश के लोगो ने एक दूसरे को बुलाकर इस प्रकार कहा—

हे देवानुप्रियो ! चोरसेनापति अभग्नसेन पुरिमताल नगर के उत्तरदिशा के बहुत से ग्रामो का विनाश करके वहाँ के लोगो को धन-धान्यादि से रहित कर रहा है। इसलिये हे देवानुप्रियो ! पुरिमताल नगर के महाबल राजा को इस बात से ससूचित करना अपने लिये श्रेयस्कर है।

तदनन्तर देश के एकत्रित सभी जनो ने परस्पर इस बात को स्वीकार कर लिया और जहाँ पर पुरिमताल नगर था एव जहाँ पर महाबल राजा था, वहाँ महार्थ, महार्घ (बहुमूल्य) महार्ह व राजा के योग्य भेट लेकर आये और दोनो हाथ जोडकर मस्तक पर दस नखो वाली अजलि करके महाराज को वह मूल्यवान् भेट अर्पण की। अर्पण करके महाबल राजा से इस प्रकार बोले—

'हे स्वामिन् ! इस प्रकार निश्चय ही शालाटवी नामक चोरपल्ली का चोरसेनापति अभग्नसेन ग्रामघात तथा नगरघात आदि करके यावत् हमे निर्धन बनाता हुआ विचरण कर रहा है। हे नाथ ! हम चाहते हैं कि आपकी भुजाओ की छाया से सरक्षित होते हुए निर्भय और उपसर्ग रहित होकर हम सुखपूर्वक निवास करे।' इस प्रकार कहकर, पैरो मे पडकर तथा दोनो हाथ जोडकर उन प्रान्तीय पुरुषो ने महाबल नरेश से इस प्रकार विज्ञप्ति की।

२०—तए णं महब्बले राया तेसिं जाणवयाणं पुरिसाणं अतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म आसुरत्ते जाव (रुट्ठे कुविए चडिक्किए मिसिमिसेमाणे तिवलिय भिउडिं निडाले साहट्टु दडं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—'गच्छह ण तुम देवाणुप्पिया ! सालाडविं चोरपल्लिं विलुपाहि, विलुपित्ता अभग्गसेणं चोरसेणावइ जीवग्गाहं गिण्हाहि, गिण्हित्ता ममं उवणेहि।'[1]

१-२ १/३ सूत्र-५

तए ण से दडे 'तह' त्ति एयमट्ठं पडिसुणेइ। तए ण से दडे बहूहिं पुरिसेहिं सन्नद्धवद्धवम्मिय-कवएहिं जाव गहियाउह-पहरणेहिं सद्धि सपरिवुडे मगइएहिं फलएहिं जाव छिप्पतूरेण वज्जमाणेणं महया जाव उक्किट्ठ जाव करेमाणे पुरिमताल नयर मज्झमज्झेण निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव सालाडवी चोरपल्ली तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

२०—महाबल नरेश उन जनपदवासियो के पास से उक्त वृत्तान्त को सुनकर रुष्ट, कुपित और क्रोध से तमतमा उठे। उसके अनुरूप क्रोध से दात पीसते हुए भोहे चढाकर अर्थात् क्रोध की साक्षात् प्रतिमा बनकर कोतवाल को बुलाते है और बुलाकर कहते है—देवानुप्रिय ! तुम जाओ और शालाटवी नामक चोरपल्ली को लूट लो—नष्ट-भ्रष्ट कर दो और उसके चोरसेनापति अभग्नसेन को जीवित पकडकर मेरे सामने उपस्थित करो !

महाबल राजा की इस आज्ञा को दण्डनायक विनयपूर्वक स्वीकार करता हुआ, दृढ बधनो से बधे हुए लोहमय कुसूलक आदि से युक्त कवच को धारण कर आयुधो और प्रहरणो मे लैस अनेक पुरुषो को साथ मे लेकर, हाथो मे फलक-ढाल बाधे हुए यावत् क्षिप्रतूर्य के बजाने मे महान् उत्कृष्ट महाध्वनि एव सिंहनाद आदि के द्वारा समुद्र की सी गर्जना करते हुए, आकाश को विदीर्ण करते हुए पुरिमताल नगर के मध्य से निकल कर शालाटवी चोरपल्ली की ओर जाने का निश्चय करता है।

२१—तए ण तस्स अभग्गसेणस्स चोरसेणावइस्स चारपुरिसा इमीसे कहाए लद्धट्ठा समाणा जेणेव सालाडवी चोरपल्ली, जेणेव अभग्गसेणे चोरसेणावई, तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता करयल जाव परिग्गहिय मत्थए अजलि कट्टु एव वयासी—'एव खलु देवाणुप्पिया ! पुरिमताले नयरे महाबलेण रण्णा महाभडचडगरेण दण्डे आणत्ते—'गच्छह ण तुब्भे, देवाणुप्पिया ! सालाडविं चोरपल्लिं विलुंपाहि, अभग्गसेण चोरसेणावइ जीवग्गाह गेण्हाहि, गेण्हित्ता मम उवणेहि।' तए णं से दडे महया भडचडगरेण जेणेव सालाडवी चोरपल्ली तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

२१—तदनन्तर अभग्नसेन चोरसेनापति के गुप्तचरो को इस वृत्तान्त का पता लगा। वे सालाटवी चोरपल्ली मे, जहा अभग्नसेन चोरसेनापति था, आये और दोनो हाथ जोडकर और मस्तक पर दस नखो वाली अजलि करके अभग्नसेन से इस प्रकार बोले—हे देवानुप्रिय ! पुरिमताल-नगर मे महाबल राजा ने महान् सुभटो के समुदायो के साथ दण्डनायक-कोतवाल को बुलाकर आज्ञा दी है कि—'तुम लोग शीघ्र जाओ, जाकर सालाटवी चोरपल्ली को नष्ट-भ्रष्ट कर दो—लूट लो और उसके सेनापति अभग्नसेन को जीवित पकड लो और पकडकर मेरे सामने उपस्थित करो।' राजा की आज्ञा को शिरोधार्य करके कोतवाल योद्धाओ के समूह के साथ सालाटवी चोरपल्ली मे आने के लिये रवाना हो चुका है।

२२—तए ण से अभग्गसेणे चोरसेणावई तेसिं चारपुरिसाणं अतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म पचचोरसयाइ सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एव वयासी—'एव खलु देवाणुप्पिया ! पुरिमताले नयरे महाबले जाव तेणेव पहारेत्थ गमणाए। त सेय खलु देवाणुप्पिया ! अम्हं त दड सालाडविं चोरपल्लिं असपत्ते अतरा चेव पडिसेहित्तए।'

तए ण ताइं पंचचोरसयाइ अभग्गसेणस्स चोरसेणावइस्स 'तह' त्ति जाव पडिसुणेंति।

२२—तदनन्तर उस अभग्नसेन सेनापति ने अपने गुप्तचरों की बातो को सुनकर तथा विचारकर अपने पाच सौ चोरो को बुलाकर इस प्रकार कहा—देवानुप्रियो ! पुरिमताल नगर के महाबल राजा ने आज्ञा दी है कि यावत् दण्डनायक ने चोरपल्ली पर आक्रमण करने का तथा मुझे जीवित पकडने को यहाँ आने का निश्चय कर लिया है, अत उस दण्डनायक को सालाटवी चोरपल्ली पहुँचने से पहिले ही मार्ग मे रोक देना हमारे लिये योग्य है ।

अभग्नसेन सेनापति के इस परामर्श को 'तथेति' (बहुत ठीक, ऐसा ही होना चाहिए) ऐसा कहकर पाच सौ चोरो ने स्वीकार किया ।

२३—तए ण से अभग्गसेणे चोरसेणावई विउलं असण पाण खाइमं साइम उवक्खडावेइ, उवक्खडावेत्ता पर्चाहि चोरसएहि सद्धि ण्हाए जाव पायच्छित्ते भोयणमडवसि त विउलं असणं पाणं खाइमं साइमं सुरं च ५ आसाएमाणे ४ विहरइ । जिमियभुत्तुत्तारागए वि य णं समाणे आयते चोक्खे परमसूइभए पर्चाहि चोरसएहि सद्धि अल्ल चम्म दुरुहइ, दुरुहित्ता सन्नद्धबद्ध जाव पहरणेहि मगइएहि जाव रवेण पुव्वावरण्हकालसमयसि सालाडवीओ चोरपल्लीओ णिग्गच्छइ, णिग्गच्छित्ता विसम-दुग्गगहणं ठिए गहियभत्तपाणे त दडं पडिवालेमाणे चिट्ठइ ।

२३—तदनन्तर अभग्नसेन चोर सेनापति ने अशन, पान, खादिम और स्वादिम—अनेक प्रकार की स्वादिष्ट भोजनसामग्री तैयार कराई तथा पाच सौ चोरो के साथ स्नानादि क्रिया कर दु.स्वप्नादि के फलो को निष्फल करने के लिये मस्तक पर तिलक तथा अन्य माङ्गलिक कृत्य करके भोजनशाला मे उस विपुल अशनादि वस्तुओ तथा पाच प्रकार की मदिराओ का यथारुचि आस्वादन, विस्वादन आदि किया ।

भोजन के पश्चात् योग्य स्थान पर आचमन किया, मुख के लेपादि को दूर कर परम शुद्ध होकर पाच सौ चोरो के साथ आर्द्र चर्म पर आरोहण किया । तदनन्तर दृढबन्धनो से बधे हुए, लोहमय कसूलक आदि से युक्त कवच को धारण करके यावत् आयुधो और प्रहरणो से सुसज्जित होकर हाथो मे ढाले बाधकर यावत् महान् उत्कृष्ट, सिंहनाद आदि शब्दो के द्वारा समुद्र के समान गर्जन करते हुए एव आकाशमण्डल को शब्दायमान करते हुए अभग्नसेन ने सालाटवी चोरपल्ली से मध्याह्न के समय प्रस्थान किया । खाद्य पदार्थों को साथ लेकर विषम और दुर्ग-गहन वन मे ठहरकर वह दण्डनायक की प्रतीक्षा करने लगा ।

विवेचन—आर्द्र चर्म पर आरोहण करने का क्या प्रयोजन है ? ऐसा प्रश्न उठने पर इसके समाधान के सम्बन्ध मे तीन मान्यताएँ हैं—

आचार्य श्री अभयदेव सूरि के मन्तव्यानुसार—'आर्द्र चर्मारोहति मागल्यार्थमिति' आर्द्र चर्म का आरोहण करना चोरो का अपना मागलिक अनुष्ठान था । कारण 'विघ्नध्वसकामो मगलमाचरेत्' इस उक्ति के अनुसार अभग्नसेन और उसके साथियो ने दण्डनायक के बल को मार्ग मे रोकने मे आ सकने वाले सभावित विघ्नो के विनाश की कामना से प्रस्थान से पूर्व यह मगल-अनुष्ठान किया ।

दूसरी मान्यता परम्परा का अनुसरण करने वाली है । तदनुसार आर्द्र चर्म पर आरोहित होने का परमार्थ यह है कि अनुकूल-प्रतिकूल कैसी भी परिस्थिति मे पाव पीछे नही हटेगा । 'कार्यं वा साधयेय, देहं वा पातयेयम्' अर्थात् हर प्रयत्न से कार्य को सिद्ध करके ही विराम लू गा, अन्यथा

देह का उत्सर्ग कर दूगा । इस प्रतिज्ञा से ग्रावद्ध होने का दृढतम सकल्प आर्द्र चर्म पर आरोहित होने से प्रतीत होता है ।

तीसरी मान्यता यह है कि जिस तरह आर्द्र चर्म फैलता है, वृद्धि को प्राप्त होता है, उसी प्रकार इस पर आरोहण करने वाला भी धन-जनादि परम समृद्धि के वृद्धि रूप प्रसार को उपलब्ध करता है । इसी महत्वाकाक्षा रूप भावना को सन्मुख रखते हुए अभग्नसेन और उसके पांच सौ साथियो ने आर्द्र चर्म पर आरोहण किया ।

२४—तए णं से दंडे जेणेव अभग्गसेणे चोरसेणावई तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अभग्गसेणेण चोरसेणावइणा सद्धि संपलग्गे यावि होत्था । तए ण अभग्गसेणे चोरसेणावई त दण्ड खिप्पामेव हयमहिय जाव (पवरवीर-घाइय विवडियचिंध-धय-पडाग दिसोदिसिं) पडिसेहेइ ।

२४—उसके बाद वह कोतवाल जहाँ अभग्नसेन चोरसेनापति था, वहाँ पर आता है, और आकर अभग्नसेन चोरसेनापति के साथ युद्ध मे सप्रवृत्त हो जाता है । तदनन्तर, अभग्नसेन चोर सेनापति ने उस दण्डनायक को शीघ्र ही हतमथित कर दिया अर्थात् उस कोतवाल की सेना का हनन किया, वीरो का घात किया, ध्वजा पताका को नष्ट कर दिया, दण्डनायक का भी मानमर्दन कर उसे और उसके साथियो को इधर उधर भगा दिया ।

२५—तए णं से दण्डे अभग्गसेणेण चोरसेणावइणा हय० जाव पडिसेहिए समाणे अथामे अबले अवीरिए अपुरिसक्कारपरक्कमे अधारणिज्जमिति कट्टु जेणेव पुरिमताले नयरे, जेणेव महाबले राया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयल-जाव एव वयासी—'एव खलु, सामी ! अभग्गसेणे चोरसेणावई विसमदुग्गगहण ठिए गहियभत्तपाणिए । नो खलु से सक्का केणइ सुबहुएणावि आसवलेण वा हत्थिबलेण वा रहबलेण वा चाउरगेण वि उर उरेण गिण्हित्तए ।'

ताहे सामेण य भेएण य उवप्पयाणेण यविस्सभमाणेउ पयत्ते यावि होत्था । जे वि से अब्भिंतरगा सीसगभमा, मित्त-नाइ-नियग-सयण-सबधि-परियण च विउलेण, धण-कणग-रयण-सतसार-सावएज्जेण भिन्दइ, अभग्गसेणस्स य चोरसेणावइस्स अभिक्खण अभिक्खण महत्थाइ महग्घाइ महरिहाइ पाहुडाइ पेसेइ, अभग्गसेण चोरसेणावइ वीसंभमाणेइ ।

२५—तदनन्तर अभग्नसेन चोरसेनापति के द्वारा हत-मथित यावत् प्रतिषेधित होने से तेजोहीन, बलहीन, वीर्यहीन तथा पुरुषार्थ और पराक्रम से हीन हुआ वह दण्डनायक शत्रुसेना को परास्त करना अशक्य जानकर पुन पुरिमतालनगर मे महाबल नरेश के पास आकर दोनो हाथ जोडकर मस्तक पर दसो नखो की अञ्जलि कर इस प्रकार कहने लगा—

प्रभो ! चोरसेनापति अभग्नसेन ऊँचे, नीचे और दुर्ग-गहन वन मे पर्याप्त खाद्य तथा पेय सामग्री के साथ अवस्थित है । अत बहुत अश्वबल, गजबल, योद्धाबल और रथबल, कहाँ तक कहूँ—चतुरङ्गिणी सेना के साक्षात् बल से भी वह जीते जी पकडा नही जा सकता है ।

दण्डनायक के ऐसा कहने पर महाबल राजा सामनीति भेदनीति व उपप्रदान नीति—दान नीति से उसे विश्वास मे लाने के लिये प्रवृत्त हुआ । तदर्थं वह उसके (चोरसेनापति के) शिष्यभ्रम-शिष्य

तुल्य, अतरग-समीप मे रहने वाले पुरुषो को अथवा जिन अगरक्षको को वह शिर अथवा शिर के कवच तुल्य मानता था उनको तथा मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन सम्बन्धी और परिजनो को धन, स्वर्ण रत्न और उत्तम सारभूत द्रव्यो के द्वारा तथा रुपयो पैसो का लोभ देकर उससे (चोरसेनापति से) जुदा करने का प्रयत्न करता है और अभग्नसेन चोरसेनापति को भी वार वार महाप्रयोजन वाली, सविशेप मूल्य वाली, वडे पुरुष को देने योग्य यहाँ तक कि राजा के योग्य भेट भेजने लगा। इस तरह भेट भेजकर अभग्नसेन चोरसेनापति को विश्वास मे ले आता है।

विवेचन—'सीसगभमा' के दो सस्कृत प्रतिरूप होते है। एक 'शिष्यकभ्रमा' और दूसरा 'शीर्षकभ्रमा'। इन दोनो प्रतिरूपो को लक्ष्य मे रखकर इसके तीन अर्थ सम्भावित है—

१—शिष्य अर्थ को सूचित करने वाला—दूसरा शब्द शिष्यक है, जिसमे शिष्यत्व की भ्रान्ति हो उसे शिष्यकभ्रम कहा जाता है अर्थात् जो विनीत होने के कारण शिष्य तुल्य है।

२—शिर रक्षक होने के कारण जिन्हे शिर अथवा शिर के कवच के समान माना जाता है अर्थात् जो शिर के कवच की भाति शिर की रक्षा करते है।

३—शरीर रक्षक होने के नाते जिनको शरीर तुल्य समझा जाता है, वे भी शीर्पकभ्रम कहे जाते हैं।

२६—तए णं से महावले राया अन्नया कयाइ पुरिमताले नयरे एगं महं महइमहालयं कूडागारसालं करेइ—अणेग-खभसयसन्निविट्ठं पासाईय दरिसणिज्जं। तए ण से महाबले राया अन्नया कयाइ पुरिमताले नयरे उस्सुक्कं जाव उक्कर अभडप्पवेस अदडिमकुदडिमं अधरिमं अधारणिज्जं अणुद्धयमुइंगं अमिलायमल्लदाम गणियावरनाडइज्जकलिय अणेगतालायराणुचरिय पमुइयपक्की-लाभिरामं जहारिहं) दसरत्त पमोयं घोसावेइ, घोसावेत्ता कोडुंवियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—'गच्छह णं तुब्भे, देवाणुप्पिया! सालाडवीए चोरपल्लीए। तत्थ णं तुब्भे अभग्गसेण चोरसेणावइं करयल जाव एवं वयह—

२६—तदनन्तर किसी अन्य समय महावल राजा ने पुरिमताल नगर मे महती—प्रशस्त, सुन्दर व अत्यन्त विशाल, मन मे हर्प उत्पन्न करने वाली, दर्शनीय, जिसे देखने पर भी आखे न थकें ऐसी सैकडो स्तम्भो वाली कूटाकारशाला वनवायी। उसके वाद महावल नरेश ने किसी समय उस पड्यन्त्र के लिए वनवाई कूटाकारशाला के निमित्त उच्छुल्क—(जिसमे राजदेयभाग-महसूल माफ कर दिया हो) यावत् दश दिन के प्रमोद उत्सव की उद्घोषणा कराई। कौटुम्विक पुरुषो को बुलाकर कहा कि—हे भद्रपुरुपो! तुम शालाटवी चोरपल्ली मे जाओ और वहाँ अभग्नसेन चोरसेनापति से दोनो हाथ जोडकर मस्तक पर दस नखो वाली अञ्जलि करके, इस प्रकार निवेदन करो—

विवेचन—कूट पर्वत के शिखर का नाम है। कूट के समान जिसका आकार हो उसे कूटाकार-शाला कहते हैं, अर्थात् जिस भवन का आकार पर्वत की चोटी के समान हो।

१—उच्छुल्क—जिस उत्सव मे राजकीय कर-महसूल न लिया जाता हो।

२—उत्कर—जिसमे दुकान के लिये ली गयी जमीन का भाडा अथवा क्रय-विक्रय के लिये लाये गये गाय आदि पशुओ का कर न लिया जाय।

३—अभटप्रवेश—जिस उत्सव मे किसी राजपुरुष के द्वारा किसी घर की तलाशी नही ली जा सकती।

४—अदण्डिम-कुदण्डिम—न्यायानुसार दी जाने वाली सजा दण्ड कही जाती है, और न्यूनाधिक सजा को कुदण्ड कहते हैं, उस दण्ड कुदण्ड से उत्पन्न द्रव्य का जिस उत्सव मे अभाव हो।

५—अधरिम—जिस उत्सव मे किसी को कोई अपने ऋण के कारण पीडित नही कर सकता।

६—अधारणीय—जिस उत्सव मे दुकान आदि लगाने के लिये राजा की ओर मे वापिस नही लौटाई जाने वाली आर्थिक सहायता दी जाय।

७—अनुद्धृत मृदग—जिसमे मृदग बजाने वालो ने बजाने के लिये मृदग ग्रहण किये हो, तबलो को बजाने के लिये ठीक ढग से ऊँचा कर लिया हो।

८—अम्लान माल्यदाम—जिसमे खिले हुए पुष्प एव पुष्पमालाओ की सुव्यवस्था हो।

९—गणिका नाटकीय कलित—जो उत्सव प्रधान वेश्या और अच्छे नाटक करने वाले नटो से युक्त हो।

१०—अनेक तालाचरानुचरित—जिस उत्सव मे ताल बनाकर नाचने वाले अपना कौशल दिखाते हो।

११—प्रमुदित प्रक्रीडिताभिराम—जो उत्सव तमाशा दिखाने वालो तथा खेल दिखाने वालो से मनोहर हो।

१२—यथार्ह—जो उत्सव सर्वप्रकार से योग्य-आदर्श व व्यवस्थित हो, तात्पर्य यह कि वह उत्सव अपनी उपमा आप ही हो।

२७—एव खलु देवाणुप्पिया ! पुरिमताले नयरे महाबलस्स रन्नो उस्सुक्के जाव दसरत्ते पमोए उग्घोसिए। त किं णं, देवाणुप्पिया ! विउल असणं पाण खाइम साइमं पुप्फवत्थमल्लालकारे य इह हव्वमाणिज्जउ उदाहु सयमेव गच्छित्था ?

२७—(कौटुम्बिक पुरुषो ने चोरसेनापति से कहा—) हे देवानुप्रिय ! पुरिमताल नगर मे महाबल नरेश ने उच्छुल्क यावत् दशदिन पर्यन्त प्रमोद-उत्सव की घोषणा कराई है, तो क्या आपके लिए विपुल अशन पान, खादिम और स्वादिम तथा पुष्प वस्त्र माला अलङ्कार यही पर लाकर उपस्थित किए जायँ अथवा आप स्वय वहाँ इस प्रसग पर उपस्थित होगे ?

२८—तए ण ते कोडुम्बियपुरिसा महाबलस्स रण्णो करयल० जाव 'एव सामि त्ति' आणाए वयणं पडिसुणेन्ति पडिसुणेत्ता, पुरिमतालाओ नयराओ पडिणिक्खमंति पडिनिक्खमित्ता नाइविकिट्ठेहिं अद्धाणेहिं सुहेहिं वसहिपायरासेहिं जेणेव सालाडवी चोरपल्ली तेणेव उवागच्छन्ति, उवागच्छित्ता अभग्गसेणं चोरसेणावइं करयल जाव एवं वयासी—'एव खलु देवाणुप्पिया ! पुरिमताले नयरे महाबलस्स रण्णो उस्सुक्के जाव उदाहु सयमेव गच्छित्था ?'

तए ण से अभग्गसेणे चोरसेणावई ते कोडुंबियपुरिसे एव वयासी—'अहं ण देवाणुप्पिया ! पुरिमतालनयर सयमेव गच्छामि।' ते कोडुंबियपुरिसे सक्कारेइ सम्माणेइ पडिविसज्जेइ !

२८—तदनन्तर वे कौटुम्बिक पुरुष महावल नरेश की इस आज्ञा को दोनो हाथ जोडकर यावत् अञ्जलि करके 'जी हाँ स्वामी' कहकर विनयपूर्वक सुनते हैं और सुनकर पुरिमताल नगर से निकलते हैं। छोटी-छोटी यात्राएँ करते हुए, तथा सुखजनक विश्राम-स्थानो पर प्रात कालीन भोजन आदि करते हुए जहाँ शालाटवी नामक चोर-पल्ली थी वहाँ पहुचे। वहाँ पर अभग्नसेन चोरसेनापति से दोनो हाथ जोडकर मस्तक पर दस नखो वाली अजुलि करके इस प्रकार निवेदन करने लगे—

देवानुप्रिय! पुरिमताल नगर मे महावल नरेश ने उच्छुल्य यावत् दस दिनो का प्रमोद उत्सव उद्घोपित किया है, तो क्या आपके लिये अशन, पान, खादिम, स्वादिम, पुष्पमाला अलकार यहाँ पर ही उपस्थित किये जाएँ अथवा आप स्वय वहाँ पधारते हैं? तव अभग्नसेन सेनापति ने उन कौटुम्बिक पुरुषो को उत्तर मे इस प्रकार कहा—'हे भद्र पुरुषो! मैं स्वय ही प्रमोद-उत्सव मे पुरिमताल नगर मे आऊँगा।' तत्पश्चात् अभग्नसेन ने उनका उचित सत्कार-सम्मान करके उन्हे विदा किया।

२९—तए णं से अभग्गसणे चोरसेणावई बहूहिं मित्त जाव परिवुडे ण्हाए जाव पायच्छित्ते सव्वालकारविभूसिए सालाडवीओ चोरपल्लीओ पडिनिक्खमइ। पडिनिक्खमित्ता जेणेव पुरिमताले नयरे, जेणेव महावले राया, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता, करयल० महावलं रायं जएण विजएणं वद्धावेइ, वद्धावेत्ता महत्थं जाव पाहुडं उवणेइ। तए णं से महावले राया, अभग्गसेणस्स चोरसेणा-वइस्स तं महत्थ जाव पडिच्छइ, अभग्गसेणं चोरसेणावइं सक्कारेइ, सम्माणेइ, पडिविसज्जेइ, कूडागारसालं च से आवसहं दलयइ। तए णं से अभग्गसेणे चोरसेणावई महाबलेणं रण्णा विसज्जिए समाणे जेणेव कूडागारसाला तेणेव उवागच्छइ।

२९—तदनन्तर मित्र, ज्ञाति व स्वजन-परिजनो से घिरा हुआ वह अभग्नसेन चोरसेनापति स्नानादि से निवृत्त हो यावत् अशुभ स्वप्न का फल विनष्ट करने के लिये प्रायश्चित्त के रूप मे मस्तक पर तिलक आदि माङ्गलिक अनुष्ठान करके समस्त आभूषणो से अलकृत हो शालाटवी चोरपल्ली से निकलकर जहाँ पुरिमताल नगर था और जहाँ महावल नरेश थे, वहाँ पर आता है। आकर दोनो हाथ जोडकर मस्तक पर दश नखो वाली अञ्जलि करके महावल राजा को 'जय-विजय शब्द से वधाई देता है। वधाई देकर महार्थ यावत् राजा के योग्य प्राभृत-भेट अर्पण करता है। तदनन्तर महावल राजा उस अभग्नसेन चोरसेनापति द्वारा अर्पित किए गए उपहार को स्वीकार करके उसे सत्कार-सम्मानपूर्वक-अपने पास से विदा करता हुआ कूटाकारशाला मे उसे रहने के लिये स्थान देता है। तदनन्तर अभग्नसेन चोरसेनापति महावल राजा के द्वारा सत्कारपूर्वक विर्सजित होकर कूटाकारशाला मे आता है और वहाँ पर ठहरता है।

३०—तए णं से महावले राया कोडुंवियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एव वयासी—'गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया! विउल असणं पाणं खाइम साइमं उवक्खडावेह, उवक्खडावेत्ता त विउलं असण-४, सुर च-५, सुवहुं पुप्फवत्थ-गध-मल्लालकार च अभग्गसेणस्स चोरसेणावइस्स कूडगारसाल उवणेह।

तए णं से कोडुंवियपुरिसा करयल जाव उवणेंति।

तए णं से अभग्गसेणे चोरसेणावई बहूहिं मित्तनाइ० सद्धिं संपरिवुडे ण्हाए जाव सव्वालंकार-विभूसिए तं विउलं असणं-४ सुरं च ५, आसाएमाणे पमत्ते विहरइ।

३०—इसके बाद महाबल राजा ने कौटुम्बिक पुरुषो को बुलाकर कहा—तुम लोग विपुल अशन, पान, खादिम, स्वादिम पुष्प, वस्त्र, गधमाला अलकार एव सुरा आदि मदिराओ को तैयार कराओ और उन्हे कूटाकार-शाला मे चोरसेनापति अभग्नसेन की सेवा मे पहुचा दो।

कौटुम्बिक पुरुषो ने हाथ जोडकर यावत् अञ्जलि करके राजा की आज्ञा स्वीकार की और तदनुसार विपुल अशनादिक सामग्री वहाँ पहुँचा दी।

तदनन्तर अभग्नसेन चोरसेनापति स्नानादि से निवृत्त हो, समस्त आभूषणो को पहिनकर अपने बहुत से मित्रो व ज्ञाति जनो आदि के साथ उस विपुल अशनादिक तथा पचविध मदिराओ का सम्यक् आस्वादन विस्वादन करता हुआ प्रमत्त-बेखबर होकर विहरण करने लगा।

३१—तए ण से महाबले राया कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एव वयासी—'गच्छह ण तुब्भे, देवाणुप्पिया! पुरिमतालस्स नयरस्स दुवाराइ पिहेह, अभग्गसेणं चोरसेणावइं जीवग्गाहं गिण्हह, गिण्हित्ता मम उवणेह।'

तए णं ते कोडुंबियपुरिसा करयल जाव पडिसुर्णेति, पडिसुणेत्ता पुरिमतालस्स नयरस्स दुवाराइ पिहेंति, अभग्गसेणं चोरसेणावइ जीवग्गाह गिण्हंति, महाबलस्स रण्णो उवणेंति। तए णं से महाबले राया अभग्गसेणं चोरसेणावइ एएण विहाणेण वज्झं आणवेइ।

एवं खलु गोयमा! अभग्गसेणे चोरसेणावई पुरापोराणाणं जाव विहरइ।

३१—(अभग्नसेन चोरसेनापति को सत्कारपूर्वक कूटाकारशाला मे ठहराने और भोजन कराने तथा मदिरा पिलाने के पश्चात्) महाबल राजा ने कौटुम्बिक पुरुषो को बुलाकर इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रियो! तुम लोग जाओ और जाकर पुरिमताल नगर के दरवाजो को बन्द कर दो और अभग्नसेन चोरसेनापति को जीवित स्थिति मे ही पकड लो और पकडकर मेरे सामने उपस्थित करो।'

तदनन्तर कौटुम्बिक पुरुषो ने राजा की यह आज्ञा हाथ जोड़कर यावत् दश नखो वाली अञ्जलि करके शिरोधार्य की और पुरिमतालनगर के द्वारो को बन्द करके चोरसेनापति अभग्नसेन को जीवित पकड कर महाबल नरेश के समक्ष उपस्थित किया। तत्पश्चात् महाबल नरेश ने अभग्नसेन चोरसेनापति को इस विधि से (जैसा तुम देखकर आए हो) वध करने की आज्ञा प्रदान कर दी।

श्रमण भगवान् महावीर कहते हैं—हे गौतम! इस प्रकार निश्चित रूप से वह चोरसेनापति अभग्नसेन पूर्वोपार्जित पापकर्मो के नरक तुल्य विपाकोदय के रूप मे घोर वेदना का अनुभव कर रहा है।

अभग्नसेन का भविष्य

३२—अभग्गसेणे णं भन्ते! चोरसेणावई कालमासे काल किच्चा कहिं गच्छिहिइ? कहिं उववज्जिहिइ?

'गोयमा! अभग्गसेणे चोरसेणावई सत्ततीस वासाइं परमाउ पालइत्ता अज्जेव तिभागावसेसे

दिवसे सूलभिन्ने कए समाणे कालमासे कालं किच्चा इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए उक्कोस साग-रोवमट्ठिइएसु नेरइएसु नेरइयत्ताए उववज्जिहिइ।'

से ण तओ अणतरं उव्वट्टित्ता, एवं संसारो जहा पढमे जाव वाउ-तेउ-आउ-पुढवीसु अणेगसय-सहस्सखुत्तो उद्दाइत्ता उद्दाइत्ता तत्थेव भुज्जो भुज्जो पच्चायाइस्सइ !

तओ उव्वट्टित्ता वाणारसीए नयरीए सूयरत्ताए पच्चायाहिइ । से णं तत्थ सूयरिएहिं जीवियाओ ववरोविए समाणे तत्थेव वाणारसीए नयरीए सेट्ठिकुलंसि पुत्तत्ताए पच्चायाहिइ। से ण तत्थ उम्मुक्कबालभावे—'एव जहा पढमे, जाव अंत काहिइ।'

३२—गौतम स्वामी ने प्रश्न किया—अहो भगवन् ! वह अभग्नसेन चोरसेनापति कालावसर मे काल करके कहाँ जाएगा ? तथा कहाँ उत्पन्न होगा ?

भगवान् ने उत्तर दिया—हे गौतम ! अभग्नसेन चोरसेनापति ३७ वर्ष की परम आयुष्य को भोगकर आज ही त्रिभागावशेष (जिसका तीसरा भाग बाकी हो, ऐसे) दिन मे सूली पर चढाये जाने से काल करके (मृत्यु को प्राप्त होकर) रत्नप्रभानामक प्रथम नरक मे नारकी रूप से, जिसकी उत्कृष्ट स्थिति एक सागरोपम की है, उत्पन्न होगा। फिर प्रथम नरक से निकलकर प्रथम अध्ययन मे प्रतिपादित मृगापुत्र के ससारभ्रमण की तरह इसका भी परिभ्रमण होगा, यावत् पृथ्वीकाय, अप्काय, वायु काय तेजस्काय आदि मे लाखो वार उत्पन्न होगा।

वहाँ से निकलकर वनारस नगरी मे शूकर के रूप मे उत्पन्न होगा। वहाँ शूकर के शिकारियो द्वारा उसका घात किया जाएगा। तत्पश्चात् उसी वनारस नगरी के श्रेष्ठिकुल मे पुत्र रूप से उत्पन्न होगा। वहाँ बालभाव को पार करके युवावस्था को प्राप्त होता हुआ, प्रव्रजित होकर, सयमपालन करके यावत् निर्वाण पद प्राप्त करेगा—जन्म-मरण का अन्त करेगा।

निक्षेप—उपसहार पूर्ववत् समझ लेना चाहिये।

॥ तृतीय अध्ययन समाप्त ॥

चतुर्थ अध्ययन

शकट

जम्बूस्वामी की जिज्ञासा

१—उक्खेवो—जइ ण भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं दुहविवागाणं तच्चस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, चउत्थस्स णं भंते ! अज्झयणस्स समणेण भगवया महावीरेण के अट्ठे पण्णत्ते ? तओ णं सुहम्मे अणगारे जबू-अणगारं एवं वयासी—

१—जम्बूस्वामी ने प्रश्न किया—भन्ते ! यदि श्रमण भगवान् महावीर ने, जो यावत् निर्वाण-प्राप्त हैं, यदि तीसरे अध्ययन का यह (पूर्वोक्त) अर्थ कहा तो भगवान् ने चौथे अध्ययन का क्या अर्थ कहा है ? तब सुधर्मा स्वामी ने जम्बू अनगार से इस प्रकार कहा—

सुधर्मा स्वामी का समाधान

२—एव खलु जबू ! तेणं कालेण तेण समएणं साहंजणी णामं नयरी होत्था । रिद्धत्थिमिय-समिद्धा । तीसे ण साहंजणीए बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए देवरमणे णाम उज्जाणे होत्या । तत्थ णं अमोहस्स जक्खस्स जक्खाययणे होत्था, पोराणे । तत्थ णं साहंजणीए नयरीए महचदे णामं राया होत्था, महयाहिमवंतमहंतमलयम दरसारे । तस्स णं महचंदस्स रण्णो सुसेणे णाम अमच्चे होत्था । साम-भेय-दंड-उपप्पयाणनीतिसुपउत्तनयविहण्णू निग्गह-कुसले ।

तत्थ णं साहजणीए नयरीए सुदरसिणा णामं गणिया होत्था । वण्णओ ।[1]

२—हे जम्बू ! उस काल उस समय मे साहजनी नाम की एक ऋद्ध-भवनादि की सम्पत्ति से सम्पन्न, स्तिमित—स्वचक्र-परचक्र के भय से रहित तथा समृद्ध—धन-धान्यादि से परिपूर्ण नगरी थी । उसके बाहर ईशानकोण मे देवरमण नाम का एक उद्यान था । उस उद्यान मे अमोघनामक यक्ष का एक पुरातन यक्षायतन था । उस नगरी मे महचन्द्र नाम का राजा राज्य करता था । वह हिमालय के समान दूसरे राजाओ से महान् था । उस महचन्द्र नरेश का सुषेण नाम का मन्त्री था, जो सामनीति, भेदनीति दण्डनीति और उपप्रदाननीति के प्रयोग को और न्याय नीतियो की विधि को जानने वाला तथा निग्रह मे कुशल था ।

उस नगर मे सुदर्शना नाम की एक सुप्रसिद्ध गणिका-वेश्या रहती थी । उसका वर्णन (द्वितीय अध्याय मे वर्णित कामध्वजा वेश्या के समान) जान लेना चाहिये ।

३—तत्थ णं साहंजणीए नयरीए सुभद्दे णामं सत्थवाहे परिवसइ । अड्ढे । तस्स णं सुभद्दस्स सत्थवाहस्स भद्दा णामं भारिया होत्था, अहीणपडिपुण्णपंचिंदियसरीरा । तस्स णं सुभद्दसत्थवाहस्स पुत्ते भद्दाए भारियाए अत्तए सगडे णामं दारए होत्था, अहीणपडिपुण्णपंचिंदियसरीरे ।

---

१ देखिए द्वि अ , सूत्र-३

३—उस नगरी मे सुभद्र नाम का एक सार्थवाह रहता था। उस सुभद्र सार्थवाह की अन्यून—निर्दोष सर्वाङ्गसुन्दर शरीर वाली भद्रा नामक भार्या थी। सुभद्र सार्थवाह का पुत्र व भद्रा भार्या का आत्मज शकट नाम का वालक था। वह भी अन्यून—पचेन्द्रियो से परिपूर्ण—सुन्दर शरीर से सम्पन्न था।

४—तेणं कालेणं तेणं समएण समणे भगव महावीरे समोसढे। परिसा राया य निग्गए। धम्मो कहिओ। परिसा पडिगया, राया वि णिग्गओ।

४—उस काल, उस समय साहजनी नगरी के वाहर देवरमण उद्यान मे श्रमण भगवान् महावीर पधारे। नगर से भगवान् के दर्शनार्थ जनता और राजा निकले। भगवान् ने धर्मदेशना दी। धर्मदेशना श्रवण कर राजा और प्रजा सव पुन अपने अपने स्थान पर चले गये।

शकट के पूर्वभव का वृत्तान्त

५—तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्म भगवओ महावीरस्स जेट्ठे अन्तेवासी जाव[1] रायमग्ग-मोगाढे। तत्थ णं हत्थी, आसे वहवे पुरिसे पासइ। तेसिं च पुरिसाणं मज्झगए पासइ एग सइत्थीय पुरिसं अवओडयवधण उक्खित्तकण्णनासं जाव घोसिज्जमाणं। चिंता तहेव जाव भगव वागरेइ।

५—उस काल तथा उस समय मे श्रमण भगवान् महावीर के ज्येष्ठ अन्तेवासी श्री गौतम स्वामी (पूर्ववत् भिक्षा ग्रहण करके) यावत् राजमार्ग मे पधारे। वहाँ उन्होने हाथी, घोडे और बहुतेरे पुरुषो को देखा। उन पुरुषो के मध्य मे अवकोटकवन्धन (जिस वन्धन मे दोनो हाथो को मोडकर पृष्ठ भाग पर रज्जु के साथ वाँधा जाय, उस वन्धन) से युक्त, कटे कान और नाक वाले यावत् उद्घोपणा सहित एक सस्त्रीक (स्त्री सहित) पुरुष को देखा। देखकर गौतम स्वामी ने पूर्ववत् विचार किया (यह पुरुष नारकीय वेदना भुगत रहा है, आदि) और भगवान् से आकर प्रश्न किया। भगवान् ने उत्तर मे इस प्रकार कहा—

६—एवं खलु गोयमा! तेण कालेणं तेणं समएणं इहेव जम्बुद्दीवे दीवे भारहे वासे छगलपुरे नाम नयरे होत्था। तत्थ सीहगिरी नामं राया होत्था, महया हिमवतमहतमलयमदरसारे। तत्थ ण छगलपुरे नयरे छण्णिए नाम छागलिए परिवसइ। अड्ढे, अहम्मिए जाव दुप्पडियाणदे।

६—हे गौतम! उस काल तथा उस समय मे इसी जम्वूद्वीपनामक द्वीप के अन्तर्गत भारतवर्ष मे छगलपुर नाम का एक नगर था। वहाँ सिंहगिरि नामक राजा राज्य करता था। वह हिमालयादि पर्वतो के समान महान् था। उस नगर मे छण्णिक नामक एक छागलिक—वकरो के मास से आजीविका करने वाला कसाई रहता था, जो धनाढ्य, अधर्मी यावत् दुष्प्रत्यानन्द था।

७—तस्स णं छण्णियस्स छागलियस्स बहवे अयाण य एलयाण य रोज्झाण य वसभाण य ससयाण य सूयराण य पसयाण य सिंघाण य हरिणाण य मयूराण य महिसाण य सयवद्धाण य सहस्सवद्धाण य जूहाणि वाडगसि संनिरुद्धाइ चिट्ठ ति। अन्ने य तत्थ बहवे पुरिसा दिन्नभइभत्तवेयणा

---

१ द्वि अ सूत्र-६

बहवे अए य जाव महिसे य सारक्खेमाणा सगोवेमाणा चिट्ठंति । अन्ने य से बहवे पुरिमा दिन्नभइभत्त-वेयणा बहवे अए य जाव महिसे य जीवियाश्रो ववरोवेंति, ववरोवित्ता मंसाइ कप्पणीकप्पियाइ करेंति, करेत्ता छण्णियस्स छागलियस्स उवणेंति ।

अन्ने य से बहवे पुरिसा ताइं बहुयाइ अयमंसाइ जाव महिसमसाइ तवएसु य कवल्लीसु य कदुएसु य भज्जणेसु य इगालेसु य तलेंति य भज्जेंति य सोल्लेंति य, तलित्ता भज्जित्ता सोल्लेत्ता य तश्रो रायमग्गसि वित्ति कप्पेमाणा विहरति ।

अप्पणा वि य ण से छण्णिए छागलिए तेहिं बहुविहेहिं अयमसेहिं जाव महिसमसेहिं सोल्लेहि य तलिएहि य भज्जिएहि य सुरं च आसाएमाणे विहरइ ।

७—उस छण्णिक छागलिक के अनेक अजो—बकरो, रोझो—नीलगायो, वृषभो, शशको—खरगोशो, मृगविशेषो अथवा मृगशिशुश्रो, शूकरो, सिहो, हरिणो, मयूरो और महिषो के शतवद्ध तथा सहस्रवद्ध अर्थात् सौ-सौ तथा हजार-हजार जिनमे बधे रहते थे ऐसे यूथ, वाडे मे सम्यक् प्रकार से रोके हुए रहते थे । वहाँ जिनको वेतन के रूप मे भोजन तथा रुपया पैसा दिया जाता था, ऐसे उसके अनेक आदमी अजादि और महिषादि पशुश्रो का सरक्षण-सगोपन करते हुए उन पशुश्रो को वाडे मे रोके रहते थे ।

छण्णिक छागलिक के रुपया और भोजन लेकर काम करने वाले अनेक नौकर पुरुष सैकडो तथा हजारो अजो तथा भैसो को मारकर उनके मासो को कैंची तथा छुरी से काट काट कर छण्णिक छागलिक को दिया करते थे ।

उसके अन्य अनेक नौकर उन बहुत से बकरो के मासो तथा महिषो के मासो को तवो पर, कडाहो मे, हाडो मे अथवा कडाहियो या लोहे के पात्रविशेषो मे, भूनने के पात्रो मे, अगारो पर तलते, भूनते और शूल द्वारा पकाते हुए अपनी आजीविका चलाते थे । वह छण्णिक स्वय भी उन मासो के साथ सुरा आदि पाच प्रकार के मद्यो का आस्वादन विस्वादन करता वह हुआ जीवनयापन कर रहा था ।

८—तए ण से छण्णिए छागलिए एयकम्मे, एयप्पहाणे एयविज्जे एयसमायारे सुबहु पावकम्म कलिकलुस समज्जिणित्ता सत्तवाससयाइ परमाउय पालइत्ता कालमासे काल किच्चा चउत्थीए पुढवीए उक्कोसेण दससागरोवमठिइएसु नेरइएसु नेरइयत्ताए उववन्ने ।

८—उस छण्णिक छागलिक ने अजादि पशुश्रो के मासो को खाना तथा मदिराश्रो का पीना अपना कर्तव्य बना लिया था । इन्ही पापपूर्ण प्रवृत्तियो मे वह सदा तत्पर रहता था । वही प्रवृत्ति उसके जीवन का विज्ञान बन गई थी, और ऐसे ही पापपूर्ण कर्मो को उसने अपना सर्वोत्तम आचरण बना रक्खा था । अतएव वह क्लेशोत्पादक और कालुष्यपूर्ण अत्यधिक क्लिष्ट कर्मो का उपार्जन कर सात सौ वर्ष की पूर्ण आयु पालकर कालमास मे काल करके चतुर्थ नरक मे, उत्कृष्ट दस सागरोपम स्थिति वाले नारकियो मे नारक रूप से उत्पन्न हुआ ।

शकट का वर्त्तमान भव

९—तए णं तस्स सुभद्दस्स सत्थवाहस्स भद्दा भारिया जायनिंदुया यावि होत्था । जाया जाया

दारगा विणिहायमावज्जति । तए ण से छण्णिए छागलिए चउत्थीए पुढवीए अणंतरं उव्वट्टित्ता इहेव साहंजणीए सुभद्दस्स सत्थवाहस्स भद्दाए भारियाए कुच्छिसि पुत्तत्ताए उववन्ने ।

तए णं सा भद्दा सत्थवाही अन्नया कयाइ नवण्ह मासाण बहुपडिपुण्णाण दारग पयाया । तए णं तं दारगं अम्मापियरो जायमेत्त चेव सगडस्स हेट्ठाओ ठावेंति । दोच्च पि गिण्हावेंति, अणुपुव्वेणं सारक्खेंति, सगोवेंति, सवड्ढेंति, जहा उज्झियए, जाव जम्हा ण अम्हं इमे दारए जायमेत्ते चेव सगडस्स हेट्ठा ठाविए, तम्हा णं होउ णं अम्हं एस दारए 'सगडे नामेण । सेसं जहा उज्झियए । सुभद्दे लवणसमुद्दे कालगए, माया वि कालगया । से वि सयाओ गिहाओ निच्छूढे । तए णं से सगडे दारए सयाओ गिहाओ निच्छूढे समाणे सिघाडग तहेव जाव सुदरिसणाए गणियाए सद्धि संपलग्गे यावि होत्था ।

९—तदनन्तर उस सुभद्र सार्थवाह की भद्रा नाम की भार्या जातनिन्दुका (जिसके बच्चे जन्म लेते ही मर जाते हो) थी । उसके उत्पन्न होते हुए वालक मृत्यु को प्राप्त हो जाते थे । इधर छण्णिक नामक छागलिक-कसाई का जीव चतुर्थ नरक से निकलकर सीधा इसी साहजनी नगरी मे सुभद्र सार्थवाह की भद्रा नाम की भार्या के गर्भ मे पुत्ररूप मे उत्पन्न हुआ ।

लगभग नवमास परिपूर्ण हो जाने पर किसी समय भद्रा नामक भार्या ने वालक को जन्म दिया । उत्पन्न होते ही माता-पिता ने उस वालक को शकट-छकडे-गाडे के नीचे स्थापित कर दिया—रख दिया और फिर उठा लिया । उठाकर यथाविधि सरक्षण, सगोपन व सवर्द्धन किया ।

यावत् यथानमय उसके माता-पिता ने कहा—उत्पन्न होते ही हमारा यह वालक छकडे के नीचे स्थापित किया गया था, अत इसका 'शकट' ऐसा नामाभिधान किया जाता है—उसका नाम शकट रख दिया । शकट का शेप जीवन उज्झित की ही तरह समझ लेना चाहिये ।

इधर सुभद्र सार्थवाह लवण समुद्र मे कालधर्म को प्राप्त हुआ और शकट की माता भद्रा भी मृत्यु को प्राप्त हो गयी । तव शकट कुमार को राजपुरुपो के द्वारा घर से निकाल दिया गया । अपने घर से निकाले जाने पर शकटकुमार साहजनी नगरी के शृगाटक (त्रिकोण मार्ग) आदि स्थानो मे भटकता रहा तथा जुआरियो के अड्डो तथा शरावघरो मे घूमने लगा । किसी समय उसकी सुदर्शना गणिका के साथ गाढ प्रीति हो गयी । (जैसी उज्झित की कामध्वजा के साथ हो गयी थी ।)

१०—तए ण से सुसेणे अमच्चे त सगडं दारगं अन्नया कयाइ सुदरिसणाए गणियाए गिहाओ निच्छुभावेइ, निच्छुभावेत्ता सुदरिसणं गणिय अब्भितरियं ठावेइ, ठावेत्ता सुदरिसणाए गणियाए सद्धि उरालाइं माणुस्सगाइ भोगभोगाइं भु जमाणे विहरइ ।

१०—तदनन्तर सिंहगिरि राजा का अमात्य—मन्त्री सुषेण किसी समय उस शकट कुमार को सुदर्शना वेश्या के घर से निकलवा देता है और सुदर्शना गणिका को अपने घर मे पत्नी के रूप मे रख लेता है । इस तरह घर मे पत्नी के रूप मे रखी हुई सुदर्शना के साथ मनुष्य सम्बन्धी उदार विशिष्ट कामभोगो को यथारुचि उपभोग करता हुआ समय व्यतीत करता है ।

११—तए ण से सगडे दारए सुदरिसणाए गणियाए गिहाग्रो निच्छुभेमाणे सुदरिसणाए गणियाए मुच्छिए गिद्धे गढिए ग्रज्झोववण्णे ग्रण्णत्थ कत्थइ सुइं च रइं च धिइं च ग्रलभमाणे तच्चित्ते तम्मणे तल्लेसे तदज्झवसाणे तदट्ठोवउत्ते तदप्पियकरणे तब्भावणाभाविए सुदरिसणाए गणियाए वहूणि अंतराणि य छिद्दाणि य विवराणि य पडिजागरमाणे पडिजागरमाणे विहरइ।

तए ण से सगडे दारए ग्रन्नया कयाइ सुदरिसणाए गणियाए ग्रतरं लभेइ, लभेत्ता सुदरिसणाए गणियाए गिह रहसिय ग्रणुप्पविसइ, ग्रणुप्पविसित्ता सुदरिसणाए सद्धि उरालाइ माणुस्सगाइ भोगभोगाइ भु जमाणे विहरइ।

घर से निकाला गया शकट सुदर्शना वेश्या मे मूर्च्छित, गृद्ध, ग्रत्यन्त आसक्त होकर ग्रन्यत्र कही भी सुख चैन, रति, शान्ति नही पा रहा था। उसका चित्त, मन, लेश्या ग्रध्यवसाय उसी मे लीन रहता था। वह सुदर्शना के विषय मे ही सोचा करता, उसमे करणो को लगाए रहता, उसी की भावना से भावित रहता। वह उसके पास जाने की ताक मे रहता ग्रौर ग्रवसर देखता रहता था। एक वार उसे ग्रवसर मिल गया। वह सुदर्शना के घर मे घुस गया ग्रौर फिर उसके साथ भोग भोगने लगा।

१२—इम च ण सुसेणे ग्रमच्चे ण्हाए जाव सव्वालकारविभूसिए मणुस्सवग्गुराए परिक्खित्ते जेणेव सुदरिसणाए गणियाए गेहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सगडं दारयं सुदरिसणाए गणियाए सद्धि उरालाइ भोगभोगाइं भु जमाणं पासइ, पासित्ता ग्रासुरुत्ते जाव मिसमिसेमाणे तिवलिय भिउडि निडाले साहट्टु सगड दारय पुरिसेहिं गिण्हावेइ, गिण्हावेत्ता ग्रट्ठि जाव (मुट्ठि-जाणु-कोप्पर-पहारसभग्ग-महिय करेइ, करित्ता ग्रवग्रोडयवन्धण करेइ, करेत्ता जेणेव महचदे राया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयल जाव एवं वयासी—'एवं खलु सामी! सगडे दारए मम अतेउरंसि ग्रवरद्धे।'

तए णं से महचदे राया सुसेण ग्रमच्चं एवं वयासी—'तुमं चेव णं, देवाणुप्पिया! सगडस्स दारगस्स दंडं वत्तेहि।'

तए ण से सुसेणे ग्रमच्चे महचदेणं रन्ना ग्रब्भणुन्नाए समाणे सगडं दारयं सुदरिसण च गणियं एएण विहाणेणं वज्झ ग्राणवेइ।

त एवं खलु, गोयमा! सगडे दारए पुरापोराणाण दुच्चिण्णाण जाव पच्चणुभवमाणे विहरइ।

१२—इधर एक दिन स्नान करके तथा सर्व अलङ्कारो से विभूषित होकर ग्रनेक मनुष्यो से परिवेष्टित सुसेण मन्त्री सुदर्शना के घर पर आया। ग्राते ही उसने सुदर्शना के साथ यथारुचि कामभोगो का उपभोग करते हुए शकट कुमार को देखा। देखकर वह क्रोध के वश लाल-पीला हो, दात पीसता हुग्रा मस्तक पर तीन सल वाली भृकुटि चढा लेता है। शकट कुमार को ग्रपने पुरुषो से पकडवाकर यष्टियो, मुट्ठियो, घुटनो, कोहनियो से उसके शरीर को मथित कर ग्रवकोटकवन्धन से जकडवा लेता है। तदनन्तर उसे महाराज महचन्द्र के पास ले जाकर दोनो हाथ जोडकर तथा मस्तक पर दसो नखवाली ग्रञ्जलि करके इस प्रकार निवेदन करता है—'स्वामिन्! इस शकट कुमार ने मेरे ग्रन्त पुर मे प्रवेश करने का ग्रपराध किया है।'

इसके उत्तर मे महाराज महचन्द्र सुषेण मन्त्री से इस प्रकार बोले—'देवानुप्रिय ! तुम ही इसको अपनी इच्छानुसार दण्ड दे सकते हो।'

तत्पश्चात् महाराज महचन्द्र से आज्ञा प्राप्त कर सुषेण अमात्य ने शकट कुमार और सुदर्शना गणिका को पूर्वोक्त विधि से (जिसे हे गौतम ! तुमने देखा है) वध करने की आज्ञा राजपुरुषो को प्रदान की।

शकट का भविष्य

१३—सगडे णं भंते ! दारए कालगए कहिं गच्छिहिइ, कहिं उववज्जिहिइ ?

गोयमा ! सगडे णं दारए सत्तावन्नं वासाइं परमाउय पालइत्ता अज्जेव तिभागावसेसे दिवसे एग महं अयोमयं तत्त समजोइभूय इत्थिपडिमं अवयासाविए समाणे कालमासे कालं किच्चा इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए नेरइयत्ताए उववज्जिहिइ।

से णं तओ अणतर उव्वट्टित्ता रायगिहे नयरे मातगकुलंसि जुगलत्ताए पच्चायाहिइ। तए ण तस्स दारगस्स अम्मापियरो निव्वत्तवारसाहस्स इम एयारूव गोण्ण नामधेज्ज करिस्संति—'त होउ णं दारए सगडे नामेण, होउ णं दारिया सुदरिसणा नामेणं।'

१३—शकट की दुर्दशा का कारण भगवान् से सुनकर गौतम स्वामी ने प्रश्न किया—हे प्रभो ! शकट कुमार बालक यहाँ से काल करके कहाँ जाएगा और कहाँ पर उत्पन्न होगा ?

भगवान् बोले—हे गौतम ! शकट दारक को ५७ वर्ष की परम आयु को भोगकर आज ही तीसरा भाग शेष रहे दिन मे एक महालोहमय तपी हुई अग्नि के समान देदीप्यमान स्त्रीप्रतिमा से आलिंगित कराया जायगा। तब वह मृत्यु-समय मे मरकर रत्नप्रभा नाम की प्रथम नरक भूमि मे नारक रूप से उत्पन्न होगा।

वहाँ से निकलकर राजगृह नगर मे मातङ्ग—चाण्डाल के कुल मे युगल रूप से उत्पन्न होगा। युगल (वे दो बच्चे जो एक ही गर्भ से साथ-साथ उत्पन्न हुए हो) के माता-पिता बारहवें दिन उनमे से बालक का नाम 'शकटकुमार' और कन्या का नाम 'सुदर्शना' रक्खेंगे।

१४—तए ण से सगडे दारए उम्मुक्कबालभावे विण्णयपरिणयमेत्ते जोव्वणगमणुपत्ते भविस्सइ।

तए णं सा सुदरिसणा वि दारिया उम्मुक्कबालभावा जोव्वणगमणुप्पत्ता रूवेण य जोव्वणेण य लावण्णेण य उक्किट्ठा उक्किट्ठसरीरा यावि भविस्सइ। तए णं से सगडे दारए सुदरिसणाए रूवेण य जोव्वणेण य लावण्णेण य मुच्छिए सुदरिसणाए सद्धि उरालाइ भोगभोगाइ भुंजमाणे विहरिस्सइ।

तए णं से सगडे दारए अन्नया सयमेव कूडग्गाहित्त उवसपज्जित्ताणं विहरिस्सइ। तए ण से सगडे दारए कूडग्गाहे भविस्सइ अहम्मिए जाव[1] दुप्पडियाणन्दे। एयकम्मे-४ सुबहुं पावकम्म समज्जिणित्ता कालमासे कालं किच्चा इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए नेरइयत्ताए उववज्जिहिइ। ससारो तहेव जाव पुढवीए।

---

१. प्र. अ. सूत्र २०

से णं तओ अणंतर उव्वट्टित्ता वाणारसीए नयरीए मच्छत्ताए उववज्जिहिइ। से णं तत्थ मच्छबन्धिएहिं वहिए तत्थेव वाणारसीए नयरीए सेट्ठिकुलंसि पुत्तत्ताए पच्चायाहिइ। वोहिं, पव्वज्जा, सोहम्मे कप्पे, महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ।

निक्खेवो।

१४—तदनन्तर शकट कुमार वाल्यभाव को त्याग कर यौवन को प्राप्त करेगा। सुदर्शना कुमारी भी वाल्यावस्था पार करके विशिष्ट ज्ञानवुद्धि की परिपक्वता को प्राप्त करती हुई युवावस्था को प्राप्त होगी। वह रूप, यौवन व लावण्य मे उत्कृष्ट—श्रेष्ठ व सुन्दर शरीर वाली होगी।

तदनन्तर सुदर्शना के रूप, यौवन और लावण्य की सुन्दरता मे मूर्च्छित होकर शकट कुमार अपनी वहिन सुदर्शना के साथ ही मनुष्य सम्वन्धी प्रधान कामभोगो का सेवन करता हुआ जीवन व्यतीत करेगा।

तत्पश्चात् किसी समय वह शकट कुमार स्वयमेव कूटग्राहित्व को प्राप्त कर विचरण करेगा। वह कूटग्राह (कपट से जीवो को फँसाने वाला—मारने वाला) वना हुआ वह शकट महाअधर्मी एव दुष्प्रत्यानन्द होगा। इन अधर्म-प्रधान कर्मो से वहुत से पापकर्मो को उपार्जित कर मृत्युसमय मे मर कर रत्नप्रभा नामक प्रथम नरक मे नारकी रूप से उत्पन्न होगा। उसका ससार-भ्रमण भी पूर्ववत् (इक्कड, उज्झित आदि के समान) जान लेना चाहिए यावत् वह पृथ्वीकाय आदि मे लाखो-लाखो वार उत्पन्न होगा।

तदनन्तर वहाँ से निकलकर वह सीधा वाराणसी नगरी मे मत्स्य के रूप मे जन्म लेगा। वहाँ पर मत्स्यघातको के द्वारा वध को प्राप्त होकर यह फिर उसी वाराणसी नगरी मे एक श्रेष्ठिकुल मे पुत्ररूप से उत्पन्न होगा। वहाँ सम्यक्त्व एव अनगार धर्म को प्राप्त करके सौधर्म नामक प्रथम देवलोक मे देव होगा। वहाँ से च्युत हो, महाविदेह क्षेत्र मे जन्म लेगा। वहाँ साधुवृत्ति का सम्यक्तया पालन करके सिद्ध, बुद्ध होगा, समस्त कर्मो और दुखो का अन्त करेगा।

॥ चतुर्थ अध्ययन समाप्त ॥

पञ्चम अध्ययन

वृहस्पतिदत्त

प्रस्तावना

पंचमस्स उक्खेवो—जइ णं भन्ते !

पाचवे अध्ययन का उत्क्षेप-प्रस्तावना पूर्ववत् जान लेना चाहिये। अर्थात् जम्बूस्वामी ने प्रश्न किया कि श्रमण भगवान् महावीर ने दु खविपाक के पाचवे अध्ययन का क्या अर्थ कहा है ? तब सुधर्मा स्वामी ने कहा—

१—एवं खलु, जम्बू ! तेण कालेण तेणं समएण कोसंवी णामं णयरी होत्था। रिद्धत्थिमिय-समिद्धा। वाहि चदोतरणे उज्जाणे। सेयभद्दे जक्खे।

१—हे जम्बू ! उस काल और उस समय मे कौशाम्बी नाम की एक नगरी थी, जो भवनादि के आधिक्य से युक्त, स्वचक्र-परचक्र के भय से मुक्त तथा समृद्धि से समृद्ध थी। उस नगरी के बाहर चन्द्रावतरण नामक उद्यान था। उसमे श्वेतभद्र नामक यक्ष का आयतन था।

२—तत्थ ण कोसवीए नयरीए सयाणीए नामं राया होत्था। महया०। मियावई देवी। तस्स ण सयाणीयस्स पुत्ते मियादेवीए अत्तए उदायणे नाम कुमारे होत्था, अहीणपडिपुण्णपंचिदिय-सरीरे, जुवराया। तस्स णं उदायणस्स कुमारस्स पउमावई नाम देवी होत्था।

२—उस कौशम्बी नगरी मे शतानीक नाम का राजा राज्य करता था। जो हिमालय पर्वत आदि के समान महान् और प्रतापी था। उसके मृगादेवी नाम की रानी थी। उस शतानीक राजा का पुत्र और रानी मृगादेवी का आत्मज उदयन नाम का एक कुमार था जो सर्वेन्द्रिय सम्पन्न अथ च युवराज पद से अलकृत था। उस उदयन कुमार की पद्मावती नाम की देवी—पत्नी थी।

३—तस्स णं सयाणीयस्स सोमदत्ते नामं पुरोहिए होत्था, रिउव्वेय-यज्जुव्वेय-सामवेय-अथव्वणवेयकुसले। तस्स ण सोमदत्तस्स पुरोहियस्स वसुदत्ता नामं भारिया होत्था। तस्स णं सोमदत्तस्स पुत्ते वसुदत्ताए अत्तए वहस्सइदत्ते नाम दारए होत्था। अहीणपडिपुण्णपंचिदियसरीरे।

३—उस शतानीक राजा का सोमदत्त नामक पुरोहित था, जो ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद का पूर्ण ज्ञाता था। उस सोमदत्त पुरोहित के वसुदत्ता नाम की भार्या थी, तथा सोमदत्त का पुत्र एवं वसुदत्ता का आत्मज वृहस्पतिदत्त नाम का सर्वाङ्गसम्पन्न एक सुन्दर बालक था।

४—तेणं कालेण तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे समोसरिए। तेणं कालेण तेणं समएणं भगव गोयमे तहेव जाव[1] रायमग्गमोगाढे। तहेव पासइ हत्थी, आसे, पुरिसमज्झे पुरिसं। चिंता। तहेव पुच्छइ, पुव्वभवं। भगवं वागरेइ।

४—उस काल तथा उस समय मे श्रमण भगवान् महावीर स्वामी कौशम्वी नगरी के वाहर चन्द्रावतरण उद्यान मे पधारे। उस समय भगवान् गौतम स्वामी पूर्ववत् कौशाम्वी नगरी मे भिक्षार्थ गए। और लौटते हुए राजमार्ग मे पधारे। वहाँ हाथियो, घोडो और वहुसख्यक पुरुषो को तथा उन पुरुषो के बीच एक वध्य पुरुष को देखा। उनको देखकर मन मे विचार करते है और स्वस्थान पर आकर भगवान् से उसके पूर्व-भव के सम्वन्ध मे पृच्छा करते हैं। भगवान् उसके पूर्वभव का इस प्रकार वर्णन करते हैं—

पूर्वभव

५—एवं खलु जम्बू! तेणं कालेणं तेणं समएण इहेव जम्वुद्दीवे दीवे भारहे वासे सव्वओभद्दे नामं नयरे होत्था, रिद्धत्थिमियसमिद्धे। तत्थ णं सव्वओभद्दे नयरे जियसत्तू राया। तस्स णं जियसत्तुस्स रन्नो महेसरदत्ते नाम पुरोहिए होत्था, रिउव्वेय-यजुव्वेय-सामवेय-अथव्वणवेयकुसले यावि होत्था।

५—हे गौतम! उस काल और उस समय मे इसी जम्वूद्वीप नामक द्वीप के अन्तर्गत भरत-क्षेत्र मे सर्वतोभद्र नाम का एक भवनादि के आधिक्य से युक्त आन्तरिक व वाह्य उपद्रवो से मुक्त तथा धनधान्यादि से परिपूर्ण नगर था। उस सर्वतोभद्र नामक नगर मे जितशत्रु नामक राजा राज्य करता था। उस जितशत्रु राजा का महेश्वरदत्त नाम का एक पुरोहित था जो ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद मे कुशल था।

६—तए णं से महेसरदत्ते पुरोहिए जितसत्तुस्स रन्नो रज्जवलविवद्धणट्ठयए कल्लाकल्लि एगमेगं माहणदारयं, एगमेग खत्तियदारयं एगमेगं वइस्सदारयं, एगमेगं सुद्दारयं गिण्हावेइ, गिण्हावेत्ता तेसिं जीवंतगाणं चेव हिययउडए गिण्हावेए गिण्हावेत्ता जियसत्तुस्स रन्नो संतिहोमं करेइ।

तए णं से महेसरदत्ते पुरोहिए अट्ठमी-चउद्दसीसु दुवे-दुवे माहणखत्तिय-वइस्स-सुद्दारगे, चउण्ह मासाणं चत्तारि-चत्तारि, छण्हं मासाण अट्ठ-अट्ठ संवच्छरस्स सोलस-सोलस।

जाहे जाहे वि य णं जियसत्तू राया परबलेण अभिजुंजइ, ताहे ताहे वि य णं से महेसरदत्ते पुरोहिए अट्ठसयं माहणदारगाणं, अट्ठसयं खत्तियदारगाणं, अट्ठसयं वइस्सदारगाणं, अट्ठसयं सुद्दारगाणं पुरिसेहिं गिण्हावेइ, गिण्हावेत्ता जियसत्तुस्स रन्नो सतिहोमं करेइ। तए ण से परवले खिप्पामेव विद्धंसिज्जइ वा पडिसेहिज्जइ वा।

६—महेश्वरदत्त पुरोहित जितशत्रु राजा के राज्य की एव वल की वृद्धि के लिये प्रतिदिन एक-एक ब्राह्मण वालक, एक-एक क्षत्रिय वालक, एक-एक वैश्य वालक और एक-एक शूद्र वालक को पकडवा लेता था और पकडवाकर, जीते जी उनके हृदयो के मासपिण्डो को ग्रहण करवाता-

१ द्वि अ, सूत्र-६

निकलवा लेता था और वाहर निकलवाकर जितशत्रु राजा के निमित्त उनसे शान्ति-होम किया करता था।

इसके अतिरिक्त वह पुरोहित अष्टमी और चतुर्दशी के दिन दो-दो बालको के, चार-चार मे चार-चार के, छह मास मे आठ-आठ वालको के और सवत्सर-वर्ष मे सोलह-सोलह बालको के हृदयो के मासपिण्डो से शान्तिहोम किया करता था। जब-जब जितशत्रु राजा का किसी शत्रु के साथ युद्ध होता तव-तव वह महेश्वरदत्त पुरोहित एक सौ आठ (१०८) ब्राह्मण बालको, एक सौ आठ क्षत्रिय-वालको, एक सौ आठ वैश्यबालको और एक सौ आठ शूद्रवालको को अपने पुरुषो द्वारा पकडवाकर और जीते जी उनके हृदय के मासपिण्डो को निकलवाकर जितशत्रु नरेश की विजय के निमित्त शान्तिहोम करता था। उसके प्रभाव से जितशत्रु राजा शीघ्र ही शत्रु का विध्वस कर देता या उसे भगा देता था।

७—तए णं से महेसरदत्ते पुरोहिए एयकम्मे एयप्पहाणे एयविज्जे एयसमायारे सुबहुं पावकम्मं समज्जिणित्ता तीस वाससयं परमाउयं पालइत्ता कालमासे कालं किच्चा पचमीए पुढवीए उक्कोसेण सत्तरससागरोवमट्ठिइए नरगे उववन्ने।

७—इस प्रकार के क्रूर कर्मों का अनुष्ठान करने वाला, क्रूरकर्मों मे प्रधान, नाना प्रकार के पापकर्मो को एकत्रित कर अन्तिम समय मे वह महेश्वरदत्त पुरोहित तीन हजार वर्ष का परम आयुष्य भोगकर पाचवें नरक मे उत्कृष्ट सत्तरह सागरोपम की स्थिति वाले नारक के रूप मे उत्पन्न हुआ।

वर्त्तमान भव

८—से णं तओ अणंतरं उव्वट्टित्ता इहेव कोसंबीए नयरीए सोमदत्तस्स पुरोहियस्स वसुदत्ताए भारियाए पुत्तत्ताए उववन्ने। तए णं तस्स दारगस्स अम्मापियरो निव्वत्तबारसाहस्स इमं एयारूव नामधेज्जं करेंति—'जम्हा ण अम्हं इमे दारए सोमदत्तस्स पुरोहियस्स पुत्ते, वसुदत्ताए अत्तए, तम्हा णं होउ अम्हं दारए वहस्सइदत्ते नामेणं।' तए णं से बहस्सइदत्ते दारए पचधाइपरिग्गहिए जाव परिवड्ढइ। तए ण से वहस्सइदत्ते उम्मुक्कबालभावे जोव्वणगमणुप्पत्ते विन्नयपरिणयमेत्ते होत्था। से ण उदायणस्स कुमारस्स पियवालवयस्सए यावि होत्था। सहजायए, सहवड्ढियए, सहपंसुकीलियए।

८—तदनन्तर महेश्वरदत्त पुरोहित का वह पापिष्ठ जीव उस पाचवे नरक से निकलकर सीधा इसी कौशाम्वी नगरी मे सोमदत्त पुरोहित की वसुदत्ता भार्या के उदर मे पुत्ररूप से उत्पन्न हुआ। तत्पश्चात् उत्पन्न हुए उस वालक के माता-पिता ने जन्म से वारहवे दिन नामकरण सस्कार करते हुए कहा—यह वालक सोमदत्त का पुत्र और वसुदत्ता का आत्मज होने के कारण इसका वृहस्पतिदत्त यह नाम रक्खा जाए।

तदनन्तर वह बृहस्पतिदत्त वालक पाच धायमाताओ से परिगृहीत यावत् वृद्धि को प्राप्त करता हुआ तथा वालभाव को पार करके युवावस्था को प्राप्त होता हुआ, परिपक्व विज्ञान को उपलब्ध किये हुए वह उदयन कुमार का वाल्यकाल से ही प्रिय मित्र हो गया। कारण यह था कि ये दोनो एक साथ ही उत्पन्न हुए, एक साथ वढे और एक साथ ही दोनो ने धूलि-क्रीडा की थी अर्थात् खेले थे।

९—तए णं से सयाणीए राया अन्नया कयाइ कालधम्मुणा संजुत्ते। तए णं से उदायणं कुमारे वहूहिं राईसर-तलवर-माडंबिय-कोडुंबिय-इब्भ-सेट्ठी-सेणावइ-सत्थवाहप्पभिईहिं सद्धिं संपरिवुडे रोय-

माणे, कन्दमाणे, विलवमाणे सयाणीयस्स रन्नो महया इड्ढि-सक्कारसमुदएण नीहरणं करेइ, करेत्ता बहूहिं लोइयाइं मयकिच्चाइं करेइ। तए णं ते बहवे राईसर जाव सत्थवाहा उदायणं कुमारं महया-महया रायाभिसेएणं अभिसिंचंति।

तए ण से उदायणकुमारे राया जाए महया हिमवंत० !

९—तदनन्तर किसी समय राजा शतानीक कालधर्म को प्राप्त हो गया। तब उदयनकुमार बहुत से राजा, तलवर, माडबिक, कौटुविक, इभ्य, श्रेष्ठी सेनापति और सार्थवाह आदि के साथ रोता हुआ, आक्रन्दन करता हुआ तथा विलाप करता हुआ शतानीक नरेश का राजकीय समृद्धि के अनुसार सन्मानपूर्वक नीहरण तथा मृतक सम्बन्धी सम्पूर्ण लौकिक कृत्यो को करता है।

तदनन्तर उन राजा, ईश्वर यावत् सार्थवाह आदि ने मिलकर वडे समारोह के साथ उदयन कुमार का राज्याभिषेक किया।

उदयनकुमार हिमालय पर्वत के समान महान् राजा हो गया।

१०—तए णं से बहस्सइदत्ते दारए उदायणस्स रन्नो पुरोहियकम्मं करेमाणे सव्वट्ठाणेसु, सव्व-भूमियासु, अंतेउरे य दिन्नवियारे जाए यावि होत्था। तए णं से बहस्सइदत्ते पुरोहिए उदायणस्स रन्नो अंतेउरंसि वेलासु य अवेलासुय, काले य अकाले य, राओ य वियाले य पविसमाणे अन्नया कयाइ पउमावईए देवीए सद्धिं संपलग्गे यावि होत्था। पउमावईए देवीए सद्धिं उरालाइं भोगभोगाइ भुंजमाणे विहरइ।

१०—तदनन्तर बृहस्पतिदत्त कुमार उदयन नरेश का पुरोहित हो गया और पौरोहित्य कर्म करता हुआ सर्वस्थानो, सर्वभूमिकाओ तथा अन्त पुर मे भी इच्छानुसार वेरोक-टोक गमनागमन करने लगा।

तत्पश्चात् वह बृहस्पतिदत्त पुरोहित उदयन-नरेश के अन्त पुर मे समय-असमय, काल-अकाल तथा रात्रि एव सन्ध्याकाल मे स्वेच्छापूर्वक प्रवेश करते हुए धीरे धीरे पद्मावती देवी के साथ अनुचित सम्बन्ध वाला होगया। तदनुसार पद्मावती देवी के साथ उदार यथेष्ट मनुष्य सम्बन्धी काम-भोगो को सेवन करता हुआ समय व्यतीत करने लगा।

११—इमं च णं उदायणे राया ण्हाए जाव विभूसिए जेणेव पउमावई देवी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता बहस्सइदत्तं पुरोहियं पउमावइए देवीए सद्धिं उरालाइं भोगभोगाइ भुंजमाणं पासइ, पासित्ता आसुरुत्ते तिवलियं भिउडिं णिडाले साहट्टु बहस्सइदत्तं पुरोहियं पुरिसेहिं गिण्हावेइ जाव (गिण्हावेत्ता अट्ठि-मुट्ठि-जाणु-कोप्परपहार-सभग्ग-महियगत्त करेइ, करेत्ता अवओडय-बंधण करेइ, करेत्ता) एएणं विहाणेणं वज्झं आणवेइ।

एवं खलु गोयमा ! बहस्सइदत्ते पुरोहिए पुरा पुराणाणं जाव विहरइ।

११—इधर किसी समय उदयन नरेश स्नानादि से निवृत्त होकर और समस्त अलङ्कारो से अलकृत होकर जहाँ पद्मावती देवी थी वहाँ आया। आकर उसने वृहस्पतिदत्त पुरोहित को पद्मावती

देवी के साथ भोगोपभोग भोगते हुए देखा। देखते ही वह क्रोध से तमतमा उठा। मस्तक पर तीन वल वाली भृकुटि चढाकर वृहस्पतिदत्त पुरोहित को पुरुषो द्वारा पकड़वाकर यष्टि (अस्थि), मुट्ठी, घुटने, कोहनी, आदि के प्रहारो से उसके शरीर को भग्न कर दिया गया, मथ डाला और फिर इस प्रकार (जैसा कि तुमने राजमार्ग मे देखा है) ऐसा कठोर दण्ड देने की राजपुरुषो को आज्ञा दी।

हे गौतम ! इस तरह वृहस्पतिदत्त पुरोहित पूर्वकृत क्रूर पापकर्मो के फल को प्रत्यक्षरूप से अनुभव कर रहा है।

भविष्य

१२—'वहस्सइदत्ते णं भंते ! दारए इओ कालगए समाणे कहिं गच्छिहिइ ? कहिं उववज्जिहिइ ?

गोयमा ! वहस्सइदत्ते णं दारए पुरोहिए चउसट्ठिं वासाइं परमाउयं पालइत्ता अज्जेव तिभागावसेसे दिवसे सूलिय-भिन्ने कए समाणे कालमासे कालं किच्चा इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए उक्कोसं सागरोवमट्ठिइएसु नेरइएसु नेरइयत्ताए उववज्जिहिति। संसारो जहा पढमे जाव वाउ-तेउ-आउ-पुढवीसु।

तओ हत्थिणाउरे नयरे मिगत्ताए पच्चायाइस्सइ। से णं तत्थ वाउरिएहिं वहिए समाणे तत्थेव हत्थिणाउरे नयरे सेट्ठिकुलंसि पुत्तत्ताए पच्चायाहिइ, बोहिं, सोहम्मे कप्पे, महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ।

निक्खेवो।

१२—गौतम स्वामी ने प्रश्न किया,—हे भगवन् ! वृहस्पतिदत्त पुरोहित यहाँ से काल करके कहाँ जायेगा ? और कहाँ पर उत्पन्न होगा ?

भगवान् ने उत्तर दिया—हे गौतम ! वृहस्पतिदत्त पुरोहित ६४ वर्ष की आयु को भोगकर दिन का तीसरा भाग शेप रहने पर सूली से भेदन किया जाकर कालावसर मे काल करके रत्नप्रभा नामक प्रथम नरक मे उत्कृष्ट एक सागर की स्थिति वाले नारको मे उत्पन्न होगा। वहाँ से निकलकर प्रथम अध्ययन मे वर्णित मृगापुत्र की तरह सभी नरको मे, सव तिर्यञ्चो मे तथा एकेन्द्रियो मे लाखो लाखो वार जन्म-मरण करेगा।

तत्पश्चात् हस्तिनापुर नगर मे मृग के रूप मे जन्म लेगा। वहाँ पर वागुरिको—जाल मे फँसाने का काम करने वाले व्याधो के द्वारा मारा जाएगा। और इसी हस्तिनापुर मे श्रेष्ठिकुल मे पुत्ररूप से जन्म धारण करेगा।

वहाँ सम्यक्त्व को प्राप्त करेगा और काल करके सौधर्म नामक प्रथम देवलोक मे उत्पन्न होगा। वहाँ से च्युत होकर महाविदेह क्षेत्र मे जन्म लेगा। वहाँ पर अनगार वृत्ति धारण कर, सयम की आराधना करके सव कर्मो का अन्त करेगा—परमसिद्धि को प्राप्त करेगा।

निक्षेप—उपसहार पूर्ववत् जान लेना चाहिए।

॥ पञ्चम अध्ययन समाप्त ॥

षष्ठ अध्ययन

नन्दिवर्द्धन

प्रस्तावना

१—उक्खेवो—जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं पंचमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, छट्ठस्स णं भंते । समणेण भगवया महावीरेणं के अट्ठे पण्णत्ते ?

तए णं सुहम्मे अणगारे जम्बू-अणगारं एवं वयासी—

१—उत्क्षेप—जम्बू स्वामी ने प्रश्न किया—भगवन् । यदि यावत् मुक्तिप्राप्त श्रमण भगवान् महावीर ने पाचवे अध्ययन का यह अर्थ कहा, तो षष्ठ अध्ययन का भगवान् ने क्या अर्थ कहा है ?

२—एवं खलु जम्बू ! तेण कालेणं तेणं समएण महुरा नामं नयरी होत्था । भडीरे उज्जाणे । सुदंसणे जक्खे । सिरिदामे राया । बन्धुसिरी भारिया । पुत्ते नंदिवद्धणे कुमारे अहीण (पडिपुण्ण-पंचिंदियशरीरे) जाव जुवराया ।

२—हे जम्बू ! उस काल तथा उस समय मे मथुरा नाम की नगरी थी । वहाँ भण्डीर नाम का एक उद्यान था । सुदर्शन नामक यक्ष का उसमे आयतन था । वहाँ श्रीदाम नामक राजा राज्य करता था, उसकी बन्धुश्री नाम की रानी थी । उनका सर्वाङ्ग-सम्पन्न युवराज पद से अलकृत नन्दिवर्द्धन नाम का सर्वागसुन्दर पुत्र था ।

३—तस्स सिरिदामस्स सुबन्धू नाम अमच्चे होत्था । साम-भेय-दण्ड-उवप्पयाणनीतिकुसले, सुपउत्तनयविहण्णू । तस्स णं सुबंधुस्स अमच्चस्स बहुमित्तापुत्ते नामं दारए होत्था, अहीण० । तस्स णं सिरिदामस्स रन्नो चित्ते नाम अलंकारिए होत्था । सिरिदामस्स रण्णो चित्ते बहुविहं अलंकारियकम्म करेमाणे सव्वट्ठाणेसु य सव्वभूमियासु य, अतेउरे य, दिन्नवियारे यावि होत्था ।

३—श्रीदाम नरेश का सुबन्धु नामक मन्त्री था, जो साम, दण्ड, भेद-उपप्रदान मे कुशल था—नीति-निपुण था । उस मन्त्री के बहुमित्रापुत्र नामक सर्वाङ्गसम्पन्न व रूपवान् बालक था । श्रीदाम नरेश का, चित्र नामक अलकारिक (केशादि को अलकृत करने वाला नाई) था । वह राजा का अनेकविध, क्षौरकर्म करता हुआ राजा की आज्ञा से सर्वस्थानो, सर्व-भूमिकाओ तथा अन्त पुर मे भी, बेरोक-टोक, आवागमन करता रहता था ।

४—तेण कालेण तेणं समएणं सामी समोसढे । परिसा निग्गया, राया निग्गओ जाव परिसा पडिगया ।

४—उस काल उस समय मे मथुरा नगरी मे भगवान् महावीर स्वामी पधारे। परिषद् व राजा भगवान् की धर्मदेशना श्रवण करने नगर से निकले, यावत् धर्मदेशना सुनकर वापिस चले गये।

गौतम स्वामी का प्रश्न

५—तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स जेट्ठे जाव[1] रायमग्गमोगाढे। तहेव हत्थी, आसे, पुरिसे, पासइ। तेसिं च पुरिसाण मज्झगयं एग पुरिसं पासइ जाव नरनारिसंपरिवुडं। तए णं तं पुरिसं रायपुरिसा चच्चरसि तत्तसि अयोमयसि समजोइभूयसीहासणंसि निवेसावेंति। तयाणंतरं च णं पुरिसाण मज्झगयं पुरिस वहुविहअयकलसेहिं तत्तेहिं समजोइभूएहिं, अप्पेगइया तंबभरिएहिं, अप्पेगइया तउयभरिएहिं, अप्पेगइया सीसग-भरिएहिं, अप्पेगइया कलकलभरिएहिं, अप्पेगइया खारतेल्लभरिएहिं, महया-महया रायाभिसेएणं अभिसिंचति। तयाणंतरं च णं तत्तं अयोमयं समजोइ-भूयं अयोमयसंडासएणं गहाय हारं पिणद्ध ति। तयाणंतर च ण अद्धहार पिणद्धंति जाव (तिसरिय पिणद्ध ति, पालंबं पिणद्धंति, कडिसुत्तय पिणद्धंति, पट्टं पिणद्धंति, मउड) पिणद्धंति।

चिन्ता तहेव जाव वागरेइ।

५—उस समय भगवान् महावीर के प्रधान शिष्य गौतम स्वामी भिक्षा के लिये नगरी मे पधारे। भिक्षा ग्रहण करके लौटते हुए यावत् राजमार्ग पर पधारे। वहाँ उन्होने (पूर्ववत्) हाथियो, घोडो और पुरुषो को देखा, तथा उन पुरुषो के मध्य मे यावत् बहुत से नर-नारियो के वृन्द से घिरे हुए एक पुरुष को देखा। राजपुरुष उस पुरुष को चत्वर—जहाँ बहुत से रास्ते मिलते हो—ऐसे स्थान मे अग्नि के समान-सन्तप्त लोहमय सिंहासन पर बैठाते है। बैठाकर कोई-कोई राजपुरुष उसको अग्नि के समान उष्ण लोहे से परिपूर्ण, कोई ताम्रपूर्ण, कोई त्रपु-रागा से पूर्ण, कोई सीसा से पूर्ण, कोई कलकल से पूर्ण, अथवा कलकल शब्द करते हुए अत्युष्ण पानी से परिपूर्ण, क्षारयुक्त तैल से पूर्ण, अग्नि के समान तपे कलशो के द्वारा महान् राज्याभिषेक से उसका अभिषेक करते हैं।

तदनन्तर उसे, लोहमय सडासी से पकडकर अग्नि के समान तपे हुए अयोमय—अठारह लडियो वाले हार, अर्द्धहार-नौ लडी वाले हार, तीन लडी वाले हार को, कोई प्रालम्ब—लम्बी लटकती माला, कोई करधनी, कोई मस्तक के पट्टवस्त्र अथवा भूषणविशेष और कोई मुकुट पहिनाते हैं।

यह भयावह दृश्य देखकर श्री गौतमस्वामी को पूर्ववत् विचार उत्पन्न हुआ—यह पुरुष नारकीय वेदना भोग रहा हे, आदि। यावत् गौतमस्वामी उस पुरुष के पूर्वभव सम्बन्धी वृत्तान्त को भगवान् से पूछते है। भगवान् उत्तर मे इस प्रकार कहते है—

भगवान का उत्तर : नन्दिषेण का पूर्वभव

६—एव खलु गोयमा। तेण कालेण तेणं समएण इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे सीहपुरे नामं

---

१ द्वि अ, सूत्र ६

नयरे होत्था। रिद्धत्थिमियसमिद्धे। तत्थ णं सीहपुरे नयरे सीहरहे नामं राया होत्था। तस्स णं सीहरहस्स रन्नो दुज्जोहणे नामं चारगपालए होत्था, अहम्मिए जाव[1] दुप्पडियानंदे।

६—हे गौतम! उस काल उस समय मे इसी जम्बूद्वीप नामक द्वीप के अन्तर्गत भारतवर्ष मे सिंहपुर नामक एक ऋद्ध, स्तिमित व समृद्ध नगर था। वहाँ सिंहरथ नाम का राजा राज्य करता था। उस राजा के दुर्योधन नाम का चारकपाल—कारागाररक्षक—जेलर था, जो अधर्मी यावत् कठिनाई से प्रसन्न होने वाला था।

जेलर का घोर अत्याचार

७—तस्स णं दुज्जोहणस्स चारगपालगस्स इमेयारूवे चारगभंडे होत्था—बहवे अयकुंडीओ-अप्पेगइयाओ तंबभरियाओ, अप्पेगइयाओ तउयभरियाओ, अप्पेगइयाओ सीसभरियाओ, अप्पेगइयाओ कलकलभरियाओ, अप्पेगइयाओ खारतेल्लभरियाओ-अगणिकायंसि अद्दहियाओ चिट्ठंति।

तस्स णं दुज्जोहणस्स चारपालगस्स बहवे उट्टियाओ-अप्पेगइयाओ आसमुत्तभरियाओ, अप्पेगइयाओ हत्थिमुत्तभरियाओ, अप्पेगइयाओ गोमुत्तभरियाओ, अप्पेगइयाओ महिसमुत्तभरियाओ, अप्पेगइयाओ उट्टमुत्तभरियाओ, अप्पेगइयाओ अयमुत्तभरियाओ, अप्पेगइयाओ एलमुत्तभरियाओ बहुपडिपुण्णाओ चिट्ठंति।

तस्स णं दुज्जोहणस्स चारगपालस्स बहवे हत्थडुयाण य पायंडुयाण य हडीण य नियलाण य सकलाण य पुंजा य निगरा य संनिक्खित्ता चिट्ठंति।

तस्स ण दुज्जोहणस्स चारगपालस्स बहवे वेणुलयाण य वेत्तलयाण य चिंचालयाण य छियाण य कसाण य वायरासीण य पुंजा निगरा चिट्ठंति।

तस्स णं दुज्जोहणस्स-चारगपालस्स बहवे सिलाण य लउडाण य मोग्गराण य कणगराण य पुंजा य निगरा य संनिक्खित्ता चिट्ठंति।

तस्स णं दुज्जोहणस्स चारगपालस्स बहवे तंतीण य वरत्ताण य वागरज्जूण य वालयसुत्तरज्जूण य पुंजा य निगरा य संनिक्खित्ता चिट्ठंति।

तस्स णं दुज्जोहणस्स चारगपालस्स बहवे असिपत्ताण य करपत्ताण य खुरपत्ताण य कलम्बचीरपत्ताण य पुंजा य निगरा य संनिक्खित्ता चिट्ठंति।

तस्स णं दुज्जोहणस्स चारगपालस्स बहवे लोहखीलाण य कडगसक्कराण य चम्मपट्टाण य अल्लपट्टाण य पुंजा य निगरा य संनिक्खित्ता चिट्ठंति।

तस्स णं दुज्जोहणस्स चारगपालस्स बहवे सूईण य डभणाण य कोट्टिल्लाण य पुंजा य निगरा य संनिक्खित्ता चिट्ठंति।

तस्स णं दुज्जोहणस्स चारगपालस्स बहवे पच्छाण (सत्थाण) य पिप्पलाण य कुहाडाण य नहच्छेयणाण य दब्भतिणाण य पुंजा य निगरा य संनिक्खित्ता चिट्ठंति।

---

१ तृ. अ., सूत्र ४

७—दुर्योधन नामक उस चारकपाल के निम्न चारकभाण्ड—कारागार सम्बन्धी साधन—उपकरण थे। अनेक प्रकार की लोहमय कुण्डियाँ थी, जिनमे से कई एक ताम्र से पूर्ण थी, कई एक त्रपु-रागा से परिपूर्ण थो, कई एक सीसे से भरी थी तो कितनीक चूर्णमिश्रित जल (जिस जल का स्पर्श होते ही जलन उत्पन्न हो जाय) से भरी हुई थी और कितनीक क्षारयुक्त तैल से भरी थी जो कि अग्नि पर रक्खी रहती थी।

दुर्योधन नामक उस चारकपाल के पास उष्ट्रिकाएँ—उष्ट्रो के पृष्ठ भाग के समान बडे-बडे वर्तन (मटके) थे—उनमे से कई एक अश्वमूत्र से भरे हुए थे, कितनेक हाथी के मूत्र से भरे हुए थे, कितने उष्ट्रमूत्र से, कितनेक गोमूत्र से, कितनेक महिषमूत्र से, कितनेक बकरे के मूत्र से तो कितनेक भेडो के मूत्र से भरे हुए थे।

उस दुर्योधन चारकपाल के पास अनेक हस्तान्दुक (हाथ मे बाँधने का काण्ठ-निर्मित बन्धन विशेष) पादान्दुक (पैर मे बाधने का बन्धनविशेष) हडि—काठ की बेडी, निगड-लोहे की बेडी और शृ खला—लोहे की जञ्जीर के पु ज (शिखरयुक्त राशि) तथा निकर (शिखर रहित ढेर) लगाए हुए रक्खे थे।

तथा उस दुर्योधन चारकपाल के पास वेणुलताओ—वास के चाबुको, वेत के चाबुको, चिचा-इमली के चाबुको, कोमल चर्म के चाबुको, सामान्य चर्मयुक्त चाबुको, वल्कलरश्मियो— वृक्षो की त्वचा से निर्मित्त चाबुको के पु ज व निकर रक्खे रहते थे।

उस दुर्योधन चारकपाल के पास अनेक शिलाओ, लकडियो मुद्गरो और कनगरो—जल मे चलने वाले जहाज आदि को स्थिर करने वाले यन्त्रविशेष—के पुञ्ज व निकर रखे रहते थे।

उस दुर्योधन चरकपाल के पास चमडे की रस्सियो, सामान्य रस्सियो, बल्कल रज्जुओ, छाल से निर्मित्त रस्सियो, केशरज्जुओ (ऊनी रस्सियो) और सूत्र रज्जुओ (सूती रस्सियो) के पुञ्ज व निकर रक्खे रहते थे।

उस दुर्योधन चारकपाल के पास असिपत्र (कृपाण) करपत्र (आरा) क्षुरपत्र (उस्तरा) और कदम्बचीरपत्र (शस्त्र—विशेष) के भी पुञ्ज व निकर रक्खे रहते थे।

उस दुर्योधन चारकपाल के पास लोहे की कीलो, वास की सलाइयो, चमडे के पट्टो व अल्लपट्ट-विच्छू की पू छ के आकार जैसे शस्त्र-विशेष के पुञ्ज व निकर रक्खे हुए थे।

उस दुर्योधन चारकपाल के पास अनेक सुइयो, दम्भनो-अग्नि मे तपाकर जिनसे शरीर मे दाग दिया जाता है, ऐसी सलाइयो तथा लघु मुद्गरो के पुञ्ज व निकर रखे हुए थे।

उस दुर्योधन के पास अनेक प्रकार के शस्त्र, पिप्पल (छोटे छुरे) कुठार-कुल्हाडो, नखच्छेदक-नेहरनो एव डाभ के अग्रभाग से तीक्ष्ण हथियारो के पुञ्ज व निकर रक्खे हुए थे।

८—तए ण से दुज्जोहणे चारगपालए सीहरहस्स रन्नो बहवे चोरे य पारदारिए य गठिभेए य रायावयारी य अणहारए य बालघायए य विस्संभघायए य जूयगरे य खंडपट्टे य पुरिसेहिं गिण्हावेइ, गिण्हावित्ता उत्ताणए पाडेइ, पाडेत्ता लोहदण्डेण मुह विहाडेइ, विहाडित्ता अप्पेगइए तत्ततब पज्जेइ, अप्पेगइए तउय पज्जेइ, अप्पेगइए सीसग पज्जेइ, अप्पेगइए कलकल पज्जेइ, अप्पेगइए

खारतेल्लं पज्जेइ, अप्पेगइयाणं तेण चेव अभिसेयगं करेइ।

अप्पेगइए उत्ताणए पाडेइ, पाडित्ता, आसमुत्त पज्जेइ, अप्पेगइए हत्थिमुत्तं पज्जेइ, जाव एलमुत्तं पज्जेइ।

अप्पेगइए हेट्ठामुहे पाडेइ, छडछडस्स[1] वम्भावेइ, वम्मावित्ता अप्पेगइए तेणं चेव ओवोलं दलयइ।

अप्पेगइए हत्थंदुयाइ बन्धावेइ, अप्पेगइए पायदुए बन्धावेइ, अप्पेगइए हडिबन्धणं करेइ, अप्पेगइए नियडबन्धणं करेइ, अप्पेगइए संकोडियमोडियय करेइ, अप्पेगइए सकलबंधणं करेइ।

अप्पेगइए हत्थछिन्नए करेइ जाव सत्थोवाडियं करेइ, अप्पेगइए वेणुलयाहि य जाव वायरासीहि य हणावेइ।

अप्पेगइए उत्ताणए कारवेइ, कारेत्ता उरे सिलं दलावेइ, तओ लउडं छुहावेइ, छुहावित्ता पुरिसेहिं उक्कपावेइ। अप्पेगइए तंतीहि य जाव सुत्तरज्जुहि य हत्थेसु पाएसु य बधावेइ, अगडंसि ओचूलयालगं पज्जेइ, अप्पेगइए असिपत्तेहि य जाव कलंबचीरपत्तेहि य पच्छावेइ, पच्छावेत्ता खारतेल्लेण अब्भिगावेइ।

अप्पेगइए निडालेसु य अवदूसु य कोप्परेसु य जाणूसु य खलुएसु य लोहकीलए य कडसक्कराओ य दवावेइ, अलिए भजावेइ।

अप्पेगइए सूईओ डंभणाणि य हत्थंगुलियासु य पायगुलियासु य कोट्टिल्लएहि य आउडावेइ, आउडावेत्ता भूमिं कडूयावेइ।

अप्पेगइए सत्थेहि य जाव (अप्पेगइए पिप्पलेहि ए, अप्पेगइए कुहाडेहि य, अप्पेगइए) नहच्छेयणेहि य अंगं पच्छावेइ, दब्भेहि य कुसेहि य ओल्लवद्धे हि य वेढावेइ, वेढावेत्ता आयवंसि दलयइ, दलइत्ता सुक्के समाणे चडचडस्स उप्पावेइ।

तदनन्तर वह दुर्योधन चारपालक सिंहरथ राजा के अनेक चोर, परस्त्रीलम्पट, ग्रन्थिभेदक-गाठकतरो, राजा के अपकारी-दुश्मनो, ऋणधारक—ऋण लेकर वापिस नही करने वालो, वालघातको, विश्वासघातियो, जुआरियो और धूर्त पुरुषो को राजपुरुषो के द्वारा पकडवाकर ऊर्ध्वमुख—सीधा—चित्त गिराता है और गिराकर लोहे के दण्डे से मुख को खोलता है और खोलकर कितनेएक को तप्त ताबा पिलाता है, कितनेएक को रागा, सीसक, चूर्णादिमिश्रित जल अथवा कलकल करता हुआ अत्यन्त उष्ण जल और क्षारयुक्त तैल पिलाता है तथा कितनो का इन्ही से अभिषेक कराता है।

कितनो को ऊर्ध्वमुख गिराकर उन्हे अश्वमूत्र हस्तिमूत्र यावत् भेडो का मूत्र पिलाता है। कितनो को अधोमुख गिराकर छल छल शब्द पूर्वक (छड-छड शब्द पूर्वक) वमन कराता है और कितनो को उसी के द्वारा पीडा देता है।

कितनो को हथकडियो बेडियो से, हडिबन्धनो से व निगडवन्धनो बद्ध करता है। कितनो के शरीर को सिकोडता व मरोडता है। कितनो को साकलो से वाधता है, तथा कितनो का हस्तच्छेदन यावत् शस्त्रो से चीरता-फाडता है। कितनो को वेणुलताओ यावत् वृक्षत्वचा के चावुको से पिटवाता है।

---

१ इस पद के स्थान मे 'घलघलस्स तथा वलस्स' पाठ भी आता है।

कितनो को ऊर्ध्वमुख गिराकर उनकी छाती पर शिला व लक्कड रखवा कर उत्कम्पन (ऊपर नीचे) कराता है कि जिससे हड्डियाँ टूट जाएँ।

कितनो के चर्मरज्जुओ व सूत्ररज्जुओ से हाथो और पैरो को बँधवाता है, बधवाकर कुए मे उल्टा लटकवाता है, लटकाकर गोते खिलाता है। कितनो का असिपत्रो यावत् कलम्बचीरपत्रो से छेदन कराता हे और उस पर क्षारमिश्रित तैल से मर्दन कराता है।

कितनो के मस्तको, कण्ठमणियो, घटियो, कोहनियो, जानुओ तथा गुल्फो-गिट्टो मे लोहे की कीलो को तथा वास की शालाकाओ को ठुकवाता है तथा वृश्चिककण्टको-बिच्छु के काटो को शरीर मे प्रविष्ट कराता है।

कितनो के हाथ की अगुलियो तथा पैर की अगुलियो मे मुद्गरो के द्वारा सूइयो तथा दम्भनो—दागने के शस्त्रविशेषो को प्रविष्ट कराता है तथा भूमि को खुदवाता है।

कितनो का शस्त्रो व नेहरनो से अङ्ग छिलवाता है और दर्भो—मूलसहितकुशाओ, कुशाओ—मूलरहित कुशाओ तथा आर्द्र चर्मो द्वारा बधवाता है। तदनन्तर धूप मे गिराकर उनके सूखने पर चड चड शब्द पूर्वक उनका उत्पाटन कराता है।

आचार का दुष्परिणाम

९—तए णं से दुज्जोहणे चारगपालए एयकम्मे एयप्पहाणे एयविज्जे एयसमायारे सुबहुं पावकम्म समज्जिणित्ता एगतीसं वाससयाइं परमाउय पालइत्ता कालमासे कालं किच्चा छट्ठीए पुढवीए उक्कोसेणं बावीससागरोवमट्ठिइएसु नेरइएसु नेरइयत्ताए उववन्ने।

९—इस तरह वह दुर्योधन चारकपालक इस प्रकार की निर्दयतापूर्ण प्रवृत्तियो को अपना कर्म, विज्ञान व सर्वोत्तम आचरण वनाए हुए अत्यधिक पापकर्मों का उपार्जन करके ३१ सौ वर्ष की परम आयु भोगकर कालमास मे काल करके छठे नरक मे उत्कृष्ट २२ सागरोपम की स्थिति वाले नारकियो मे नारक रूप मे उत्पन्न हुआ।

१०—से ण तओ अणतर उव्वट्टित्ता इहेव महुराए नगरीए सिरिदामस्स रन्नो बन्धुसिरीए देवीए कुच्छिसि पुत्तत्ताए उववन्ने। तए ण बन्धुसिरी नवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं जाव दारगं पयाया। तए णं तस्स दारगस्स अम्मापियरो निव्वत्ते बारसाहे इमं एयारूवं नामधेज्ज करेंति—'होउ ण अम्ह दारगे नंदिसेणे नामेण'।

तए णं से नन्दिसेणे कुमारे पचधाईपरिवुडे जाव परिवड्ढइ। तए ण से नंदिसेणे कुमारे उम्मुक्कबालभावे जाव विहरइ, जोव्वणगमणुप्पत्ते जुवराया जाए यावि होत्था।

तए णं से नदिसेणे कुमारे रज्जे य जाव अतेउरे य मुच्छिए इच्छइ सिरिदामं राय जीवियाओ ववरोवेत्तए, सयमेव रज्जसिरिं कारेमाणे, पालेमाणे विहरित्तए। तए ण से नदिसेणे कुमारे सिरिदामस्स रन्नो बहूणि अंतराणि य छिद्दाणि य विवराणि य पडिजागरमाणे विहरइ।

१०—तदनन्तर वह दुर्योधन चारकपाल का जीव छट्ठे नरक से निकलकर इसी मथुरा नगरी मे श्रीदाम राजा की बन्धुश्री देवी की कुक्षि मे पुत्ररूप से उत्पन्न हुआ। तदनन्तर लगभग नव मास परिपूर्ण होने पर बन्धुश्री ने बालक को जन्म दिया। तत्पश्चात् बारहवे दिन माता-पिता ने नवजात बालक का नन्दिषेण नाम रक्खा।

तदनन्तर पाँच धायमाताओ से सार-सभाल किया जाता हुआ नन्दिषेण कुमार वृद्धि को प्राप्त होने लगा। जब वह बाल्यावस्था को पार करके युवावस्था को प्राप्त हुआ तब युवराज पद से अलकृत भी हो गया।

तत्पश्चात् राज्य और अन्त पुर मे अत्यन्त आसक्त नदिषेण कुमार श्रीदाम राजा को मारकर स्वय ही राज्यलक्ष्मी को भोगने एव प्रजा का पालन करने की इच्छा करने लगा। एतदर्थ कुमार नन्दिषेण श्रीदाम राजा के अनेक अन्तर—अवसर, छिद्र—जिस समय पारिवारिक व्यक्ति नही हो, अथवा विरह--कोई भी पास न हो, राजा अकेला ही हो—ऐसे अवसर की प्रतीक्षा करने लगा।

पितृवध का दुःसंकल्प

११—तए णं से नन्दिसेणे कुमारे सिरिदामस्स रन्नो अतर अलभमाणे अन्नया कयाइ चित्तं अलकारिय सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एव वयासी—'तुम्हे ण देवाणुप्पिया! सिरिदामस्स रन्नो सव्वट्ठाणेसु य सव्वभूमीसु य अतेउरे य दिन्नवियारे सिरिदामस्स रन्नो अभिक्खण अभिक्खणं अलंकारिय कम्म करेमाणे विहरसि। त णं तुमं देवाणुप्पिया! सिरिदामस्स रन्नो अलकारिय कम्मं करेमाणे गीवाए खुर निवेसेहि।

तो णं अहं तुम्हं अद्धरज्जय करिस्सामि। तुम अम्हेहि सद्धि उरालाइ भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरिस्ससि।'

तए णं से चित्ते अलकारिए नंदिसेणस्स कुमारस्स एयमट्ठ पडिसुणेइ।

११—तदनन्तर श्रीदाम नरेश के वध का अवसर प्राप्त न होने से कुमार नन्दिषेण ने किसी अन्य समय चित्र नामक अलकारिक-नाई को बुलाकर इस प्रकार कहा—देवानुप्रिय! तुम श्रीदाम नरेश के सर्वस्थानो, सर्वभूमिकाओ तथा अन्त पुर मे स्वेच्छापूर्वक आ-जा सकते हो और श्रीदाम नरेश का बारम्बार क्षौरकर्म करते हो। अत हे देवानुप्रिय! यदि तुम श्रीदाम नरेश के क्षौरकर्म करने के अवसर पर उसकी गरदन मे उस्तरा घुसेड दो—इस प्रकार तुम्हारे हाथो नरेश का वध हो जाय तो मैं तुमको आधा राज्य दे दूँगा। तब तुम भी हमारे साथ उदार-प्रधान कामभोगो का उपभोग करते हुए सानन्द समय व्यतीत कर सकोगे। चित्र नामक नाई ने कुमार नन्दिषेण के उक्त कथन को स्वीकार कर लिया।

षड्यंत्र विफल : घोर कदर्थना

१२—तए णं तस्स चित्तस्स अलकारियस्स इमेयारूवे जाव (अज्झत्थिए चिंतिए कप्पिए पत्थिए मणोगए संकप्पे) समुप्पज्जित्था—'जइ णं मम सिरिदामे राया एयमट्ठ आगमेइ, तए ण मम न नज्जइ केणइ असुमेणं कुमारेणं मारिस्सइत्ति। कट्टु भीए जेणेव सिरिदामे राया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सिरिदाम राय रहस्सियगं करयलपरिग्गहिय सिरसावत्त मत्थए अंजलि कट्टु एवं वयासी—

'एवं खलु सामी! नदिसेणे कुमारे रज्जे य जाव मुच्छिए इच्छइ तुम्मे जीवियाओ ववरोवित्ता सयमेव रज्जसिरिं कारेमाणे पालेमाणे विहरित्तए।'

तए ण से सिरिदामे राया चित्तस्स अलकारियस्स एयमट्ठ सोच्चा निसम्म आसुरुत्ते जाव साहट्टु नंदिसेणं कुमारं पुरिसेहिं गिण्हावेइ, गिण्हावित्ता एएण विहाणेण वज्झ आणवेइ।

'तं एवं खलु गोयमा ! नन्दिसेणे पुत्ते जाव विहरइ।'

१२—परन्तु कुछ ही समय के बाद चित्र अलकारिक के मन मे यह विचार उत्पन्न हुआ कि यदि किसी प्रकार से श्रीदाम नरेश को इस षड्यन्त्र का पता लग गया तो न मालूम वे मुझे किस कुमौत से मारेंगे। इस विचार के उद्भव होते ही वह भयभीत हो उठा और एकान्त मे गुप्त रूप से जहां महाराजा श्रीदाम थे, वहाँ पर आया। एकान्त मे दोनो हाथ जोडकर मस्तक पर अञ्जलि कर विनयपूर्वक इस प्रकार बोला—

'स्वामिन् ! निश्चय ही नन्दिषेण कुमार राज्य मे आसक्त यावत् अध्युपपन्न होकर आपका वध करके स्वय ही राज्यलक्ष्मी भोगना चाह रहा है।'

तब श्रीदाम नरेश ने चित्र अलकारिक से इस बात को सुनकर, उस पर विचार किया और अत्यन्त क्रोध मे आकर नन्दिषेण को अपने अनुचरो द्वारा पकडवाकर इस पूर्वोक्त विधान—प्रकार से मार डालने का राजपुरुषो को आदेश दिया।

भगवान् कहते है—'हे गौतम ! नन्दिषेण पुत्र इस प्रकार अपने किये अशुभ पापमय कर्मों के फल को भोग रहा है।'

नन्दिषेण का भविष्य

'नन्दिसेणे कुमारे इओ चुए कालमासे काल किच्चा कहिं गच्छिहिइ ? कहिं उववज्जिहिइ ?'

'गोयमा ! नन्दिसेणे कुमारे सट्ठिवासाइ परमाउय पालइत्ता कालमासे कालं किच्चा इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए—संसारो तहेव।

तओ हत्थिणाउरे नयरे मच्छत्ताए उववज्जिहिइ। से णं तत्थ मच्छिएहिं वहिए समाणे तत्थेव सेट्ठिकुले पुत्तत्ताए पच्चायाहिइ। बोहिं सोहम्मे कप्पे—महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ, बुज्झिहिइ मुच्चिहिइ, परिनिव्वाहिइ, सव्वदुक्खाण अत करेहिइ।

निक्खेवो।

गौतम स्वामी ने भगवान् से पूछा कि—भगवान् ! नन्दिषेण कुमार मृत्यु के समय मे यहा से काल करके कहा जायगा ? कहाँ उत्पन्न होगा ?

भगवान् ने उत्तर दिया—हे गौतम ! यह नन्दिषेण कुमार साठ वर्ष की परम आयु को भोगकर मृत्यु के समय मे मर करके इस रत्नप्रभा नामक पृथ्वी-नरक मे उत्पन्न होगा। इसका शेष ससार-भ्रमण मृगापुत्र के अध्ययन की तरह समझ लेना यावत् वह पृथ्वीकाय आदि सभी कायो मे लाखो बार उत्पन्न होगा।

पृथ्वीकाय से निकलकर हस्तिनापुर नगर मे मत्स्य के रूप मे उत्पन्न होगा। वहा मच्छीमारो के द्वारा वध को प्राप्त होकर फिर वही हस्तिनापुर नगर मे एक श्रेष्ठि-कुल मे पुत्ररूप मे उत्पन्न होगा। वहाँ से महाविदेह क्षेत्र मे जन्म लेगा। वहा पर चारित्र ग्रहण करेगा और उसका यथाविधि पालन कर उसके प्रभाव से सिद्ध होगा, बुद्ध होगा, मुक्त होगा और परमनिर्वाण को प्राप्त कर सर्व प्रकार के दु खो का अन्त करेगा।

॥ छठा अध्ययन समाप्त ॥

सप्तम अध्ययन

उम्बरदत्त

प्रस्तावना

१—'जइ ण भंते!' उक्खेवो सत्तमस्स ।

१—अहो भगवन्! यदि श्रमण भगवान् महावीर ने दु खविपाक के छट्ठे अध्ययन का यह अर्थ कहा है तो भगवान् ने सातवें अध्ययन का क्या अर्थ कहा है? इस प्रकार सप्तम अध्ययन के उत्क्षेप की भावना पूर्ववत् जान लेनी चाहिये ।

२—एवं खलु, जंबू! तेणं कालेण तेणं समएण पाडलिसडे नयरे । वणखडे नामं उज्जाणे । उंबरदत्ते जक्खे । तत्थ णं पाडलिसडे नयरे सिद्धत्थे राया ।

तत्थ णं पाडलिसंडे नयरे सागरदत्ते सत्थवाहे होत्था, अड्ढे० । गगदत्ता भारिया । तस्स सागरदत्तस्स पुत्ते गंगदत्ताए भारियाए अत्तए उम्बरदत्तनामं दारए होत्था—अहीणपडिपुण्णपंचिदिय-सरीरे ।

हे जम्बू! उस काल तथा उस समय मे पाटलिखड नाम का एक नगर था । वहाँ वनखण्ड नाम का उद्यान था । उस उद्यान मे उम्बरदत्त नामक यक्ष का यक्षायतन था । उस नगर मे सिद्धार्थ नामक राजा राज्य करता था ।

पाटलिखण्ड नगर मे सागरदत्त नामक एक धनाढ्य सार्थवाह रहता था । उसकी गङ्गदत्ता नाम की भार्या थी । उस सागरदत्त का पुत्र व गङ्गदत्ता भार्या का आत्मज उम्बरदत्त नाम का अन्यून व परिपूर्ण पञ्चेन्द्रियो से युक्त सुन्दर शरीर वाला एक पुत्र था ।

३—तेणं कालेण तेणं समएण समणस्स भगवओ समोसरण, जाव परिसा पडिगया ।

३—उस काल और उस समय श्रमण भगवान् महावीर वहा पधारे, यावत् धर्मोपदेश सुनकर राजा तथा परिषद् वापिस चले गये ।

उम्बरदत्त का वर्त्तमान भव

४—तेणं कालेणं तेणं समणेण भगवं गोयमे, तहेव जेणेव पाडलिसंडे नयरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पाडलिसंड नयर पुरत्थिमिल्लेणं दुवारेणं अणुप्पविसइ, अणुप्पविसित्ता तत्थ णं पासइ एगं पुरिसं कच्छुल्लं कोढियं दोउयरियं, भगदरियं अरिसिल्लं कासिल्लं सासिल्लं सोगिलं सुयमुहं सूयहत्थं सडियपायंगुलियं सडियकण्णनासियं रसियाए य पूइएण य थिविथिवियवणमुहकिमिउत्तयत-

पगलंत-पूयरुहिर लालापगलतकण्णनासं अभिक्खण अभिक्खण पूयकवले य रुहिरकवले य किमियकवले य वममाण कट्ठाइ कलुणाइ विसराइ कूयमाण मच्छियाचडगरपहकरेण अन्निज्जमाणमग्ग फुट्टहडाहडसीस दण्डिखडवसण खडमल्ल-खडघड-हत्थगय गेहे-गेहे देह वलियाए वित्ति कप्पेमाणं पासइ । तया भगव गोयमे उच्च-नीय-मज्झिम-कुलाइ जाव अडमाणे अहापज्जत्त समुदाणं गिण्हइ, गिण्हित्ता पाडलिसंडाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता जेणेव समणे भगव महावीरे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता भत्तपाण आलोएइ, भत्तपाण पडिदसेइ, पडिदसित्ता समणेण अब्भणुन्नाए समाणे जाव बिलमिव पन्नगभूएण अप्पाणेण आहारमाहारेइ, सजमेण तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ ।

४—उस काल तथा उस समय भगवान् गौतम स्वामी षष्ठतप-वेले के पारणे के निमित्त भिक्षा के लिये पाटलिषण्ड नगर मे जाते है । उस पाटलिषण्ड नगर मे पूर्वदिशा के द्वार मे प्रवेश करते है । वहाँ एक पुरुष को देखते हैं, जिसका वर्णन निम्न प्रकार है—

वह पुरुष कण्डू—खुजली के रोग से युक्त, कोढ के रोगवाला, जलोदर, भगन्दर तथा बवासीर-अर्श के रोग से ग्रस्त था । उसे खासी, श्वास व सूजन का रोग भी हो रहा था । उसका मुख सूजा हुआ था । हाथ और पैर भी सूजे हुए थे । हाथ और पैर की अङ्गुलिया सडी हुई थी, नाक और कान गले हुए थे । व्रणो (घावो) से निकलते सफेद गन्दे पानी तथा पीव से वह 'थिव थिव' शव्द कर रहा था । (अथवा विलविलाते हुए) कृमियो से अत्यन्त ही पीडित तथा गिरते हुए पीव और रुधिरवाले व्रणमुखो से युक्त था । उसके कान और नाक क्लेदतन्तुओ—फोडे के वहाव के तारो से गल चुके थे । बारबार वह पीव के कवलो-ग्रासो का, रुधिर के कवलो का तथा कृमियो के कवलो का वमन कर रहा था । वह कष्टोत्पादक, करुणाजनक एव दीनतापूर्ण शब्द कर रहा था । उसके पीछे-पीछे मक्षिकाओ के झुण्ड के झुण्ड चले जा रहे थे । उसके सिर के बाल अस्तव्यस्त थे । उसने थिगलीवाले वस्त्रखड धारण कर रक्खे थे । फूटे हुए घडे का टुकडा उसका भिक्षापात्र था । सिकोरे का खंड उसका जल-पात्र था, जिसे वह हाथ मे लिए हुए घर-घर मे भिक्षावृत्ति के द्वारा आजीविका कर रहा था ।

इधर भगवान् गौतम स्वामी ऊँच, नीच और मध्यम घरो मे भिक्षार्थ भ्रमण करते हुए और यथेष्ट भिक्षा लेकर पाटलिषण्ड नगर से निकलकर जहाँ श्रमण भगवान् महावीर स्वामी विराजमान थे, वहाँ पर आये । आकर भक्तपान की अलोचना की और लाया हुआ आहार-पानी भगवान् को दिखाया । दिखलाकर उनकी आज्ञा मिल जाने पर बिल मे प्रवेश करते हुए सर्प की भाति—विना रस लिये ही—आहार करते है और सयम तथा तप से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरण करने लगे ।

५—तए ण से भगव गोयमे दोच्च पि छट्ठक्खमणपारणगसि पढमाए पोरिसीए सज्झायं जाव पाडलिसड नयर दाहिणिल्लेण दुवारेण अणुप्पविसइ, त चेव पुरिसं पासइ—कच्छुल्लं तहेव जाव सजमेण तवसा विहरइ ।

५—उसके बाद भगवान् गौतम स्वामी ने दूसरी बार वेले के पारणे के निमित्त प्रथम प्रहर मे स्वाध्याय किया यावत् भिक्षार्थ गमन करते हुए पाटलिषण्ड नगर मे दक्षिण दिशा के द्वार से प्रवेश किया तो वहा पर भी उन्होने कडू आदि रोगो से युक्त उसी पुरुप को देखा और वे भिक्षा लेकर वापिस आये । यावत् तप व सयम से आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे ।

६—तए ण से गोयमे तच्चं पि छट्ठक्खमणपारणगंसि तहेव जाव पच्चत्थिमिल्लेण दुवारेण अणुपविसमाणे त चेव पुरिस पासइ कच्छुल्ल !

६—तदनन्तर भगवान् गौतम तीसरी वार वेले के पारण के निमित्त उसी नगर मे पश्चिम दिशा के द्वार से प्रवेश करते हैं, तो वहाँ पर भी वे उसी पूर्ववर्णित पुरुष को देखते है ।

पूर्वभव संबंधी पृच्छा

७—भगव गोयमे चउत्थं पि छट्ठक्खणपारणगसि उत्तरेण० । इमेयारूवे अज्झत्थिए समुप्पन्ने—'अहो ण इमे पुरिसे पुरापोराणाण जाव एवं वयासी—एवं खलु अहं, भंते ! छट्ठ० जाव रीयते जेणेव पाडलिसंडे नयरे तेणेव उवागच्छामि, उवागच्छित्ता पाडलिसंडे पुरत्थिमिल्लेणं दुवारेणं अणुपविट्ठे । तत्थ णं एगं पुरिसं पासामि कच्छुल्लं जाव वित्ति कप्पेमाणं । तए अह दोच्चछट्ठक्खमणपारणगसि दाहिणिल्लेण दुवारेण, तहेव । तच्चपि छट्ठक्खमणपारणगंसि पच्चत्थिमेणं, तहेव । तए णं अह चउत्थं वि छट्ठक्खमणपारणगसि उत्तरदुवारेणं अणुप्पविसामि, तं चेव पुरिस पासामि कच्छुल्लं जाव वित्ति कप्पेमाणे विहरइ । चिन्ता मम ।' पुव्वभवपुच्छा ।—वागरेइ ।

७—इसी प्रकार गौतम चौथी वार वेले के पारणे केलिये पाटलिषण्ड मे उत्तरदिशा के द्वार से प्रवेश करते हैं । तव भी उन्होने उसी पुरुप को देखा । उसे देखकर मन मे यह सकल्प हुआ कि—अहो ! यह पुरुप पूर्वकृत अशुभ कर्मो के कटु-विपाक को भोगता हुआ दु ख पूर्ण जीवन व्यतीत कर रहा है यावत् वापिस आकर उन्होने भगवान् से कहा—

'भगवन् ! मैने वेले के पारणे के निमित्त यावत् पाटलिषण्ड नगर की ओर प्रस्थान किया और नगर के पूर्व दिशा के द्वार से प्रवेश किया तो मैंने एक पुरुप को देखा जो कण्डूरोग से आक्रान्त यावत् भिक्षावृत्ति से आजीविका कर रहा था । फिर दूसरी वार पुन छठे के पारणे के निमित्त भिक्षा के लिये उक्त नगर के दक्षिण दिशा के द्वार से प्रवेश किया तो वहाँ पर उसी पुरुष को उसी रूप मे देखा । तीसरी वार पारणे के निमित्त पश्चिम दिशा के द्वार से प्रवेश किया तो वहाँ पर भी पुन उसी पुरुप को उसी अवस्था मे देखा और जव चौथी वार मे वेले के पारण के निमित्त पाटलिखण्ड मे उत्तर दिग्द्वार से प्रविष्ट हुआ तो वहाँ पर भी कडूरोग से ग्रस्त भिक्षावृत्ति करते हुए उस पुरुष को देखा । उसे देखकर मेरे मानस मे यह विचार उत्पन्न हुआ कि अहो ! यह पुरुष पूर्वोपार्जित अशुभ कर्मो का फल भुगत रहा है, इत्यादि ।

प्रभो ! यह पुरुप पूर्वभव मे कौन था ? जो इस प्रकार भीपण रोगो से आक्रान्त हुआ कष्टपर्ण जीवन व्यतीत कर रहा है ? भगवान् महावीर स्वामी ने उत्तर देते हुए कहा—

पूर्वभव-वर्णन

८—एवं खलु गोयमा ! तेणं कालेण तेणं समएणं इहेव जम्बुद्दीवे दीवे भारहेवासे विजयपुरे नामं नयर होत्था, रिद्धत्थिमियसमिद्धे । तत्थ ण विजयपुरे नयरे कणगरहे नामं राया होत्था । तस्स णं कणगरहस्स रन्नो धन्नंतरी नामं वेज्जे होत्था ।

अट्ठ गाउव्वेयपाढए, तजहा—कुमारभिच्च सालागे सल्लहत्ते कायतिगिच्छा जंगोले भूयविज्जा रसायणे वाजीकरणे। सिवहत्थे सुहहत्थे लहुहत्थे।

८—हे गौतम! उस काल और उस समय मे इस जम्बूद्वीप नामक द्वीप के अन्तर्गत भारतवर्ष मे विजयपुर नाम का ऋद्ध, स्तिमित व समृद्ध नगर था। उसमे कनकरथ नाम का राजा राज्य करता था। उस कनकरथ का धन्वन्तरि नाम का वैद्य था जो आयुर्वेद के आठो अङ्गो का ज्ञाता था। आयुर्वेद के आठो अङ्गो का नाम इस प्रकार है—

१—कौमारभृत्य—आयुर्वेद का एक अङ्ग जिसमे कुमारो के दुग्धजन्य दोषो के उपशमन का मुख्य वर्णन हो।

२—शालाक्य—जिनमे नयन, नाक आदि ऊर्ध्वभागो के रोगो की चिकित्सा का प्रतिपादन किया गया हो।

३—शाल्यहत्य—आयुर्वेद का वह अङ्ग जिसमे शल्य-कण्टक, गोली आदि निकालने की विधि का वर्णन किया गया हो।

४—कायचिकित्सा—शरीर सबधी रोगो की प्रतिक्रिया—इलाज का प्रतिपादक आयुर्वेद का एक अङ्ग

५—जागुल—आयुर्वेद का वह विभाग जिसमे विषो की चिकित्सा का विधान है।

६—भूतविद्या—आयुर्वेद का वह भाग जिसमे भूत-निग्रह का प्रतिपादन हो।

७—रसायन—आयु को स्थिर करने वाली व व्याधि-विनाशक औषधियो का विधान करने वाला प्रकरण विशेष।

८—वाजीकरण—बल-वीर्यवर्द्धक औषधियो का विधायक आयुर्वेद का अग।

वह धन्वन्तरि वैद्य शिवहस्त—(जिसका हाथ कल्याण उत्पन्न करने वाला हो) शुभहस्त—(जिसका हाथ शुभ अथवा सुख उपजाने वाला हो) व लघुहस्त—(जिसका हाथ कुशलता से युक्त हो) था।

९—तए णं से धन्नंतरी वेज्जे विजयपुरे नयरे कणगरहस्स रन्नो अंतेउरे य अन्नेसिं च बहूणं राईसर जाव सत्थवाहाण अन्नेसिं च बहूणं दुब्बलाण य गिलाणाण य वाहियाण य रोगियाण य अणाहाण य सणाहाण य समणाण य माहणाण य भिक्खगाण य करोडियाण य कप्पडियाण य आउराण य अप्पेगइयाणं मच्छमंसाइं उवदेसेइ, अप्पेगइयाण कच्छपमंसाइं, अत्थेगइयाणं गोहामंसाइं, अप्पेगइयाण मगरमसाइं, अप्पेगइयाइं सुसुमारमसाइ, अप्पेगइयाणं अयमंसाइं एवं एलय-रोज्झ-सूयर-मिग-ससय-गोमंस-महिसमसाइं, अप्पेगइयाइ तित्तिरमंसाइं, अप्पेगइयाणं वट्टक-लावक-कवोय-कुक्कुड-मयूर-मसाइ अन्नेसिं च बहूणं जलयर-थलयर-खहयर-माईणं मंसाइ उवदेसेइ। अप्पणा वि य णं से धन्नंतरी वेज्जे तेहिं बहूहिं मच्छमंसेहि य जाव मयूरमसेहि य अन्नेहि य बहूहिं जलयर-थलयर-खहयर-मंसेहिं य सोल्लेहि य तलिएहि य भज्जिए हि य सुरं च महुं च मेरगं च आइं च सीधुं च आसाएमाणे विसाएमाणे परिभाएमाणे परिभुंजेमाणे विहरइ।

९—वह धन्वन्तरि वैद्य विजयपुर नगर के महाराज कनकरथ के अन्त पुर मे निवास करने वाली रानियो को तथा अन्य वहुत से राजा, ईश्वर (ऐश्वर्यवान् या राजकुमार) यावत् सार्थवाहो को तथा इसी तरह अन्य वहुत से दुर्वल ग्लान—मानसिक चिन्ता से उदास रहने वाले, रोगी, व्याधित या वाधित, रुग्ण व्यक्तियो को एव सनाथो, अनाथो, श्रमणो-ब्राह्मणो, भिक्षुको, करोटिको-कापालिको, कार्पटिको—कन्थाधारी भिक्षुको अथवा भिखमगो और आतुरो की चिकित्सा किया करता था। उनमे से कितने को मत्स्यमास खाने का उपदेश देता था, कितनो को कछुओ के मास का, कितनो को ग्राह—जलचरविशेष के मास का, कितनो को मगरो के मास का, कितनो को सु सुमारो के मास का, कितनो को वकरा के मास का अर्थात् इनका मास खाने का उपदेश दिया करता था। इसी प्रकार भेडो, गवयो, शूकरो, मृगो, शशको, गौओ और महिषो का मास खाने का भी उपदेश करता था।

कितनो को तित्तरो के मास का तो कितनो को वटेरो, लावको, कवूतरो, कुक्कुटो व मयूरो के मास का उपदेश देता। इसी भाति अन्य वहुत से जलचरो, स्थलचरो तथा खेचरो आदि के मास का उपदेश करता था। यही नही, वह धन्वन्तरि वैद्य स्वय भी उन अनेकविध मत्स्यमासो, मयूरमासो तथा अन्य वहुत से जलचर स्थलचर व खेचर जीवो के मासो से तथा मत्स्यरसो व मयूररसो से पकाये हुए, तले हुए, भूने हुए मासो के साथ पाच प्रकार की मदिराओ का आस्वादन व विस्वादन, परिभाजन एव वार-वार उपभोग करता हुआ समय व्यतीत करता था।

१०—तए ण से धन्नतरी वेज्जे एयकम्मे एयप्पहाणे एयविज्जे एयसमायारे सुवहुं पावं कम्म समज्जिणित्ता वत्तीस वाससयाइं परमाउयं पालइत्ता कालमासे काल किच्चा छट्ठीए पुढवीए उक्कोसेणं बावीससागरोपमट्ठिइएसु नेरइएसु नेरइयत्ताए उववन्ने।

१०—तदनन्तर वह धन्वन्तरि वैद्य इन्ही पापकर्मों वाला इसी प्रकार की विद्या वाला और ऐसा ही आचरण वनाये हुए, अत्यधिक पापकर्मों का उपार्जन करके ३२ सौ वर्ष की परम आयु को भोगकर काल मास मे काल करके छट्ठी नरकपृथ्वी मे उत्कृष्ट २२ सागरोपम की स्थिति वाले नारकियो मे नारक रूप से उत्पन्न हुआ।

११—तए ण सा गगदत्ता भारिया जायनिंदुया यावि होत्था, जाया जाया दारगा विणिहायमावज्जति। तए ण तीसे गगदत्ताए सत्थवाहीए अन्नया कयाइ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयसि कुडु बजागरिय जागरमाणीए अय अज्झत्थिए जाव समुप्पन्ने—'एव खलु, अह सागरदत्तेण सत्थवाहेण सद्धि बहूइं वासाइ उरालाइ माणुस्सगाइं भोगभोगाइ भु जमाणी विहरामि, नो चेव ण अहं दारग वा दारियं वा पयामि। तं धन्नाओ ण ताओ अम्मयाओ, सपुण्णाओ, कयत्थाओ, कयपुण्णाओ, कयलक्खणाओ ण ताओ अम्मयाओ, सुलद्धे ण तासि अम्मयाण माणुस्सए जम्मजीवियफले, जासि मन्ने नियगकुच्छिसंभूयाइं थणदुद्धलुद्धयाइ महुरसमुल्लावगाइ मम्मणपजपियाइ थणमूलकक्खदेसभागं अभिसरमाणयाइ मुद्धयाइं पुणो पुणो य कोमलकमलोवमेहिं हत्थेहिं गिण्हिऊण उच्छगे निवेसियाइ देंति समुल्लावए सुमहुरे पुणो पुणो मजुलप्पभणिए!

अह ण अधन्ना अपुण्णा अकयपुण्णा एत्तो एगमवि न पत्ता। तं सेय खलु मम कल्लं जाव जलते सागरदत्त सत्थवाहं आपुच्छित्ता सुवहुं पुप्फ-वत्थ-गध-मल्लालंकारं गहाय वहुमित्त-नाइ-नियग-

सयण-संबंधि-परियणमहिलाहिं सद्धि पाडलिसंडाओ नयराओ पडिनिक्खमित्ता बहिया जेणेव उंबर-दत्तस्स जक्खस्स जक्खाययणे तेणेव उवागच्छित्तए। तत्थ णं उंबरदत्तस्स जक्खस्स महरिहं पुप्फच्चणं करित्ता जन्नुपायवडियाए ओयाइत्तए—'जइ णं अहं देवाणुप्पिया ! दारगं वा दारियं वा पयामि, तो णं अहं तुब्भं जायं च दायं च भायं च अक्खनिहिं च अणुवड्ढइस्सामि।' त्ति कट्टु ओवाइयं ओवाइणित्तए।' एवं संपेहेइ, संपेहित्ता कल्लं जाव जलते जेणेव सागरदत्ते सत्थवाहे तेणेव उवागच्छइ, सागरदत्तं सत्थवाहं एवं वयासी—'एवं खलु अहं, देवाणुप्पिया ! तुब्भेहिं सद्धि जाव[1] न पत्ता। तं इच्छामि णं देवाणुप्पिया ! तुब्भेहिं अब्भणुन्नाया जाव[2] ओवाइणित्तए।'

तए णं से सागरदत्ते गंगदत्तं भारियं एवं वयासी—'मम पि णं, देवाणुप्पिए ! एस चेव मणोरहे, कहं तुमं दारगं दारियं वा पयाइज्जसि।' गंगदत्ताए भारियाए एयमट्ठं अणुजाणइ।

११—उस समय सागरदत्त की गङ्गदत्ता भार्या जातनिन्दुका (जिसके बालक जन्म लेने के साथ ही मृत्यु को प्राप्त हो जाते हों) थी। अतएव उसके बालक उत्पन्न होने के साथ ही मृत्यु को प्राप्त हो जाते थे। एक बार मध्यरात्रि मे कुटुम्ब सम्बन्धी चिन्ता से जागती उस गंगदत्ता सार्थवाही के मन मे जो संकल्प उत्पन्न हुआ, वह निम्न प्रकार है—मैं चिरकाल से सागरदत्त सार्थवाह के साथ मनुष्य सम्बन्धी उदार-प्रधान कामभोगो का उपभोग करती आ रही हूँ परन्तु मैंने आज तक जीवित रहने वाले एक भी बालक अथवा बालिका को जन्म देने का सौभाग्य प्राप्त नही किया है। वे माताएँ ही धन्य हैं तथा वे माताएँ ही कृतार्थ अथच कृतपुण्य हैं, उन्ही का वैभव सार्थक है और उन्होने ही मनुष्य सम्बन्धी जन्म और जीवन को सफल किया है, जिनके स्तनगत दूध मे लुब्ध, मधुर भाषण से युक्त, अव्यक्त तथा स्खलित-तुतलाते वचनवाले, स्तनमूल प्रदेश से काख तक अभिसरण-शील (मचलकर सरक जानेवाले) नितान्त सरल, कमल के समान कोमल सुकुमार हाथो से पकडकर गोद मे स्थापित किये जानेवाले व पुन पुन सुमधुर कोमल-मंजुल वचनो को बोलने वाले अपने ही कुक्षि-उदर से उत्पन्न हुए बालक या बालिकाएँ हैं। उन माताओ को मैं धन्य मानती हूँ। उनका जन्म भी सफल और जीवन भी सफल है।

मैं अधन्या हूँ, पुण्यहीन हूँ, मैंने पुण्योपार्जन नही किया है, क्योकि मैं इन बालसुलभ चेष्टाओ वाले एक सन्तान को भी उपलब्ध न कर सकी। अब मेरे लिये यही श्रेयस्कर है कि मैं प्रात काल, सूर्य के उदय होते ही, सागरदत्त सार्थवाह से पूछकर विविध प्रकार के पुष्प, वस्त्र, गन्ध, माला और अलङ्कार लेकर बहुत से ज्ञातिजनो, मित्रो, निजको, स्वजनो, सम्बन्धी जनो और परिजनो की महिलाओ के साथ पाटलिषण्ड नगर से निकलकर बाहर उद्यान मे, जहाँ उम्बरदत्त यक्ष का यक्षायतन है, वहा जाकर उम्बरदत्त यक्ष की महार्ह (बहुमूल्य) पुष्पार्चना करके और उसके चरणो मे नतमस्तक हो इस प्रकार प्रार्थनापूर्ण याचना करू—

'हे देवानुप्रिय ! यदि मैं अब जीवित रहनेवाले बालिका या बालक को जन्म दूं तो मै तुम्हारे याग-देव पूजा, दान—देय अंश, भाग—लाभ अंश व देव भंडार मे वृद्धि करूंगी।' इस प्रकार उपयाचना-ईप्सित वस्तु की प्रार्थना के लिये उसने निश्चय किया। निश्चय करने के अनन्तर प्रात काल सूर्योदय होने के साथ ही जहाँ पर सागरदत्त सार्थवाह था, वहाँ पर आई और आकर सागरदत्त सार्थवाह से इस प्रकार कहने लगी—'हे स्वामिन् ! मैंने आप के साथ मनुष्य सम्बन्धी सासारिक सुखो का

१-२ देखिए प्रस्तुत सूत्र के ही ऊपर का पाठ।

पर्याप्त उपभोग करते हुए आजतक एक भी जीवित रहने वाले बालक या बालिका को प्राप्त नही किया। अत मै चाहती हूँ कि यदि आप आज्ञा दे तो मैं अपने मित्रो, ज्ञातिजनो निजको, स्वजनो, सम्बन्धीजनो और परिजनो की महिलाओ के साथ पाटलिपण्ड नगर से बाहर उद्यान मे उम्बरदत्त यक्ष की महार्ह पुष्पार्चना कर पुत्रोपलब्धि के लिये मनौती मनाऊँ।'

इसके उत्तर मे सागरदत्त सार्थवाह ने अपनी गगदत्ता भार्या से कहा—'भद्रे ! मेरी भी यही इच्छा है कि किसी प्रकार से तुम्हारे जीवित रहने वाले पुत्र या पुत्री उत्पन्न हो।' ऐसा कहकर उसने गगदत्ता के उक्त प्रस्ताव का समर्थन करते हुए स्वीकार किया।

१२—तए ण सा गगदत्ता भारिया सागरदत्तसत्थवाहेण एयमट्ठ अब्भणुन्नाया समाणी सुबहु-पुप्फ वत्थ-गंध-मल्लालंकार गहाय मित्त जाव महिलाहि सद्धि सयाओ गिहाओ पडिनिक्खमइ, पडिणि-क्खमित्ता पाडलिसंड नयर मज्झंमज्झेण निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव पुक्खरिणी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पुक्खरिणीए तीरे सुबहु पुप्फवत्थगधमल्लालकार ठवेइ, ठवेत्ता पुक्खरिणि ओगाहेइ, ओगाहित्ता जलमज्जणं करेइ, करित्ता जलकीड करेमाणी ण्हाया कयकोउय-मगलपायच्छित्ता उल्ल-पडसाडिया पुक्खरणीओ पच्चुत्तरइ, पच्चुत्तरित्ता त पुप्फ-वत्थ-गध-मल्लालकार गिण्हइ, गिण्हित्ता जेणेव उम्बरदत्तस्स जक्खस्स जक्खायदणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता उम्बरदत्तस्स जक्खस्स आलोए पणामं करेइ, करित्ता लोमहत्थ परामुसइ, परामुसित्ता उम्बरदत्त जक्ख लोमहत्थेण पमज्जइ, पमज्जित्ता दगधाराए अब्भुक्खेइ, अब्भुक्खित्ता पम्हलसुकुमालगध-कासाइयाए गायलट्ठी ओलूहेइ, ओलूहित्ता सेयाइ वत्थाइ परिहेइ, परिहित्ता महरिह पुप्फारुहण, मल्लारुहण गन्धारुहण, चुण्णारुहण करेइ, करित्ता धूव डहइ, डहित्ता जन्नुपायवडिया एव वयइ—'जइ ण अह देवाणुप्पिया ! दारय दारिय वा पयामि तो ण जाव (अह तुब्भ जाय च दाय च भाय च अक्खयनिहिं च अणुवड्ढिस्सामि' त्ति कट्टु ओवाइय) ओवाइणइ, ओवाइणित्ता जामेव दिसिं पाउब्भूया तामेव दिसि पडिगया।

१२—तब सागरदत्त सार्थवाह की आज्ञा प्राप्त कर वह गगदत्ता भार्या विविध प्रकार के पुष्प, वस्त्र, गध, माला एव अलकार तथा विविध प्रकार की पूजा की सामग्री लेकर, मित्र, ज्ञाति, स्वजन, सम्बन्धी एव परिजनो की महिलाओ के साथ अपने घर से निकल और पाटलिखण्ड नगर के मध्य से होती हुई एक पुष्करिणी—बावड़ी के समीप जा पहुँची। वहाँ पुष्करिणी के किनारे पुष्पो, वस्त्रो, गन्धो, माल्यो तथा अलङ्कारो को रखकर उसने पुष्करिणी मे प्रवेश किया। वहाँ जलमज्जन एव जलक्रीडा कर कौतुक तथा मगल प्रायश्चित्त (मागलिक क्रियाओ) को करके गीली साड़ी पहने हुए वह पुष्करिणी से बाहर आई। बाहर आकर उक्त पुष्पादि पूजासामग्री को लेकर उम्बरदत्त यक्ष के यक्षायतन के पास पहुँची। उसने यक्ष-प्रतिमा पर नजर पडते ही यक्ष को नमस्कार किया। फिर लोमहस्तक-मयूरपिच्छ लेकर उसके द्वारा यक्षप्रतिमा का प्रमार्जन किया। फिर जलधारा से उस यक्ष-प्रतिमा का अभिषेक किया। तदनन्तर कषायरग वाले—गेरु जैसे रग से रगे हुए सुगन्धित एव सुकोमल वस्त्र से उसके अगो को पोछा। पोछकर श्वेत वस्त्र पहनाया, पहिनाकर महार्ह (बडो के योग्य) पुष्पारोहण, वस्त्रारोहण, गन्धारोहण, माल्यारोहण और चूर्णारोहण किया। तदनन्तर धूप जलाई। धूप जलाकर यक्ष के सन्मुख घुटने टेककर पाव मे पडकर इस प्रकार निवेदन किया—'जो मैं एक जीवित बालक या बालिका को जन्म दूँ तो याग, दान एव भण्डार की वृद्धि करूँगी।' इस प्रकार-यावत् याचना करती है अर्थात् मान्यता मनाती है। मान्यता मनाकर जिधर से आयी थी उधर लौट जाती है।

१३—तए ण से धन्नंतरी वेज्जे ताओ नरयाओ अणतर उव्वट्टित्ता इहेव जबुद्दीवे दीवे पाडलिसंडे नयरे गगदत्ताए भारियाए कुच्छिंसि पुत्तत्ताए उववन्ने ।

तए णं तीसे गगदत्ताए भारियाए तिण्ह मासाण बहुपडिपुण्णाण अयमेयारूवे दोहले पाउब्भूए—'धन्नाओ ण ताओ अम्मयाओ जाव[1] फले, जाओ ण विउल असण पाण खाइम साइमं उवक्खडावेंति, उवक्खडावेत्ता बहूहिं मित्त० जाव[2] परिवुडाओ तं विउलं असण पाणं खाइमं साइम सुरं च महुं च मेरगं च जाइ च सीधु च पसण्णं च पुप्फ जाव (वत्थ-गध-मल्लालंकार गहाय पाडलिसंडं नयरं मज्झंमज्झेणं पडिनिक्खमंति,पडिनिक्खमित्ता जेणेव पुक्खरिणी तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता पुक्खरिणिं ओगाहेंति, ओगाहेत्ता ण्हायाओ कयबलिकम्माओ कयकोउयमगलपायच्छित्ताओ, तं विउलं असणं पाणं खाइम साइमं बहूहिं मित्तनाइनियग० जाव सद्धिं आसाएंति, विसाएंति परिभाएंति परिभुंजंति दोहल विणेंति' एव संपेहेइ, संपेहित्ता कल्ल जाव जलते जेणेव सागरदत्ते सत्थवाहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सागरदत्त सत्थवाह एव वयासी—'धन्नाओ ण ताओ जाव विणेंति, त इच्छामि णं जाव विणित्तए ।' तए ण से सागरदत्ते सत्थवाहे गगदत्ताए भारियाए एयमट्ठं अणुजाणाइ ।

१३—तदनन्तर वह धन्वतरि वैद्य का जीव नरक से निकलकर इसी पाटलिषण्ड नगर में गगदत्ता भार्या की कुक्षि मे पुत्ररूप से उत्पन्न हुआ—गर्भ में आया । लगभग तीन मास पूर्ण हो जाने पर गगदत्ता भार्या को यह दोहद—मनोरथ उत्पन्न हुआ ।

'धन्य हैं वे माताएँ यावत् उन्होंने अपना जन्म और जीवन सफल किया है जो विपुल अशन, पान, खादिम, स्वादिम और सुरा आदि मदिराओं को तैय्यार करवाती हैं और अनेक मित्र, ज्ञाति आदि की महिलाओं से परिवृत होकर पाटलिषण्ड नगर के मध्य मे से निकलकर पुष्करिणी पर जाती हैं । वहाँ पुष्करिणी मे प्रवेश कर जल स्नान व अशुभ-स्वप्न आदि के फल को विफल करने के लिये मस्तक पर तिलक व अन्य माङ्गलिक कार्य करके उस विपुल अशनादिक का मित्र, ज्ञातिजन आदि की महिलाओं के साथ आस्वादनादि करती हुई दोहद को पूर्ण करती हैं ।'

इस तरह विचार करके प्रात काल जाज्वल्यमान सूर्य के उदित हो जाने पर जहाँ सागरदत्त सार्थवाह था, वहाँ पर आती है और आकर सागरदत्त सार्थवाह से इस प्रकार कहती है—'स्वामिन् ! वे माताएँ धन्य हैं जो यावत् उक्त प्रकार से अपना दोहद पूर्ण करती हैं । मैं भी अपने दोहद को पूर्ण करना चाहती हूँ ।'

सागरदत्त सार्थवाह भी दोहदपूर्ति के लिए गगदत्ता भार्या को आज्ञा दे देता है ।

१४—तए णं सा गंगदत्ता सागरदत्तेणं सत्थवाहेणं अब्भणुन्नाया समाणी विउल असणं पाणं खाइमं साइमं उवक्खडावेइ, उवक्खडावेत्ता त विउल असणं ४ सुर च ६ सुबहुं पुप्फवत्थगंधमल्लालंकारं परिगिण्हावेइ परिगिण्हावेत्ता बहूहिं जाव ण्हाया कयबलिकम्मा जेणेव उंबरदत्तस्स जक्खाययणे जाव धूवं डहेइ, डहेत्ता जेणेव पुक्खरिणी तेणेव उवागच्छइ । तए ण ताओ मित्त० जाव महिलाओ गंगदत्तं सत्थवाहिं सव्वालंकारविभूसियं करेंति । तए णं सा गंगदत्ता भारिया ताहिं मित्तनाईहिं

१-२—सप्तम अ , सूत्र ११

अन्नाहि बहूहि नगरमहिलाहि सद्धि त विउल असणं पाण खाइम साइमं सुर च महु च मेरग च जाइ च सीधु च पसण्ण च आसाएमाणे दोहल विणेइ, विणेत्ता, जामेव दिसि पाउब्भूया तामेव दिसि पडिगया। सा गगदत्ता सत्थवाही संपुण्णदोहला तं गब्भं सुहसुहेण परिवहइ ।

१४—सागरदत्त सार्थवाह से आज्ञा प्राप्त कर गगदत्ता पर्याप्त मात्रा मे अशनादिक चतुर्विध आहार तैयार करवाती है और उपस्कृत आहार एव छह प्रकार के मदिरादि पदार्थ तथा बहुत सी पुष्पादि पूजासामग्री को लेकर मित्र ज्ञातिजन आदि की तथा अन्य महिलाओ को साथ लेकर यावत् स्नान तथा अशुभ स्वप्नादि के फल को विनष्ट करने के लिये मस्तक पर तिलक व अन्य माङ्गलिक अनुष्ठान करके उम्बरदत्त यक्ष के आयतन मे आ जाती है। वहाँ पहिले की ही तरह पूजा करती व धूप जलाती है। तदनन्तर पुष्करिणी-बावडी पर आ जाती है, वहाँ पर साथ मे आने वाली मित्र, ज्ञाति आदि महिलाए गगदत्ता को सर्व अलङ्कारो से विभूषित करती है, तत्पश्चात् उन मित्रादि महिलाओ तथा अन्य महिलाओ के साथ उस विपुल अशनादिक तथा षड्विध सुरा आदि का आस्वादन करती हुई गगदत्ता अपने दोहद—मनोरथ को परिपूर्ण करती है। इस तरह दोहद को पूर्ण कर वह वापिस अपने घर आजाती है।

तदनन्तर सम्पूर्णदोहदा, सन्मानितदोहदा, विनीतदोहदा, व्युच्छिन्नदोहदा सम्पन्नदोहदा वह गगदत्ता उस गर्भ को सुखपूर्वक धारण करती है।

१५—तए णं सा गगदत्ता भारिया नवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाण जाव दारगं पयाया। ठिइवडिया जाव नामधेज्ज करेंति—'जम्हा णं इमे दारए उंबरदत्तस्स जक्खस्स ओवाइयलद्धए, तं होउ णं दारए उंबरदत्ते नामेणं।' तए ण से उंबरदत्ते दारए पचधाईपरिग्गहिए परिवड्ढइ।

१५—तत्पश्चात् नव मास परिपूर्ण हो जाने पर उस गगदत्ता ने एक बालक को जन्म दिया। माता-पिता ने स्थितिपतिता—पुत्र जन्म सम्बन्धी उत्सव विशेष मनाया। फिर उसका नामकरण सस्कार किया, 'यह बालक क्योकि उम्बरदत्त यक्ष की मान्यता मानने से जन्मा है, अत इसका नाम भी 'उम्बरदत्त' ही हो। तदनन्तर उम्बरदत्त बालक पाँच धायमाताओ द्वारा गृहीत होकर वृद्धि को प्राप्त करने लगा।

१६—तए णं से सागरदत्ते सत्थवाहे जहा विजयमित्ते कालधम्मुणा सजुत्ते, गंगदत्ता वि। उंबरदत्ते निच्छूढे जहा उज्झियए। तए ण तस्स उंबरदत्तस्स दारगस्स अन्नया कयाइ सरीरगसि जमगसमगमेव सोलस रोगायका पाउब्भूया। तंजहा—सासे, कासे जाव[1] कोढे। तए ण से उंबरदत्ते दारए सोलसहि रोगायकेहि अभिभूए समाणे कच्छुल्ले जाव[2] देह वलियाए वित्ति कप्पेमाणे विहरइ। एव खलु गोयमा! उंबरदत्ते दारए पुरापोराणाण जाव पच्चणुभवमाणे विहरइ।'

१६—तदनन्तर सागरदत्त सार्थवाह भी विजयमित्र की ही तरह (समुद्र मे जहाज के जल-निमग्न हो जाने से) कालधर्म को प्राप्त हुआ। गगदत्ता भी (पतिवियोगजन्य असह्य दु ख से दु खी हुई) कालधर्म को प्राप्त हुई। इधर उम्बरदत्त को भी उज्झित कुमार की तरह राजपुरुषो ने घर से निकाल दिया। उसका घर किसी अन्य को सौप दिया।

१ प्र अ, सूत्र, २ सप्तम अ, सूत्र ४

तत्पश्चात् किसी समय उम्बरदत्त के शरीर मे एक ही साथ सोलह प्रकार के रोगातङ्क उत्पन्न हो गये, जैसे कि, श्वास, कास यावत् कोढ आदि। इन सोलह प्रकार के रोगातङ्को से अभिभूत हुआ उम्बरदत्त खुजली यावत् हाथ आदि के सड जाने से दु खपूर्ण जीवन विता रहा है।

भगवान् कहते हैं—हे गौतम ! इस प्रकार उम्वरदत्त वालक अपने पूर्वकृत अशुभ कर्मों का यह भयङ्कर फल भोगता हुआ इस तरह समय व्यतीत कर रहा है।

उंबरदत्त का भविष्य

१७—'से ण उबरदत्ते दारए कालमासे काल किच्चा कहिं गच्छिहिइ, कहिं उववज्जिहिइ ?

गोयमा ! उबरदत्ते दारए बावत्तरिं वासाइ परमाउय पालइत्ता कालमासे कालं किच्चा इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए नेरइयत्ताए उववज्जिहिइ । संसारो तहेव जाव पुढवी । तओ हत्थिणाउरे नयरे कुक्कुडत्ताए पच्चायाहिइ । जायमेत्ते चेव गोट्ठिल्लवहिए तत्थेव हत्थिणाउरे नयरे सेट्ठिकुल सि उववज्जिहिइ । बोहिं, सोहम्मे कप्पे, महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ । निक्खेवो ।

१७—तदनन्तर श्री गौतमस्वामी ने भगवान् महावीर स्वामी से पूछा—अहो भगवन् ! यह उम्बरदत्त वालक मृत्यु के समय मे काल करके कहाँ जायगा ? और कहाँ उत्पन्न होगा ?

भगवान् ने उत्तर दिया—हे गौतम ! उम्वरदत्त वालक ७२ वर्ष का परम आयुष्य भोगकर कालमास मे काल करके—मरण के समय मर कर इसी रत्नप्रभानाम प्रथम नरक मे नारक रूप से उत्पन्न होगा। वह पूर्ववत् ससार भ्रमण करता हुआ पृथिवी आदि सभी कायो मे लाखो वार उत्पन्न होगा। वहाँ से निकल कर हस्तिनापुर मे कुर्कुट-कूकडे के रूप मे उत्पन्न होगा। वहा जन्म लेने के साथ ही गोष्ठिको—दुराचारी मडली के द्वारा वध को प्राप्त होगा। पुन हस्तिनापुर मे ही एक श्रेष्ठिकुल मे उत्पन्न होगा। वहा सम्यक्त्व को प्राप्त करेगा। वहा से मरकर सौधर्मनामक प्रथम कल्प मे जन्म लेगा। वहा से च्युत होकर महाविदेह क्षेत्र मे उत्पन्न होगा। वहाँ अनगार धर्म को प्राप्त कर यथाविधि सयम की आराधना कर कर्मों का क्षय करके सिद्धि को प्राप्त होगा—सर्व कर्मों, दु खो का अन्त करेगा।

निक्षेप—उपसहार की कल्पना पूर्ववत् कर लेनी चाहिये, अर्थात् श्रमण भगवान् महावीर ने सप्तम अध्ययन का यह अर्थ कहा है।

सप्तम अध्याय समाप्त

अष्टम अध्ययन

शौरिकदत्त

प्रस्तावना

१—'जइ णं भन्ते' अट्ठमस्स उक्खेवो—

१—अहो भगवन् ! अष्टम अध्ययन का श्रमण भगवान् महावीर ने क्या अर्थ कहा है ? इस प्रकार उत्क्षेप पूर्ववत् जान लेना चाहिये ।

२—एवं खलु, जम्बू ! तेणं कालेण तेणं समएणं सोरियपुरं नयरं होत्था, सोरियवडिसगं उज्जाणं । सोरियो जक्खो । सोरियदत्ते राया ।

२—हे जम्बू ! उस काल तथा उस समय मे शौरिकपुर नाम का एक नगर था । वहाँ 'शौरिकावतमक' नाम का एक उद्यान था । उसमे शौरिक नाम के यक्ष का यक्षायतन था । शौरिकदत्त नामक राजा वहाँ राज्य करता था ।

शौरिकदत्त का वर्त्तमान भव

३—तस्स णं सोरियपुरस्स वहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए तत्थ णं एगे मच्छंधपाडए होत्था । तत्थ णं समुद्ददत्ते नामं मच्छंधे परिवसइ । अहम्मिए जाव दुप्पडियाणंदे । तस्स णं समुद्ददत्तस्स समुद्ददत्ता नामं भारिया होत्था, अहीणपडिपुण्णपंचिंदियसरीरा । तस्स ण समुद्ददत्तस्स पुत्ते समुद्ददत्ताए भारियाए अत्तए सोरियदत्ते नाम दारए होत्था, अहीणपडिपुण्णपंचिंदियसरीरे ।

३—उस शौरिकपुर नगर के वाहर ईशान कोण मे एक मच्छीमारो का पाटक—पाडा—मोहल्ला था । वहाँ समुद्रदत्त नामक मच्छीमार रहता था । वह महा-अधर्मी यावत् दुष्प्रत्यानन्द था । उसकी समुद्रदत्ता नाम की अन्यून व निर्दोष पाचो इन्द्रियो से परिपूर्ण शरीरवाली भार्या थी । उस समुद्रदत्त का पुत्र और समुद्रदत्ता भार्या का आत्मज शौरिकदत्त नामक सर्वाङ्गसम्पन्न सुन्दर वालक था ।

४—तेण कालेण तेण समएण सामी समोसढे, जाव परिसा पडिगया ।

४—उस काल व उस समय मे (शौरिकावतसक उद्यान मे) भगवान् महावीर पधारे । यावत् परिषद् व राजा धर्मकथा सुनकर वापिस चले गये ।

५—तेण कालेण तेण समएण समणस्स भगवत्रो महावीरस्स जेट्ठे सीसे जाव सोरियपुरे नयरे उच्चनीयमज्झिमकुले अडमाणे अहापज्जत्त समुदाण गहाय सोरियपुराओ नयराओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता तस्स मच्छधवाडगस्स अदूरसामतेण वीइवयमाणे महइमहालियाए मणुस्सपरिसाए मज्झगय एग पुरिस सुक्क भक्ख निम्मस अट्ठिचम्मावणद्ध किडिकिडियाभूय नीलसाडगनियत्थ मच्छ-कटएण गलए अणुलग्गेण कट्ठाइ कलुणाइ विस्सराइ उक्कूवमाण अभिक्खण अभिक्खण पूयकवले य रुहिरकवले य किमिकवले य वममाण पासइ, पासित्ता इमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए, कप्पिए पत्थिए मणोगए सकप्पे समुप्पन्ने—'अहो ण इमे पुरिसे पुरापोराणाण जाव विहरइ' एव सपेहेइ, सपेहित्ता जेणेव भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ । पुव्वभवपुच्छा जाव वागरण ।

५—उस काल और उस समय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के ज्येष्ठ शिष्य गौतम स्वामी यावत् षष्ठभक्त के पारणे के अवसर पर शौरिकपुर नगर मे उच्च, नीच तथा मध्यम—सामान्य घरो मे भ्रमण करते हुए यथेष्ट आहार लेकर शौरिकपुर नगर से बाहर निकलते है । निकल कर उस मच्छीमार मुहल्ले के पास से जाते हुए उन्होने विशाल जनसमुदाय के बीच एक सूखे, बुभुक्षित (भूखे), मासरहित व अतिकृश होने के कारण जिसका चमडा हड्डियो से चिपटा हुआ है, उठते, बैठते वक्त जिसकी हड्डिया किटिकिटिका—कडकड—शब्द कर रही हैं, जो नीला वस्त्र पहने हुए है एव गले मे मत्स्य-कण्टक लगा होने के कारण कष्टात्मक, करुणाजनक एव दीनतापूर्ण आक्रन्दन कर रहा है, ऐसे पुरुष को देखा । वह खून के कुल्लो, पीव के कुल्लो और कीडो के कुल्लो का बारबार वमन कर रहा था । उसे देख कर गौतम स्वामी के मन मे यह सकल्प उत्पन्न हुआ,—अहा ! यह पुरुष पूर्वकृत यावत् अशुभकर्मो के फलस्वरूप नरकतुल्य वेदना का अनुभव करता हुआ समय बिता रहा है । इस तरह विचार कर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पास पहुचे यावत् भगवान् से उसके पूर्वभव की पृच्छा की । भगवान् महावीर उत्तर मे इस तरह फरमाते है—

पूर्वभव-कथा

६—एव खलु गोयमा ! तेण कालेण तेण समएण इहेव जबुद्दीवे दीवे भारहे वासे नदिपुरे नाम नयरे होत्था । मित्ते राया । तस्स णं मित्तस्स रन्नो सिरीए नाम महाणसिए होत्था, अहम्मिए जाव[1] दुप्पडियाणदे ।

६—हे गौतम ! उस काल एव उस समय मे इसी जम्बूद्वीप नामक द्वीप के अन्तर्गत भारत-वर्ष मे नन्दिपुर नाम का प्रसिद्ध नगर था । वहाँ मित्र राजा राज्य करता था । उस मित्र राजा के श्रीद या श्रीयक नाम का एक रसोइया था । वह महाअधर्मी यावत् दुष्प्रत्यानन्द—कठिनाई से प्रसन्न किया जा सकने वाला था ।

७—तस्स ण सिरीयस्स महाणसियस्स बहवे मच्छिया य वागुरिया य साउणिया य दिन्न-भइभत्तवेयणा कल्लाकल्लिं बहवे सण्हमच्छा य जाव [2] पडागाइपडागे य, अए य जाव [3] महिसे य, तित्तिरे य जाव [4] मऊरे य जीवियाओ ववरोवेंति, ववरोवेत्ता सिरीयस्स महाणसियस्स उवणेंति ।

१. तृतीय अ०, सूत्र ४ २-प्रज्ञापना पद १ ३-सप्तम अ, सूत्र ९ ४-सप्तम अ, सूत्र ९

अन्ने य से वहवे तित्तिरा य जाव मऊरा य पजरसि संनिरुद्धा चिट्ठ ति । अन्ने य वहवे पुरिसा दिन्न-भइभत्तवेयणा ते वहवे तित्तिरे य जाव मऊरे य जीवतए चेव निप्पक्खेंति, निप्पक्खेत्ता सिरीयस्स महाणसियस्स उवणेंति ।

७—उसके रुपये, पैसे और भोजनादि रूप से वेतन ग्रहण करनेवाले अनेक मात्स्यिक—मच्छीमार, वागुरिक—जालो से जीवो को पकडने वाले व्याध, शाकुनिक—पक्षिघातक नौकर पुरुष थे , जो श्लक्ष्णमत्स्यो—कोमल चर्मवाली मछलियो यावत् पताकातिपताको—मत्स्यविशेषो, तथा अजो (वकरो) यावत् महिषो एव तित्तिरो यावत् मयूरो का वध करके श्रीद रसोइये को देते थे । अन्य वहुत से तित्तिर यावत् मयूर आदि पक्षी उसके यहाँ पिजरो मे वन्द किये हुए रहते थे । श्रीद रसोइया के अन्य अनेक रुपया, पैसा, भोजनादि के रूप मे वेतन लेकर काम करने वाले पुरुष अनेक जीते हुए तित्तरो यावत् मयूरो को पक्ष रहित करके (पख उखाड़ करके) उसे लाकर दिया करते थे ।

८—तए ण से सिरीए महाणसिए बहूण जलयर-थलयर-खहयराण मसाइ कप्पणिकप्पियाइ करेइ, त जहा—सण्हखडियाणि य वट्टखंडियाणि य दीहखडियाणि य रहस्सखडियाणि य हिमपक्काणिय जम्मपक्काणि य वेगपक्काणि घम्मपक्काणि य मारुयपक्काणि य कालाणि य हेरगाणि य महिट्ठाणि य आमलरसियाणि य मुद्दियारसियाणि य कविट्ठरसियाणि य दालिमरसियाणि य मच्छरसियाणि य तलियाणि य भज्जियाणि य सोल्लियाणि य उवक्खडावेति, उवक्खडावेत्ता अन्ने य बहवे मच्छरसए य एणेज्जरसए य तित्तिररसए य जाव मयूररसए य, अन्न च विउल हरियसाग उवक्खडावेति, उवक्खडावेत्ता मित्तस्स रन्नो भोयणमडवसि भोयणवेलाए उवणेति । अप्पणा वि य ण से सिरीए महाणसिए तेसिं च बहूहिं जाव जलयर-थलयर-खहयरमसेहिं रसएहिं य हरियसागेहिं य सोल्लेहिं य तलिएहिं य भज्जिएहिं य सुर च महुं च मेरग च जाइ च सीधु च आसाएमाणे वीसाएमाणे परिभाए-माणे परिभुंजेमाणे विहरइ । तए ण से सिरीए महाणसिए एयकम्मे एयप्पहाणे एयविज्जे एयसमायारे सुवहुं पावकम्म समज्जिणित्ता तेत्तीसं वाससयाइ परमाउय पालइत्ता काल मासे काल किच्चा छट्ठीए पुढवीए उववन्ने ।

८—तदनन्तर वह श्रीद नामक रसोइया अनेक जलचर, स्थलचर व खेचर जीवो के मासो को लेकर सूक्ष्म खण्ड, वृत्त (गोल) खण्ड, दीर्घ (लम्वे) खण्ड, तथा ह्रस्व (छोटे, छोटे) खण्ड किया करता था। उन खण्डो मे से कई एक को वर्फ से पकाता था, कई एक को अलग रख देता जिससे वे खण्ड स्वत ही पक जाते थे, कई एक को धूप की गर्मी से व कई एक को हवा के द्वारा पकाता था । कई एक को कृष्ण वर्ण वाले तो कई एक को हिंगुल के जैसे लाल वर्ण वाले किया करता था। वह उन खण्डो का तक्र—छाश से सस्कारित, आमलक—आवले से रस से भावित, द्राक्षारस, कपित्थ तथा अनार के रस से भी सस्कारित करता था एव मत्स्यरसो से भी भावित किया करता था । तदनन्तर उन मासखण्डो मे से कई एक को तेल से तलता, कई एक को आग पर भूनता तथा कई एक को शूला-प्रोत—सूल मे पिरोकर पकाता था ।

इसी प्रकार मत्स्यमासो के रसो को, मृगमासो के रसो को, तित्तिरमासो के रसो को यावत् मयूरमासो के रसो को तथा अन्य वहुत से हरे शाको को तैयार करता था, तैयार करके राजा मित्र के भोजनमडप मे लेजाकर भोजन के समय उन्हे प्रस्तुत करता था। श्रीद रसोइया स्वय भी अनेक

जलचर, स्थलचर एव खेचर जीवो के मासो, रसो व हरे शाको के साथ, जो कि शूलपक्व होते, तले हुए होते, भूने हुए होते थे, छह प्रकार की सुरा आदि का आस्वादनादि करता हुआ काल यापन कर रहा था।

तदनन्तर इन्ही कर्मों को करनेवाला, इन्ही कर्मो मे प्रधानता रखने वाला, इन्ही का विज्ञान रखनेवाला, तथा इन्ही पापो को सर्वोत्तम आचरण मानने वाला वह श्रीद रसोइया अत्यधिक पापकर्मो का उपार्जन कर ३३ सौ वर्ष की परम आयु को भोग कर कालमास मे काल करके छट्ठे नरक मे उत्पन्न हुआ।

९—तए ण सा समद्ददत्ता भारिया जायनिंदूयावि होत्था। जाया जाया दारगा विणिहायमावज्जति। जहा गगदत्ताए चिन्ता, आपुच्छणा, ओवाइय, दोहला जाव[1] दारग पयाया, जाव 'जम्हा णं अम्हे इमे दारए सोरियस्स जक्खस्स ओवाइयलद्धे, तम्हा ण होउ अम्हं दारए सोरियदत्ते नामेण। तए ण से सोरियदत्ते दारए पंचधाई जाव उम्मुक्कबालभावे विन्नायपरिणयमेत्ते जोव्वणगमणुप्पत्ते यावि होत्था।

९—उस समय वह समुद्रदत्ता भार्या—मृतवत्सा थी। उसके बालक जन्म लेने के साथ ही मर जाया करते थे। उसने गगदत्ता की ही तरह विचार किया, पति की आज्ञा लेकर, मान्यता मनाई और गर्भवती हुई। दोहद की पूर्ति कर समुद्रदत्त बालक को जन्म दिया। 'शौरिक यक्ष की मनौती मनाने के कारण हमे यह बालक उपलब्ध हुआ है' ऐसा कहकर माता पिता ने उसका नाम 'शौरिकदत्त' रक्खा। तदनन्तर पाच धायमाताओ से परिगृहीत, बाल्यावस्था को त्यागकर विज्ञान की परिपक्व अवस्था से सम्पन्न हो वह शौरिकरदत्त युवावस्था को प्राप्त हुआ।

१०—तए ण से समुद्ददत्ते अन्नया कयाइ कालधम्मुणा सजुत्ते। तए णं से सोरियदत्ते बहूहिं मित्त-नाइ रोयमाणे समुद्ददत्तस्स नीहरण करेइ, लोइयाइं मयकिच्चाइ करेइ। अन्नया कयाइ सयमेव मच्छधमहत्तरगत्त उवसपज्जित्ताण विहरइ। तए णं से सोरियदारए मच्छंधे जाए, अहम्मिए जाव[2] दुप्पडियाणंदे।

१०—तदनन्तर किसी समय समुद्रदत्त कालधर्म को प्राप्त हो गया। रुदन आक्रन्दन व विलाप करते हुए शौरिकदत्त बालक ने अनेक मित्र-ज्ञाति-स्वजन परिजनो के साथ समुद्रदत्त का निस्सरण किया, दाहकर्म व अन्य लौकिक क्रियाए की। तत्पश्चात् किसी समय वह स्वय ही मच्छीमारो का मुखिया बन कर रहने लगा। अब वह मच्छीमार हो गया जो महा अधर्मी यावत् दुष्प्रत्यानन्द—अति कठिनाई से प्रसन्न होने वाला था।

११—तए णं तस्स सोरियदत्तस्स मच्छंधस्स बहवे पुरिसा दिन्नभइभत्तवेयणा कल्लाकल्लि एगट्ठियाहिं जउण महाणइं ओगाहेति, ओगाहित्ता बहूहिं दहगालणेहि य दहमलणेहि य दहमद्दणेहि य दहमहणेहि य दहवहणेहि य दहपवहणेहि य अयंचुलेहि य पचपुलेहि य मच्छंधलेहि य मच्छपुच्छेहि य जभाहि य तिसिराहि य भिसिराहि य धिसराहि य विसराहि य हिल्लिरीहि य झिल्लिरीहि य

१ देखिए सप्तम अध्ययन

२ तृतीय अ, सूत्र ४

लल्लिरीहि य जालेहि य गलेहि य कूडपासेहि य वक्कवधेहि य सुत्तबन्धणेहि य वालबन्धणेहि य बहवे सण्हमच्छे जाव[1] पडागाइपडागे य गिण्हति। गेण्हित्ता एगट्ठियाओ भरेंति, भरित्ता कूलं गाहेति, गाहित्ता मच्छखलए करेंति, करित्ता आयवसि दलयति। अन्ने य से बहवे पुरिसा दिन्नभइभत्तवेयणा आयवतत्तएहि मच्छेहि सोल्लेहि य तलिएहि य भज्जिएहि य रायमग्गसि वित्ति कप्पेमाणा विहरंति। अप्पणा वि य ण से सोरियदत्ते बहूहि सण्हमच्छेहि जाव[2] पडागाइपडागेहि य सोल्लेहि य भज्जिएहि य तलिएहि य सुर च महुं च मेरगं च जाइं च सीधुं च पसण्ण च आसाएमाणे वीसाएमाणे परिभाएमाणे परिभुजेमाणे विहरइ।

११—तदनन्तर शौरिकदत्त मच्छीमार ने रुपये, पैसे और भोजनादि का वेतन लेकर काम करने वाले अनेक वेतनभोगी पुरुष रक्खे, जो छोटी नौकाओ के द्वारा यमुना महानदी मे प्रवेश करते—घूमते, ह्रद-गलन ह्रद-मलन, ह्रदमर्दन, ह्रद-मन्थन, ह्रदवहन, ह्रद-प्रवहन (ह्रद-जलाशय या झील का नाम है, उसमे मछली आदि जीवो को पकडने के लिये भ्रमण करना, सरोवर मे से जल को निकालना या थूहर आदि के दूध को डालकर जल को दूषित करना, जल का विलोडन करना कि जिसने भयभीत व स्थानभ्रष्ट मत्स्यादि सरलता से पकडे जा सकें) से, तथा प्रपचुल, प्रपपुल, मत्स्यपुच्छ, जृम्भा, त्रिसरा, भिसरा, विसरा, द्विसरा, हिल्लिरि, झिल्लिरि, लल्लिरि, जाल, गल, कूटपाश, वल्कबन्ध, सूत्रबन्ध और वालबन्ध (ये सब मत्स्यादिको को पकडने के विविध साधन-विशेषो के विशिष्ट नाम हैं) साधनो के द्वारा कोमल मत्स्यो यावत् पताकातिपताक मत्स्य-विशेषो को पकडते, पकड़कर उनसे नौकाए भरते है। भरकर नदी के किनारे पर लाते है, लाकर बाहर एक स्थल पर ढेर लगा देते हैं। तत्पश्चात् उनको वहाँ धूप मे सूखने के लिए रख देते हैं।

इसी प्रकार उसके अन्य रुपये, पैसे और भोजनादि लेकर काम करनेवाले वेतनभोगी पुरुष धूप से सूखे हुए उन मत्स्यो के मासो को शूलाप्रोत कर पकाते, तलते और भूनते तथा उन्हे राजमार्गों मे विक्रयार्थ रखकर आजीविका करते हुए समय व्यतीत कर रहे थे। शौरिकदत्त स्वय भी उन शूलाप्रोत किये हुए, भुने हुए और तले हुए मत्स्यमासो के साथ विविध प्रकार की सुरा सीधु आदि मदिराओ का सेवन करता हुआ जीवन यापन कर रहा था।

१२—तए ण तस्स सोरियदत्तस्स मच्छधस्स अन्नया कयाइ ते मच्छसोल्ले य तलिए य भज्जिए य आहारेमाणस्स मच्छकटए गलए लग्गे यावि होत्था। तए णं से सोरियदत्ते मच्छधे महयाए वेयणाए अभिभूए समाणे कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एव वयासी—'गच्छह ण तुब्भे देवाणुप्पिया! सोरियपुरे नयरे सिंघाडग जाव पहेसु य महया महया सद्देण उग्घोसेमाणा एवं वयह—'एव खलु देवाणुप्पिया! सोरियदत्तस्स मच्छकटए गले लग्गे। त जो ण इच्छइ वेज्जो वा वेज्जपुत्तो वा जाणुओ वा जाणुयपुत्तो वा तेगिच्छिओ तेगिच्छियपुत्तो वा सोरियमच्छियस्स मच्छकटयं गलाओ नीहरित्तए, तस्स णं सोरियदत्ते विउल अत्थसपयाण दलयइ।' तए ण ते कोडुंबियपुरिसा जाव उग्घोसेंति।

१२—तदनन्तर किसी अन्य समय शूल द्वारा पकाये गये, तले गए व भूने गए मत्स्य मासो का आहार करते समय उस शौरिकदत्त मच्छीमार के गले मे मच्छी का काटा फँस गया। इसके कारण वह महती असाध्य वेदना का अनुभव करने लगा। अत्यन्त दुखो हुए शौरिक ने अपने कौटुम्बिक

१-२ प्रज्ञापनासूत्र, पद १.

पुरुषो को बुलाकर इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रियो ! शौरिकपुर नगर के त्रिकोण मार्गो व यावत् सामान्य मार्गों पर जाकर ऊँचे शब्दो से इस प्रकार घोषणा करो कि—हे देवानुप्रियो ! शौरिकदत्त के गले मे मत्स्य का काटा फस गया है, यदि कोई वैद्य या वैद्यपुत्र जानकार या जानकार का पुत्र, चिकित्सक या चिकित्सक-पुत्र उस मत्स्य-कटक को निकाल देगा तो, शौरिकदत्त उसे वहुत सा धन देगा।" कौटुम्बिक पुरुषो-अनुचरो ने उसकी आज्ञानुसार सारे नगर मे उद्घोषणा कर दी।

१३—तए णं ते वहवे वेज्जा य वेज्जपुत्ता य जाणुया य जाणुपुत्ता य तेगिच्छिया य तेगिच्छिय-पुत्ता य इमेयारूवं उग्घोसणं उग्घोसिज्जमाणं निसामेंति, निसामित्ता जेणेव सोरियदत्तस्स गेहे, जेणेव सोरियमच्छंधे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता वहूहिं उप्पत्तियाहि य वेणइयाहिय कम्मियाहि य पारिणामियाहिं य वुद्धीहिं परिणामेमाणा परिणामेमाणा वमणेहि य सड्डणेहि य, ओवीलणेहि य कवल-ग्गाहेहि य सल्लुद्धरणे हि विसल्लकरणेहि य इच्छति सोरियमच्छंधस्स मच्छकंटयं गलाओ नीहरित्तए। नो चेव णं संचाएंति नीहरित्तए वा विसोहित्तए वा। तए णं ते वहवे वेज्जा य वेज्जपुत्ता य जाणुया य जाणुयपुत्ता य तेगिच्छिया य तेगिच्छियपुत्ता य जाहे नो संचाएंति सोरियस्स मच्छकंटगं गलाओ नीहरित्तए, ताहे सता जाव (तंता परितंता) जामेव दिसिं पाउब्भूया तामेव दिसिं पडिगया।

तए ण से सोरियदत्ते मच्छंधे वेज्जपडियारनिव्विण्णे तेणं महया दुक्खेणं अभिभूए समाणे सुक्के जाव (भुक्खे जाव किमियकवले य वममाणे) विहरइ। एवं खलु गोयमा ! सोरिए पुरापोराणाण जाव विहरइ।

१३—उसके वाद वहुत से वैद्य, वैद्यपुत्र आदि उपर्युक्त उद्घोषणा को सुनते है और सुनकर शौरिकदत्त का जहाँ घर था और शौरिक मच्छीमार जहाँ था वहाँ पर आते हैं। आकर वहुत सी औत्पत्तिकी वुद्धि (स्वाभाविक प्रतिभा), वैनयिकी, कार्मिकी तथा पारिणामिकी वुद्धियो से सम्यक् परिणमन करते (निदानादि को समझते हुए) वमनो, छर्दनों (वमन-विशेषो) अवपीड़नों (दवाने) कवलग्राहो (मुख की मालिश करने के लिये दाढो के नीचे लकडी का टुकड़ा रखना) शल्योद्धारों (यन्त्र प्रयोग से काटो को निकालना) विशल्य-करणो (औषध के वल से कांटा निकालना) आदि उपचारो से शौरिकदत्त के गले के कांटो को निकालने का तथा पीव को वन्द करने का भरसक प्रयत्न करते हैं परन्तु उसमे वे सफल न हो सके अर्थात् उनसे शौरिकदत्त के गले का कांटा निकाला नही जा सका और न पीव व रुधिर वन्द हो सका। तव श्रान्त, तान्त, परितान्त हो अर्थात् निराश व उदास होकर वापिस अपने अपने स्थान पर चले गये।

इस तरह वैद्यो के इलाज से निराश हुआ शौरिकदत्त उस महती वेदना को भोगता हुआ सूखकर यावत् अस्थिपिञ्जर मात्र शेष रह गया। वह दु खपूर्वक समय विता रहा है।

भगवान् फरमाते हैं कि—हे गौतम ! इस प्रकार वह शौरिकदत्त अपने पूर्वकृत अत्यन्त अशुभ कर्मो का फल भोग रहा है।

शौरिकदत्त का भविष्य

१४—'सोरिए णं, भंते ! मच्छंधे इओ कालमासे कालं किच्चा कहिं गच्छिहिइ ? कहिं उववज्जिहिइ ?'

गोयमा ! सत्तरिवासाइं परमाउयं पालइत्ता कालमासे कालं किच्चा इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए । संसारो तहेव, जाव पुढवीए । तम्रो हत्थिणाउरे नयरे मच्छत्ताए उववज्जिहिइ । से णं तम्रो मच्छिएहिं जीवियाम्रो ववरोविए तत्थेव सेट्ठिकुलसि उववज्जिहिइ, बोही, सोहम्मे कप्पे, महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ । निक्खेवो ।

१५—गौतम स्वामी ने प्रश्न किया—ग्रहो भगवन् ! शौरिकदत्त मत्स्यवन्ध-मच्छीमार यहाँ से कालमास मे काल करके कहाँ जायगा ? कहाँ उत्पन्न होगा ?

भगवान् ने उत्तर दिया—हे गौतम ! ७० वर्ष की परम ग्रायु को भोगकर कालमास मे काल करके रत्नप्रभा नामक प्रथम नरक मे उत्पन्न होगा । उसका ग्रवशिष्ट ससार-भ्रमण पूर्ववत् ही समझ लेना चाहिये यावत् पृथ्वीकाय ग्रादि मे लाखो वार उत्पन्न होगा । वहाँ से निकलकर हस्तिनापुर मे मत्स्य होगा । वहाँ मच्छीमारो के द्वारा वध को प्राप्त होकर वही हस्तिनापुर मे एक श्रेष्ठिकुल मे जन्म लेगा । वहाँ सम्यक्त्व की उसे प्राप्ति होगी । वहाँ से मरकर सौधर्म देवलोक मे देव होगा । वहाँ से चय कर महाविदेह क्षेत्र मे जन्मेगा, चारित्र ग्रहण कर उसके सम्यक् ग्राराधन से सिद्ध पद को प्राप्त करेगा ।

निक्षेप—उपसहार पूर्ववत् समझ लेना चाहिये ।

॥ ग्रष्टम ग्रध्ययन समाप्त ॥

नवम अध्ययन

देवदत्ता

उत्क्षेप

१—'जइ णं भंते!' उक्खेवो नवमस्स ।

१—'यदि भगवन् ! श्रमण भगवान् महावीर ने अष्टम अध्ययन का यह (पूर्वोक्त) अर्थ कहा है तो नवम अध्ययन का क्या अर्थ कहा है ?' इस प्रकार जम्बू स्वामी द्वारा प्रश्न करने पर सुधर्मा स्वामी ने इस प्रकार उत्तर दिया, इस तरह नवम अध्ययन का उत्क्षेप जान लेना चाहिए ।

२—एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं रोहीडए[1] नामं नयरे होत्था, रिद्धत्थमिय-समिद्धे ! पुढविवडिंसए उज्जाणे। धरणे जक्खे। वेसमणदत्तोराया। सिरीदेवी। पूसनंदी कुमारे जुवराया।

२—हे जम्बू ! उस काल तथा उस समय मे रोहीतक नाम का नगर था। वह ऋद्ध, स्तिमित तथा समृद्ध था। पृथिवी-अवतसक नामक वहा उद्यान था। उसमे धारण नामक यक्ष का यक्षायतन था। वहाँ वैश्रमणदत्त नाम का राजा राज्य करता था। उसके श्रीदेवी नामक रानी थी। युवराज पद से अलकृत पुष्पनदी नामक कुमार था।

३—तत्थ णं रोहीडए नयरे दत्ते नामं गाहावई परिवसइ, अड्ढे। कण्हसिरीभारिया। तस्स णं दत्तस्स धूया कण्हसिरीए अत्तया देवदत्ता नामं दारिया होत्था, अहीणपडिपुण्णपंचिंदियसरीरा।

३—उस रोहीतक नगर मे दत्त नाम का एक गाथापति रहता था। वह वडा धनी यावत् सम्माननीय था। उसके कृष्णश्री नाम की भार्या थी। उस दत्त गाथापति की दुहिता—पुत्री तथा कृष्णश्री की आत्मजा देवदत्ता नाम की बालिका—कन्या थी, जो अन्यून एव निर्दोष इन्द्रियो से युक्त सुन्दर शरीरवाली थी।

वर्त्तमान भव

४—तेणं कालेणं तेणं समएणं सामी समोसढे; जाव परिसा निग्गया।

तेण कालेण तेणं समएण जेट्ठे अंतेवासी छट्ठक्खमणपारणगंसि तहेव जाव रायमग्गमोगाढे। हत्थी आसे पुरिसे पासइ। तेसिं पुरिसाणं मज्झगयं पासइ एगं इत्थियं उक्खित्तकण्णनासं नेहतुप्पियगत्तं वज्झकर-कडिजुयनियच्छं कंठे गुणरत्तमल्लदाम चुण्णगुंडियगातं चुण्णयं वज्झपाणपीयं, जाव सूले

---

१ पाठान्तर-राहाडए।

भिज्जमाण पासइ, पासित्ता इमे अज्झत्थिए जाव समुप्पन्ने, तहेव निग्गए, जाव एव वयासी—'एसा ण भंते ! इत्थिया पुव्वभवे का आसी ?'

४—उस काल उस समय मे वहाँ (पृथ्वी अवतसक उद्यान मे) श्रमण भगवान् महावीर स्वामी पधारे यावत् उनकी धर्मदेशना सुनकर राजा व परिषद् वापिस चले गये ।

उस काल, उस समय भगवान् के ज्येष्ठ शिष्य गौतम स्वामी षष्ठखमण—बेले के पारणे के निमित्त भिक्षार्थ नगर मे गये यावत् (भिक्षा ग्रहण करके लौटते हुए) राजमार्ग मे पधारे । वहाँ पर वे हस्तियो, अश्वो और पुरुषो को देखते हैं, और उन सबके बीच उन्होने अवकोटक बन्धन से बधी हुई, कटे हुए कर्ण तथा नाकवाली (जिसके शरीर पर चिकनाई पोती है, जिसे हाथो और कटिप्रवेश मे वध्य पुरुष के योग्य वस्त्र पहिनाए गए है, हाथो मे हथकडिया हैं, गले मे लाल फूलो की माला पहिनाई गयी है, गेरू के चूर्ण से जिसका शरीर पोता गया है) ऐसी सूली पर भेदी जाने वाली एक स्त्री को देखा और देखकर उनके मन मे यह सकल्प उत्पन्न हुआ कि यह नरकतुल्य वेदना भोग रही है । यावत् पूर्ववत् भिक्षा लेकर नगर से निकले और भगवान् के पास आकर इस प्रकार निवेदन करने लगे कि—भदन्त ! यह स्त्री पूर्वभव मे कौन थी ?

पूर्वभव

५—एवं खलु गोयमा ! तेण कालेण तेणं समएणं इहेव जम्बुद्दीवे दीवे भारहे वासे सुपइट्ठे नामं नयरे होत्था, रिद्धत्थिमियसमिद्धे । महासेणे राया । तस्स णं महासेणस्स रन्नो धारिणीपामोक्खाणं देवी-सहस्स ओरोहे यावि होत्था । तस्स ण महासेणस्स रन्नो पुत्तो धारिणीए देवीए अत्तए सीहसेणे नाम कुमारे होत्था, अहीणपडिपुण्णपंचिंदियसरीरे, जुवाराया ।

५—हे गौतम ! उस काल और उस समय मे इसी जम्बूद्वीपनामक द्वीप के अन्तर्गत भारतवर्ष मे सुप्रतिष्ठ नाम का एक ऋद्ध, स्तिमित व समृद्ध नगर था । वहाँ पर महासेन राजा राज्य करते थे । उसके अन्त पुर मे धारिणी आदि एक हजार रानियाँ थी । महाराज महासेन का पुत्र और महारानी धारिणी का आत्मज सिंहसेननामक राजकुमार था जो अन्यून पाचो निर्दोष इन्द्रियो वाला व युवराज पद से अलकृत था ।

६—तए णं तस्स सीहसेणस्स कुमारस्स अम्मापियरो अन्नया कयाइ पंच पासायवडिंसयसयाइं करेंति, अब्भुग्गयमूसियाइ । तए णं तस्स सीहसेणस्स कुमारस्स अम्मापियरो अन्नया कयाइ सामापामोक्खाणं पंचण्हं रायवरकन्नगसयाणं एगदिवसे पाणिं गिण्हाविंसु । पंचसयओ दाओ । तए णं से सीहसेणे कुमारे सामापमोक्खाहिं पचसयाहिं देवीहिं सद्धिं उप्पिं जाव[1] विहरइ ।

७—तदनन्तर उस सिंहसेन राजकुमार के माता-पिता ने एक बार किसी समय पाच सौ सुविशाल प्रासादावतसक (श्रेष्ठ महल) बनवाये । तत्पश्चात् किसी अन्य समय उन्होने सिंहसेन राजकुमार का श्यामा आदि पाच सौ सुन्दर राजकन्याओ के साथ एक दिन मे विवाह कर दिया ।

---

१ ज्ञाताधर्मकथा अ० १ ।

पाच सौ-पाच सौ वस्तुओ का प्रीतिदान—दहेज दिया। तदनन्तर राजकुमार सिंहसेन श्यामाप्रमुख उन पाच सौ राजकन्याओ के साथ प्रासादो मे रमण करता हुआ सानन्द समय व्यतीत करने लगा।

८—तए णं से महासेणे राया अन्नया कयाइ कालधम्मुणा संजुत्ते। नीहरणं। राया जाए।

८—तत्पश्चात् किसी समय राजा महासेन कालधर्म को प्राप्त हुए। (आक्रन्दन, रुदन, विलाप करते हुए) राजकुमार सिंहसेन ने नि सरण (शवयात्रा निकाली) तत्पश्चात् राजसिंहासन पर आरूढ होकर राजा बन गया।

९—तए णं से सीहसेणे राया सामाए देवीए मुच्छिए गिद्धे गढिए अज्झोववण्णे अवसेसाओ देवीओ नो आढाइ, नो परिजाणाइ। अणाढायमाणे अपरिजाणमाणे विहरइ।

तए णं तासिं एगूणगाणं पंचण्हं देवीसयाणं एगूणाइं पञ्चमाईसयाइं इमीसे कहाए लद्धट्ठाइं समाणाइ 'एवं खलु सीहसेणे राया सामाएदेवीए मुच्छिए गिद्धे गढिए अज्झोववण्णे अम्हं धूयाओ नो आढाइ, नो परिजाणाइ, अणाढायमाणे, अपरिजाणमाणे विहरइ। तं सेयं खलु अम्हं सामं देविं अग्गिप्पओगेण वा विसप्पओगेण वा, सत्थप्पओगेण वा जीवियाओ ववरोवित्तए, एवं सपेहेंति, सपेहित्ता सामाए देवीए अंतराणि य छिद्दाणि य विवराणि य पडिजागरमाणीओ विहरान्ति।

९—तदनन्तर महाराजा सिंहसेन श्यामादेवी मे मूर्च्छित, गृद्ध, ग्रथित व अध्युपपन्न होकर अन्य देवियो का न आदर करता है और न उनका ध्यान ही रखता है। इसके विपरीत उनका अनादर व विस्मरण करके सानद समय यापन कर रहा है।

तत्पश्चात् उन एक कम पाच सौ देवियो—रानियो की एक कम पाच सौ माताओ को जब इस वृत्तान्त का पता लगा कि—'राजा, सिंहसेन श्यामादेवी मे मूर्च्छित, गृद्ध, ग्रथित व अध्युपपन्न होकर हमारी कन्याओ का न तो आदर करता और न ध्यान ही रखता है, अपितु उनका अनादर व विस्मरण करता है, तब उन्होने मिलकर निश्चय किया कि हमारे लिये यही उचित है कि हम श्यामादेवी को अग्नि के प्रयोग से, विष के प्रयोग से अथवा शस्त्र के प्रयोग से जीवन रहित कर (मार) डाले। इस तरह विचार करती हैं और विचार करने के अनतर अन्तर (जब राजा का आगमन न हो) छिद्र (राजा के परिवार का कोई व्यक्ति न हो) की प्रतीक्षा करती हुई समय बिताने लगी।

१०—तए णं सा सामादेवी इमीसे कहाए लद्धट्ठा समाणी एवं वयासी—'एवं खलु, सामी! एगूणगाणं पंचण्हं सवत्तीसयाणं एगूणगाइं पचमाइसयाइ इमीसे कहाए लद्धट्ठाइं समाणाइं अन्नमन्न एव वयासी—'एव खलु, सीहसेणे—जाव पडिजागरमाणीओ विहरन्ति। तं न नज्जइ णं मम केणइ कुमारेण मारिस्सति, त्तिकट्टु .भीया तत्था तसिया उव्विगा संजायभया जाव जेणेव कोवघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता ओहयमणसंकप्पा जाव झियाइ।

१०—इधर श्यामादेवी को भी इस षड्यन्त्र का पता लग गया। जब उसे यह वृत्तान्त विदित हुआ तब वह इस प्रकार विचार करने लगी—मेरी एक कम पाच सौ सपत्नियो (सोतो) की एक कम पाच सौ माताए—'महाराजा सिंहसेन श्यामा मे अत्यन्त आसक्त होकर हमारी पुत्रियो

का आदर नहीं करते, यह जानकर एकत्रित हुई और 'अग्नि, शस्त्र या विष के प्रयोग से श्यामा के जीवन का अन्त कर देना ही हमारे लिए श्रेष्ठ है' ऐसा विचार कर वे अवसर की खोज में हैं। जब ऐसा है तो न जाने वे किस कुमीत से मुझे मारें ? ऐसा विचार कर वह श्यामा भीत, त्रस्त, उद्विग्न व भयभीत हो उठी और जहाँ कोपभवन था वहाँ आई। आकर मानसिक संकल्पों के विफल रहने से मन में निराश होकर आर्त्त ध्यान करने लगी।

११—तए णं से सीहसेणे राया इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे जेणेव कोवघरए, जेणेव सामा देवी, तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता सामं देविं ओहयमणसंकप्पं जाव पासइ, पासित्ता एवं वयासी—"किं णं तुमं देवाणुप्पिए ! ओहयमणसंकप्पा जाव झियासि ?"

तए णं सा सामा देवी सीहसेणेण रन्ना एवं वुत्ता समाणी उप्फेणउप्फेणियं सीहसेणं रायं एवं वयासी—'एवं खलु सामी ! मम एगूणपंचसवत्तिसयाणं एगूण—पंचमाइसयाणं इमीसे कहाए लद्धट्ठाणं समाणाणं अन्नमन्नं सद्दावेंति, सद्दावित्ता एवं वयासी—'एवं खलु सीहसेणे राया सामाए देवीए उवरिं मुच्छिए गिद्धे गढिए अज्झोववण्णे अम्हं धूयाओ नो आढाइ, नो परिजाणइ, अणाढायमाणे, अपरिजाणमाणे विहरइ, तं सेयं खलु, अम्हं सामं देविं अग्गिप्पओगेण वा विसप्पओगेण वा सत्थप्पओगेण वा जीवियाओ ववरोवित्तए।' एवं संपेहेंति, संपेहित्ता मम अंतराणि य छिद्दाणि य विवराणि य पडिजागरमाणीओ विहरंति। तं न नज्जइ णं सामी ! ममं केणइ कुमारेण मारिस्संति त्ति कट्टु, भीया जाव झियामि।

११—तदनन्तर सिंहसेन राजा इस वृत्तान्त से अवगत हुआ और जहाँ कोपगृह था और जहां श्यामादेवी थी वहाँ पर आया। आकर जिसके मानसिक संकल्प विफल हो गये हैं, जो निराश व चिन्तित हो रही है, ऐसी निस्तेज श्यामादेवी को देखकर कहा—हे देवानुप्रिये ! तू क्यों इस तरह अपहृतमनःसंकल्पा होकर चिन्तित हो रही है ?

सिंहसेन राजा के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर दूध के उफान के समान क्रुद्ध हुई अर्थात् क्रोधयुक्त प्रबल वचनों से सिंह राजा के प्रति इस प्रकार बोली—

हे स्वामिन् ! मेरी एक कम पांच सौ सपत्नियों (सोतों) की एक कम पांच सौ माताएं इस वृत्तान्त को (कि आप मुझमें अनुरक्त हैं) जानकर इकट्ठी होकर एक दूसरे को इस प्रकार कहने लगीं—महाराज सिंहसेन श्यामादेवी में अत्यन्त आसक्त, गृद्ध, ग्रथित व अध्युपपन्न हुए हमारी कन्याओं का आदर सत्कार नहीं करते हैं। उनका ध्यान भी नहीं रखते हैं; प्रत्युत उनका अनादर व विस्मरण करते हुए समय-यापन कर रहे हैं; इसलिये अब हमारे लिये यही समुचित है कि अग्नि, विष या किसी शस्त्र के प्रयोग से श्यामा का अन्त कर डालें। तदनुसार वे मेरे अन्तर, छिद्र और विवर की प्रतीक्षा करती हुई अवसर देख रही हैं। न जाने मुझे किस कुमौत से मारें ! इस कारण भयाक्रान्त हुई मैं कोपभवन में आकर आर्त्तध्यान कर रही हूँ।

१२—तए णं से सीहसेणे सामं देविं एवं वयासी—'मा णं तुमं देवाणुप्पिए ! ओहयमणसंकप्पा जाव झियाहि। अहं णं तहा जत्तिहामि जहा णं तव नत्थि कत्तो वि सरीरस्स आबाहे पबाहे वा भविस्सइ' त्ति कट्टु ताहिं इट्ठाहिं जाव (कंताहिं पियाहिं मणुण्णाहिं मणामाहिं वग्गूहिं) समासासेइ।

समासासित्ता तओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—'गच्छह णं तुब्भे, देवाणुप्पिया! सुपइट्ठस्स नयरस्स बहिया एगं महं कूडागारसालं करेह, अणेगखंभसयसंनिविट्ठं जाव पासादीयं करेह, मम एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह।'

तए णं ते कोडुंबियपुरिसा करयल जाव पडिसुणेंति, पडिसुणित्ता सुपइट्ठनयरस्स बहिया पच्चत्थिमे दिसीविभाए एगं महं कूडागार-सालं जाव करेंति अणेगखंभसयसंनिविट्ठं जाव पासाइयं, जेणेव सीहसेणे राया तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता तमाणत्तियं पच्चप्पिणंति।

१२—तदनन्तर महाराजा सिंहसेन ने श्यामादेवी से इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रिये! तू इस प्रकार अपहृत मन वाली—हतोत्साह होकर आर्तध्यान मत कर। निश्चय ही मैं ऐसा उपाय करूंगा कि तुम्हारे शरीर को कहीं से भी किसी प्रकार की आबाधा—ईषत् पीड़ा तथा प्रबाधा—विशेष बाधा न होने पाएगी। इस प्रकार श्यामा देवी को इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ, मनोहर वचनों में आश्वासन देता है और आश्वासन देकर वहाँ से निकल जाता है। निकलकर कौटुम्बिक-अनुचर पुरुषों को बुलाता है और उनसे कहता है—तुम लोग जाओ और जाकर सुप्रतिष्ठित नगर से बाहर पश्चिम दिशा के विभाग में एक बड़ी कूटाकारशाला बनाओ जो सैकड़ों स्तम्भों से युक्त हो, प्रासादीय, अभिरूप, प्रतिरूप तथा दर्शनीय हो—अर्थात् देखने में अत्यन्त सुन्दर हो।

वे कौटुम्बिक पुरुष दोनों हाथ जोड़ कर सिर पर दसों नख वाली अञ्जलि रख कर इस राजाज्ञा को शिरोधार्य करते हुए चले जाते हैं। जाकर सुप्रतिष्ठित नगर के बाहर पश्चिम दिक् विभाग में एक महती व अनेक स्तम्भों वाली प्रासादिक, दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप अर्थात् अत्यन्त मनोहर कूटाकारशाला तैयार करवाते हैं—तैयार करवा कर महाराज सिंहसेन की आज्ञा प्रत्यर्पण करते हैं—अर्थात् कूटाकार शाला यथायोग्य रूप से तैयार हो गई, ऐसा निवेदन करते हैं।

१२—तए णं से सीहसेणे राया अन्नया कयाइ एगूणगाणं पंचण्हं देवीसयाणं एगूणाइं पंचमाइसयाइं आमंतेइ। तए णं तासिं एगूणगाणं पंचण्हं देवीसयाणं एगूणाइं पंचमाइसयाइं सीहसेणेणं रन्ना आमंतियाइं समाणाइं सव्वालंकारविभूसियाइं जहाविभवेणं जेणेव सुपइट्ठे नयरे, जेणेव सीहसेणे राया, तेणेव उवागच्छन्ति। तए णं से सीहसेणे राया एगूणगाणं पंचदेवीसयाणं एगूणगाणं पंचमाइसयाणं कूडागारसालं आवासं दलयइ।

१२—तदनन्तर राजा सिंहसेन किसी समय एक कम पांच सौ देवियों (रानियों) की एक कम पांच सौ माताओं को आमन्त्रित करता है। सिंहसेन राजा का आमंत्रण पाकर वे एक कम पांच सौ देवियों की एक कम पांच सौ माताएं सर्वप्रकार से वस्त्रों एवं आभूषणों से सुसज्जित हो अपने-अपने वैभव के अनुसार सुप्रतिष्ठित नगर में राजा सिंहसेन जहाँ थे, वहाँ आ जाती हैं। सिंहसेन राजा भी उन एक कम पांच सौ देवियों की एक कम पांच सौ माताओं को निवास के लिये कूटाकार-शाला में स्थान दे देता है।

१३—तए णं से सीहसेणे राया कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—"गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया! विउलं असणं पाणं खाइमं साइमं उवणेह, सुबहुं पुप्फ-वत्थ-गंध-मल्लालंकारं च कूडागारसालं साहरह।

तए णं ते कोडु बियपुरिसा तहेव जाव साहरंति ।

तए ण तासि एगूणगाणं पंचण्हं देवीसयाणं एगूणगाइं पंचमाईसयाइ सव्वालंकारविभूसियाइ तं विउलं असण पाण खाइमं साइमं सुरं च महु च मेरगं च जाइं च पसण्णं च आसाएमाणाइं गधव्वेहि य नाडएहि य उवगीयमाणाइं उवगीयमाणाइं विहरन्ति ।

१३—तदनन्तर सिंहसेन राजा ने कौटुम्बिक पुरुषो को बुलाकर कहा—'देवानुप्रियो ! तुम जाओ और विपुल अशनादिक ले जाओ तथा अनेकविध पुष्पो, वस्त्रो, गन्धो—सुगन्धित पदार्थों, मालाओ और अलकारो को कूटाकार शाला मे पहुचाओ । कौटुम्बिक पुरुष भी राजा की आज्ञा के अनुसार सभी सामग्री पहुँचा देते है । तदनन्तर सर्व-प्रकार के अलकारो से विभूषित उन एक कम पाच सौ देवियो की एक कम पाच सौ माताओ ने उस विपुल अशनादिक और सुरादिक सामग्री का आस्वादन किया—यथारुचि उपभोग किया और गान्धर्व (गाने वाले व्यक्तियो) तथा नाटक-(नृत्य करने वाले) नर्तको से उपगीयमान-प्रशस्यमान होती हुई सानन्द विचरने लगी । अर्थात् भोजन तथा मद्यपान करके नाच-गान मे मस्त हो गईं ।

१४—तए णं से सीहसेणे राया अद्धरत्तकालसमयसि बहूहिं पुरिसेहिं सद्धि संपरिवुडे जेणेव कूडागारसाला तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता, कूडागारसालाए दुवाराइं पिहेइ, पिहित्ता कूडागारसालाए सव्वओ अगणिकायं दलयइ ।

तए णं तासि एगूणगाणं पञ्चण्ह देवीसयाणं एगूणगाइ पंचमाइसयाइं सीहसेणेण रन्ना आलीवियाइं समाणाइं रोयमाणाइं कंदमाणाइं विलवमाणाइं अत्ताणाइं असरणाइं कालधम्मुणा सजुत्ताइं ।

१४—तत्पश्चात् सिंहसेन राजा अर्द्धरात्रि के समय अनेक पुरुषो के साथ, उनसे घिरा हुआ, जहाँ कूटाकारशाला थी वहाँ पर आया । आकर उसने कूटाकारशाला के सभी दरवाजे बन्द करवा दिये । वन्द करवाकर कूटाकारशाला को चारो तरफ से आग लगवा दी ।

तदनन्तर राजा सिंहसेन के द्वारा आदीप्त की गई, जलाई गई, त्राण व शरण से रहित हुई एक कम पाच सौ रानियो की एक कम पाच सौ माताए रुदन क्रन्दन व विलाप करती हुई कालधर्म को प्राप्त हो गईं ।

१५—तए ण से सीहसेणे राया एयकम्मे एयप्पहाणे एयविज्जे एयसमायारे सुबहुं पावकम्म समज्जिणित्ता चोत्तीसं वाससयाइं परमाउयं पालइत्ता कालमासे काल किच्चा छट्ठीए पुढवीए उक्कोसेण बावीससागरोवमट्ठिइएसु नेरइयेसु नेरइयत्ताए उववन्ने । से णं तओ अणतरं उव्वट्टित्ता इहेव रोहीडए नयरे दत्तस्स सत्थवाहस्स कण्हसिरीए भारियाए कुच्छिसि दारियत्ताए उववन्ने ।

१५—तत्पश्चात् इस प्रकार के कर्म करने वाला, ऐसी विद्या-बुद्धि वाला, ऐसा आचरण करने वाला सिंहसेन राजा अत्यधिक पापकर्मों का उपार्जन करके ३४-सौ वर्ष की परम आयु भोगकर काल करके उत्कृष्ट २२ सागरोपम की स्थिति वाली छट्ठी नरकभूमि में नारक रूप से उत्पन्न हुआ । वही सिंहसेन राजा का जीव स्थिति के समाप्त होने पर वहाँ से निकलकर इसी

रोहीतक नगर मे दत्त सार्थवाह की कृष्णश्री भार्या की कुक्षि मे बालिका के रूप मे उत्पन्न हुआ अर्थात् कन्या के रूप मे गर्भ मे आया ।

१६—तए णं सा कण्हसिरी नवण्ह मासाणं बहुपडिपुण्णाणं जाव दारियं पयाया सुउमाल-पाणिपाया जाव सुरूवा । तए ण तीसे दारियाए अम्मापियरो निव्वत्तबारसाहियाए विउलं असण जाव मित्त-नाइ-नियग-सयण-सबंधि-परियणस्स पुरओ नामधेज्ज करेंति तं होउ ण दारिया देवदत्ता नामेण, तए ण सा देवदत्ता दारिया पंचधाईपरिग्गहिया जाव परिवड्ढइ ।

१६—तब उस कृष्णश्री भार्या ने नव मास परिपूर्ण होने पर एक कन्या को जन्म दिया । वह अत्यन्त कोमल हाथ-पैरो वाली तथा अत्यन्त रूपवती थी । तत्पश्चात् उस कन्या के मातापिता ने बारहवे दिन बहुत-सा अशनादिक तैयार कराया यावत् मित्र, ज्ञाति निजक, स्वजन, सबधीजन तथा परिजनो को निमन्त्रित करके एव भोजनादि से निवृत्त हो लेने पर कन्या का नामकरण सस्कार करते हुए कहा—हमारी इस कन्या का नाम देवदत्ता रक्खा जाता है । तदनन्तर वह देवदत्ता पाच धायमाताओ के सरक्षण मे वृद्धि को प्राप्त होने लगी ।

१७—तए ण सा देवदत्ता दारिया उम्मुक्कबालभावा जाव (विण्णयपरिणयमेत्ता) जोव्वणेण य रूवेण य लावण्णेण य अईव-अईव उक्किट्ठा उक्किट्ठसरीरा यावि होत्था ।

तए ण सा देवदत्ता दारिया अन्नया कयाइ ण्हाया जाव[1] विभूसिया बहूहिं खुज्जाहिं जाव परि-क्खित्ता उप्पिं आगासतलगंसि कणगतिंदूसेण कीलमाणी विहरइ ।

१७—तदनन्तर वह देवदत्ता बाल्यावस्था से मुक्त होकर यावत् यौवन, रूप व लावण्य से अत्यन्त उत्तम व उत्कृष्ट शरीरवाली होगई ।

एक बार वह देवदत्ता स्नान करके यावत् समस्त आभूषणो से विभूषित होकर बहुत सी कुब्जा आदि दासियो के साथ अपने मकान के ऊपर सोने की गेद के साथ क्रीडा करती हुई विहरण कर रही थी ।

१८—इमं च ण वेसमणदत्ते राया ण्हाए जाव[2] विभूसिए आसं दुरुहइ, दुरुहित्ता बहूहिं पुरिसेहिं सद्धि सपरिवुडे आसवाहिणियाए निज्जायमाणे दत्तस्स गाहावइस्स गिहस्स अदूरसामंतेण वीइवयइ । तए ण से वेसमणे राया जाव वीइवयमाणे देवदत्तं दारियं उप्पिं आगासतलगंसि कणगतिंदूसेणं कीलमाणिं पासइ, पासित्ता देवदत्ताए दारियाए रूवेण य जोव्वणेण य लावण्णेण य जायविम्हए कोडुंबिय-पुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एव वयासी—कस्स ण देवाणुप्पिया ! एसा दारिया ? किं वा नाएधेज्जेणं ?

तए णं ते कोडुंबियपुरिसा वेसमण रायं करयल जाव एव वयासी—'एस ण सामी ! दत्तस्स सत्थवाहस्स धूया, कण्हसिरीए भारियाए अत्तया देवदत्ता नाम दारिया रूवेण य जोव्वणेण य लावण्णेण य उक्किट्ठसरीरा ।'

१८—इधर स्नानादि से निवृत्त यावत् सर्वालङ्कारविभूषित राजा वैश्रमणदत्त अश्व पर

१-२-द्वि अ, सूत्र २२

आरोहण करता है और आरोहण करके बहुत से पुरुषो के साथ परिवृत—घिरा हुआ, अश्ववाहनिका—अश्वक्रीडा के लिये जाता हुआ दत्त गाथापति के घर के कुछ पास से निकलता है। तदनन्तर वह वैश्रमणदत्त राजा देवदत्ता कन्या को ऊपर सोने की गेद से खेलती हुई देखता है और देखकर देवदत्ता दारिका के रूप, यौवन व लावण्य से विस्मय को प्राप्त होता है। फिर कौटुम्बिक पुरुषो—अनुचरो को बुलाता है और बुलाकर इस प्रकार कहता है—'हे देवानुप्रियो! यह बालिका किसकी है? और इसका क्या नाम है?'

तब वे कौटुम्बिक पुरुष हाथ जोडकर यावत् इस प्रकार कहने लगे—'स्वामिन्! यह कन्या दत्त गाथापति की पुत्री और कृष्णश्री की आत्मजा है जो रूप, यौवन तथा लावण्य-कान्ति से उत्तम तथा उत्कृष्ट शरीर वाली है।

१९—तए णं से वेसमणे राया आसवाहिणियाओ पडिनियत्ते समाणे अब्भितरठाणिज्जे पुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एव वयासी—'गच्छह णं तुब्भे, देवाणुप्पिया! दत्तस्स धूयं कण्हसिरीए भारियाए अत्तयं देवदत्तं दारियं पुस्सनंदिस्स जुवरन्नो भारियत्ताए वरेह, जइ वि सा सयरज्जसुक्का।'

१९—तदनन्तर राजा वैश्रमणदत्त अश्ववाहनिका (अश्वक्रीडा) से वापिस आकर अपने आभ्यन्तर स्थानीय—अन्तरङ्ग पुरुषो को बुलाता है और बुलाकर उनको इस प्रकार कहता है—

देवानुप्रियो! तुम जाओ और जाकर सार्थवाह दत्त की पुत्री और कृष्णश्री भार्या की आत्मजा देवदत्ता नाम की कन्या की युवराज पुष्यनन्दी के लिये भार्या रूप मे माग करो। यदि वह राज्य के बदले भी प्राप्त की जा सके तो भी प्राप्त करने के योग्य है।

२०—तए ण ते अब्भितरठाणिज्जा पुरिसा वेसमणेण रन्ना एव वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठा करयल जाव एयमट्ठ पडिसुर्णेति, पडिसुणित्ता ण्हाया जाव[1] सुद्धप्पावेसाइ वत्थाइ पवरपरिहिया जेणेव दत्तस्स गिहे तेणेव उवागच्छित्था। तए ण से दत्ते सत्थवाहे ते पुरिसे एज्जमाणे पासइ, पासित्ता हट्ठतुट्ठे, आसणाओ अब्भुट्ठेइ। अब्भुट्ठित्ता सत्तट्ठपयाइं पच्चुग्गए आसणेण उवनिमतेइ, उवनिमतित्ता ते पुरिसे आसत्थे वीसत्थे सुहासणवरगए एव वयासी—'सदिसतु ण देवाणुप्पिया! कि आगमणप्पओयण?'

तए ण ते रायपुरिसा दत्त सत्थवाह एव वयासी—'अम्हे ण देवाणुप्पिया! तव धूय कण्हसिरीए अत्तय देवदत्त दारिय पूसनदिस्स जुवरन्नो भारियत्ताए वरेमो। तं जइ ण जाणासि देवाणुप्पिया! जुत्त वा पत्त वा सलाहणिज्ज वा सरिसो वा सजोगो, दिज्जउ ण देवदत्ता भारिया पूसनंदिस्स जुवरन्नो। भण, देवाणुप्पिया! किं दलयामो सुक्क?

तए ण से दत्ते अब्भितरठाणिज्जे पुरिसे एवं वयासी—'एय चेव देवाणुप्पिया! मम सुक्क ज ण वेसमणे राया मम दारियानिमित्तेण अणुगिण्हइ।

ते अब्भितरठाणिज्जे पुरिसे विउलेणं पुप्फ-वत्थ-गध-मल्लालकारेणं सक्कारेइ, संमाणेइ सक्कारित्ता समाणित्ता पडिविसज्जेइ।

---

१ द्वि अ, सूत्र २२

तए ण ते अब्भिंतरठाणिज्जपुरिसा जेणेव वेसमणे राया तेणेव उवागच्छन्ति, उवागच्छित्ता वेसमणस्स रन्नो एयमट्ठ निवेदेंति।

२०—तदनन्तर वे अभ्यतर-स्थानीय पुरुष—अन्तरङ्ग व्यक्ति राजा वैश्रमण की इस आज्ञा को सम्मानपूर्वक स्वीकार कर, हर्प को प्राप्त हो यावत् स्नानादि क्रिया करके तथा राजसभा मे प्रवेश करने योग्य उत्तम वस्त्र पहनकर जहाँ दत्त सार्थवाह का घर था, वहाँ आये। दत्त सार्थवाह भी उन्हे आता देखकर बडी प्रसन्नता के साथ आसन से उठकर उनके सन्मान के लिए सात-आठ कदम उनके सामने अगवानी करने गया। उनका स्वागत कर आसन पर वैठने की प्रार्थना की। तदनन्तर आश्वस्त—गतिजन्य श्रम के न रहने से स्वास्थ्य-शाति को प्राप्त हुए तथा विश्वस्त-मानसिक क्षोभ जरा भी न रहने के कारण विशेष रूप से स्वस्थता को उपलब्ध हुए एव सुखपूर्वक उत्तम आसनो पर अवस्थित हुए। इन आने वाले राजपुरुषो से दत्त ने इस प्रकार कहा—देवानुप्रियो! आज्ञा दीजिये, आपके शुभागमन का प्रयोजन क्या है? अर्थात् मैं आपके आगमन का प्रयोजन जानना चाहता हूँ।

दत्त सार्थवाह के इस तरह पूछने पर आगन्तुक राजपुरुषो ने कहा—'हे देवानुप्रिय! हम आपकी पुत्री और कृष्णश्री की आत्मजा देवदत्ता नाम की कन्या की युवराज पुष्यनंदी के लिए भार्या रुप से मंगनी करने आये है। यदि हमारी यह माग आपको युक्त-उचित, अवसरप्राप्त, श्लाघनीय तथा वरवधू का यह सयोग अनुरूप जान पडता हो तो देवदत्ता को युवराज पुष्यनन्दी के लिए दीजिये और बतलाइये कि इसके लिए आपको क्या शुल्क-उपहार दिया जाय?

उन आभ्यन्तरस्थानीय पुरुषो के इस कथन को सुनकर दत्त बोले—'देवानुप्रियो! मेरे लिए यही वडा शुल्क है कि महाराज वैश्रमणदत्त (अपने पुत्र के लिए) मेरी इस वालिका को ग्रहण कर मुझे अनुगृहीत कर रहे है।'

तदनन्तर दत्त गाथापति ने उन अन्तरङ्ग राजपुरुषो का पुष्प, गध, माला तथा अलङ्कारादि से यथोचित सत्कार-सन्मान किया और सत्कार-सन्मान करके उन्हे विसर्जित किया। वे आभ्यन्तर स्थानीय पुरुष जहा वैमश्रणदत्त राजा था वहाँ आये और उन्होने वैश्रमण राजा को उक्त सारा वृत्तान्त निवेदित किया।

२१—तए ण से दत्ते गाहावई अन्नया कयाइ सोहणंसि तिहि-करण-दिवस-नक्खत्त-मुहुत्तंसि विउल असणं पाण खाइमं साइमं उवक्खडावेइ, उवक्खडावेत्ता मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियण आमंतेइ। ण्हाए जाव पायच्छित्ते सुहासणवरगए तेण मित्त० सद्धि सपरिवुडे त विउल असणं पाण खाइमं साइम आसाएमाणे विहरइ। जिमियभुत्तुत्तराएगए वि य ण आयते चोक्खे परमसुइभूए त मित्तनाइनियगसयण-संबंधिपरियण विउलेणं पुप्फ-वत्थ-गध-मल्लालंकारेणं सक्कारेइ सम्माणेइ, सक्कारित्ता सम्माणेत्ता देवदत्त दारियं ण्हाय जाव विभूसियसरीरं पुरिससहस्सवाहिणिं सीयं दुरुहेइ, दुरुहेता सुबहुमित्त जाव सद्धि सपरिवुडे सव्विड्ढीए जाव नाइयरवेणं रोहीडय नयरं मज्झंमज्झेण जेणेव वेसमणरन्नो गिहे, जेणेव वेसमणे राया, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयल जाव वद्धावेइ, वद्धावेत्ता वेससणस्स रन्नो देवदत्त दारियं उवणेइ।

२१—तदनन्तर किसी अन्य समय दत्त गाथापति शुभ तिथि, करण, दिवस, नक्षत्र व मुहूर्त्त मे विपुल अशनादिक सामग्री तैयार करवाता है और करवाकर मित्र, ज्ञाति, निजक स्वजन सबधी तथा परिजनो को आमन्त्रित कर यावत् स्नानादि करके दुष्ट स्वप्नादि के फल को विनष्ट करने के लिए मस्तक पर तिलक व अन्य माङ्गलिक कार्य करके सुखप्रद आसन पर स्थित हो उस विपुल अशनादिक का मित्र, ज्ञाति, स्वजन, सम्बन्धी व परिजनो के साथ आस्वादन, विस्वादन करने के अनन्तर उचित स्थान पर वैठ आचान्त (आचमन-कुल्ला किए हुए) चोक्ष (मुखादिगत लेप को दूर किए हुए) अत· परम शुचिभूत-परम शुद्ध होकर मित्र, ज्ञाति, निजक-स्वजन-सम्बन्धियो का विपुल पुष्प, माला, गन्ध, वस्त्र, अलङ्कार आदि से सत्कार करता है, सन्मान करता है। सत्कार व सन्मान करके देवदत्ता-नामक अपनी पुत्री को स्नान करवाकर यावत् शारीरिक आभूषणो द्वारा उसके शरीर को विभूपित कर पुरुषसहस्रवाहिनी—एक हजार पुरुषो से उठाई जाने वाली शिविका-पालखी मे विठलाता है। विठाकर वहुत से मित्र व ज्ञाति जनो आदि से घिरा हुआ सर्व प्रकार के ठाठ-ऋद्धि से तथा वादित्रध्वनि—वाजे-गाजे के साथ रोहीतक नगर के वीचो वीच होकर जहाँ वैश्रमण राजा का घर था और जहा वैश्रमण राजा था, वहाँ आया और आकर हाथ जोडकर उसे बधाया। बधा कर वैश्रमण राजा को देवदत्ता कन्या अर्पण कर दी।

२२—तए णं से वेसमणे राया देवदत्तं दारियं उवणीयं पासइ, पासित्ता हट्ठतुट्ठ विउलं असणं ४ उवक्खडावेइ, उवक्खडावेत्ता मित्त नाइ० आमंतेइ, जाव सक्कारेइ सम्माणेइ सक्कारित्ता सम्माणित्ता पूसनदिकुमारं देवदत्तं च दारियं पट्टयं दुरुहेइ, दुरुहित्ता सेयापीएहिं कलसेहिं मज्जावेइ, मज्जावेत्ता वरनेवत्थाइं करेइ, अग्गिहोमं करेइ, करेत्ता पूसनन्दिकुमारं देवदत्ताए दरियाए पाणिं गिण्हावेइ।

तए णं से वेसमणे राया पूसनंदिस्स कुमारस्स देवदत्त दारिय सव्विड्ढीए जाव रवेण महया इड्ढीसक्कारसमुदएणं पाणिग्गहणं कारेइ, कारेत्ता देवदत्ताए दारियाए अम्मापियरो मित्त जाव परियणं च विउलेणं असणपाणखाइमसाइमेण वत्थगंधमल्लालंकारेण य सक्कारेइ सम्माणेइ जाव पडिविसज्जेइ।

तए णं पूसनन्दी कुमारे देवादत्ताए सद्धिं उप्पिं पासायवरगए फुट्टमाणेहिं मुइंगमत्थएहिं वत्तीसइवद्धनाडएहिं उवगिज्जमाणे जाव (उवलालिज्जमाणे उवलालिज्जमाणे इट्ठे सद्द-फरिस-रस-रूव-गधे विउले माणुस्सए कामभोगे पच्चणुभवमाणे) विहरइ।

२२—तव राजा वैश्रमण लाई हुई—अर्पण की गई उस देवदत्ता दारिका को देखकर बडे हर्पित हुए और हर्पित होकर विपुल अशनादिक तैयार कराया और मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन, सम्वन्धी व परिजनो को आमन्त्रित कर उन्हे भोजन कराया। उनका पुष्प, वस्त्र, गध, माला व अलङ्कार आदि से सत्कार-सन्मान किया। तदनन्तर कुमार पुष्यनन्दी और कुमारी देवदत्ता को पट्टक-पर वैठाकर श्वेत व पीत अर्थात् चाँदी और सोने के कलशो से स्नान कराते है। तदनन्तर सुन्दर वेशभूपा से सुसज्जित करते है। अग्निहोम-हवन कराते हैं। हवन कराने के वाद कुमार पुष्यनदी को कुमारी देवदत्ता का पाणिग्रहण कराते है। तदनन्तर वह वैश्रमणदत्त नरेश पुष्यनदी व देवदत्ता का सम्पूर्ण ऋद्धि यावत् महान वाद्य-ध्वनि और ऋद्धिसमुदाय व सन्मानसमुदाय के

साथ विवाह रचाते हैं। तात्पर्य यह है कि विधिपूर्वक बडे समारोह के साथ कुमार पुष्यनदी और कुमारी देवदत्ता का विवाह सम्पन्न हो जाता है।

तदनन्तर देवदत्ता के माता-पिता तथा उनके साथ आने वाले अन्य उनके मित्रजनो, ज्ञातिजनो निजकजनो, स्वजनो, सम्बन्धिजनो और परिजनो का भी विपुल अशनादिक तथा वस्त्र, गन्ध, माला और अलङ्कारादि से सत्कार करते हैं, सन्मान करते है, सत्कार व सन्मान करने के बाद उन्हे विदा करते हैं।

राजकुमार पुष्यनदी श्रेष्ठिपुत्री देवदत्ता के साथ उत्तम प्रासाद मे विविध प्रकार के वाद्यो और जिनमे मृदङ्ग बज रहे हैं, ऐसे ३२ प्रकार के नाटको द्वारा उपगीयमान—प्रशसित होते सानद मनुष्य सबधी शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गधरूप भोग भोगते हुए समय बिताने लगे।

२३—तए णं से वेसमणे राया अन्नया कयाइ कालधम्मुणा संजुत्ते। नीहरण जाव राया जाव पूसनंदी।

२३—कुछ समय बाद महाराजा वैश्रमण कालधर्म को प्राप्त हो गये। उनकी मृत्यु पर शोक-ग्रस्त पुष्यनन्दी ने बडे समारोह के साथ उनका निस्सरण किया यावत् मृतक-कर्म करके राज सिंहासन पर आरूढ हुए यावत् युवराज से राजा बन गए।

२४—तए ण से पूसनंदी राया सिरीए देवीए माइभत्तए यावि होत्था। कल्लाकल्लि जेणेव सिरीदेवी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सिरीए देवीए पायवडणं करेइ, करित्ता सयपाग-सहस्सपागेहिं तेल्लेहिं अब्भिंगावेइ। अट्ठिसुहाए, मंससुहाए, तयासुहाए रोमसुहाए चउव्विहाए संवाहणाए संवाहावेइ सवाहावेता सुरभिणा गधवट्टएण उव्वट्टित्तावेइ, उव्वट्टावेत्ता तिहिं उदएहिं मज्जावेइ, तंजहा—उसिणोदएण, सीओदएण, गन्धोदएण। विउल असणं पाणं खाइमं साइमं भोयावेइ। सिरीए देवीए ण्हायाए जाव पायच्छित्ताए जाव जिमियभुत्तुत्तरागयाए तए णं पच्छा ण्हाइ वा भुंजइ वा, उरालाइं माणुस्सगाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरइ।

२४—पुष्यनन्दी राजा अपनी माता श्रीदेवी का परम भक्त था। प्रतिदिन माता श्रीदेवी जहा भी हो वहाँ आकर श्रीदेवी के चरणो मे प्रणाम करता और प्रणाम करके शतपाक और सहस्रपाक (सौ औषधो के तथा हजार औषधो के सम्मिश्रण से बने) तैलो की मालिश करवाता था। अस्थि को सुख देने वाले, मास को सुखकारी, त्वचा की सुखप्रद और दोनो को सुखकारी ऐसी चार प्रकार की सवाहन—अगमर्दन क्रिया से सुखशान्ति पहुँचाता था। तदनन्तर सुगन्धित गन्धवर्तक—बटने से उद्वर्तन करवाता अर्थात् बटना मलवाता। उसके पश्चात् उष्ण, शीत और सुगन्धित जल से स्नान करवाता, फिर विपुल अशनादि चार प्रकार का भोजन कराता। इस प्रकार श्रीदेवी के नहा लेने यावत् अशुभ स्वप्नादि के फल को विफल करने के लिए मस्तक पर तिलक व अन्य माङ्गलिक कार्य करके भोजन कर लेने के अनन्तर अपने स्थान पर आ चुकने पर और वहाँ पर कुल्ला तथा मुखगत लेप को दूर कर परम शुद्ध हो सुखासन पर बैठ जाने के बाद ही पुष्यनन्दी स्नान करता, भोजन करता था। तथा फिर मनुष्य सम्बन्धी उदार भोगो का उपभोग करता हुआ समय व्यतीत करता था।

२५—तए णं तीसे देवदत्ताए देवीए अन्नया कयाइ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि कुडुंबजागरियं जागरमाणीए इमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए कप्पिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पन्ने—'एवं खलु पूसनंदी राया सिरीए देवीए माइभत्ते समाणे जाव विहरइ। तं एएणं वक्खेवेणं नो संचाएमि पूसनंदिणा रन्ना सद्धिं उरालाइं माणुस्सगाइं भोगभोगाइं भुंजमाणी विहरित्तए। तं सेयं खलु ममं सिरिं देविं अग्गिप्पओगेण वा सत्थप्पओगेण वा विसप्पओगेण वा मंतप्पओगेण वा जीवियाओ ववरोवित्तए, ववरोवेत्ता पूसनंदिणा रन्ना सद्धिं उरालाइं माणुस्सगाइं भोगभोगाइं भुंजमाणीए विहरित्तए' एवं सपेहेइ सपेहित्ता सिरीए देवीए अंतराणि य छिद्दाणि य विवराणि य पडिजागरमाणी विहरइ।

२५—तदनन्तर किसी समय मध्यरात्रि मे कुटुम्ब सम्बन्धी चिन्ताओ मे उलझी हुई (जागती हुई) देवदत्ता के हृदय मे यह सकल्प उत्पन्न हुआ कि 'इस प्रकार निश्चय ही पुष्यनदी राजा अपनी माता श्रीदेवी का 'यह पूज्या है' इस बुद्धि से परम भक्त बना हुआ है। इस अवक्षेप-विघ्न के कारण मैं पुष्यनन्दी राजा के साथ पर्याप्त रूप से मनुष्य सम्बन्धी विषयभोगो का उपभोग नही कर पाती हूँ। इसलिये अब मुझे यही करना योग्य है कि अग्नि, शस्त्र विष या मन्त्र के प्रयोग से श्रीदेवी को जीवन से व्यपरोपित करके—मार डाल कर महाराज पुष्यनन्दी के साथ उदार-प्रधान मनुष्य सम्बन्धी विषय-भोगो का यथेष्ट उपभोग करू।' ऐसा विचार कर वह श्रीदेवी को मारने के लिये अन्तर (जिस समय राजा का आगमन न हो, छिद्र (राजपरिवार के किसी सदस्य की जिस समय उपस्थिति न हो) और विवर (जिस समय कोई सामान्य मनुष्य भी न हो ऐसे अवसर) की प्रतीक्षा करती हुई विहरण करने लगी।

२६—तए णं सा सिरीदेवी अन्नया कयाइ मज्जाइया विरहियसयणिज्जंसि सुहपसुत्ता जाया यावि होत्था। इमं च णं देवदत्ता देवी जेणेव सिरीदेवी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सिरिं देविं मज्जाइय विरहियसयणिज्जंसि सुहपसुत्तं पासइ, पासेत्ता दिसालोयं करेइ, करेत्ता जेणेव भत्तघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता लोहदण्ड परामुसइ, परामुसित्ता लोहदंडं तावेइ, तत्तं समजोइभूयं फुल्ल-किंसुयसमाणं संडासएण गहाय जेणेव सिरीदेवी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सिरीए देवीए अवाणंसि पक्खिवइ।

तए ण सा सिरीदेवी महया-महया सद्देण आरसित्ता कालधम्मुणा सजुत्ता।

२६—तदनन्तर किसी समय स्नान की हुई श्रीदेवी एकान्त मे अपनी शय्या पर सुखपूर्वक सो रही थी। इधर लब्धावकाश देवदत्ता देवी भी जहाँ श्रीदेवी थी वहाँ पर आती है। स्नान व एकान्त मे शय्या पर सुखपूर्वक सोई हुई श्रीदेवी को देखती है। देखकर दिशा का अवलोकन करती है अर्थात् कोई मुझे देख तो नही रहा है, यह निश्चय करने के लिए चारो तरफ देखती है। उसके बाद जहाँ भक्तगृह-रसोड़ा था वहाँ पर जाती है और जाकर लोहे के डडे को ग्रहण करती है। ग्रहण कर लोहे के उस डडे को तपाती है, तपाकर अग्नि के समान देदीप्यमान या खिले हुए किशुक—केसू के फूल के समान लाल हुए उस लोहे के दण्ड को सडासी से पकडकर जहाँ श्रीदेवी (सोई) थी वहाँ आती है। आकर श्रीदेवी के अपान—गुदास्थान मे घुसेड देती है। लोहदड के घुसेडने से बडे जोर के शब्दो से चिल्लाती हुई श्रीदेवी कालधर्म से सयुक्त हो गई-मृत्यु को प्राप्त हो गई।

२७—तए ण तीसे सिरीए देवीए दासचेडीओ आरसियसद्द सोच्चा निसम्म जेणेव सिरी देवी तेणेव उवागच्छन्ति, उवागच्छित्ता देवदत्त देविं तओ अववक्कममाणि पासंति, पासेत्ता जेणेव सिरीदेवी तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता सिरिं देविं निप्पाणं निच्चेट्ठ जीवियविप्पजढं पासन्ति, पासित्ता 'हा हा अहो अकज्ज' इति कट्टु रोयमाणीओ कदमाणीओ विलवमाणीओ जेणेव पूसनंदी राया तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता पूसनंदि राय एव वयासी—'एव खलु, सामी ! सिरीदेवी देवदत्ताए देवीए अकाले चेव जीवियाओ ववरोविया ।'

तए ण से पूसनदी राया तासिं दासचेडीण अतिए एयमट्ठ सोच्चा निसम्म महया माइसोएण अप्फुण्णे समाणे परसुनियत्ते विव चपग-वरपायवे धसत्ति धरणियलसि सव्वगेहिं सनिवडिए ।

२७—तदनन्तर उस श्रीदेवी की दासियाँ भयानक चीत्कार शब्दो को सुनकर अवधारण कर जहा श्रीदेवी थी वहाँ आती हैं और वहाँ से देवदत्ता देवी को निकलती हुई—वापिस जाती देखती है । देखकर जिधर श्रीदेवी सोई हुई थी वहाँ आती हैं, आकर श्रीदेवी को प्राणरहित, चेष्टा रहित देखती है । देखकर—'हा ! हा ! अहो ! बडा अनर्थ हुआ' इन प्रकार कहकर रुदन, आक्रन्दन तथा विलाप करती हुई, जहाँ पर पुष्यनदी राजा था वहा पर जाती हैं । जाकर महाराजा पुष्यनन्दी से इस प्रकार निवेदन करती हैं—'निश्चय ही हे स्वामिन् ! श्रीदेवी को देवदत्ता देवी ने अकाल मे ही जीवन से पृथक् कर दिया—अर्थात् मार डाला है ।'

तदनन्तर पुष्यनन्दी राजा उन दासियो से इस वृत्तान्त को सुन समझ कर महान् मातृशोक से आक्रान्त होकर परशु से काटे हुए चम्पक वृक्ष की भाति धडाम से पृथ्वी-तल पर सर्व अङ्गो से गिर पडा ।

२८—तए ण से पूसनन्दी राया मुहुत्तन्तरेण आसत्थे वीसत्थे समाणे बहूहिं राईसर जाव सत्थवाहेहिं मित्त जाव परियणेण सद्धिं रोयमाणे कदमाणे विलवमाणे सिरीए देवीए महया इड्ढी सक्कार-समुदएण नीहरण करेइ, करेत्ता आसुरुत्ते रुट्ठे कुविए चडिक्किए मिसिमिसेमाणे देवदत्त देविं पुरिसेहिं गिण्हावेइ, एतेण विहाणेण वज्झं आणवेइ ।

'त एव खलु, गोयमा ! देवदत्ता देवी पुरापोराणाणं जाव विहरइ ।'

२८—तदनन्तर एक मुहूर्त के बाद (थोडे समय के पश्चात्) वह पुष्यनन्दी राजा आश्वस्त—होश मे आया । अनेक राजा-नरेश, ईश्वर—ऐश्वर्ययुक्त, यावत् सार्थवाह-व्यापारियो के नायको तथा मित्रो यावत् परिजनो के साथ रुदन, आक्रन्दन व विलाप करता हुआ श्रीदेवी का महान् ऋद्धि तथा सत्कार के साथ निष्कासन कृत्य (मृत्यु-सस्कार) करता है । तत्पश्चात् क्रोध के आवेश मे रुष्ट, कुपित, अतीव क्रोधाविष्ट तथा लाल-पीला होता हुआ देवदत्ता देवी को राजपुरुषो से पकडवाता है । पकडवाकर इस पूर्वोक्त विधान से (जिसे तुम देख कर आए हो) 'यह वध्या-हतव्या है' ऐसी राजपुरुषो को आज्ञा देता है ।

इस प्रकार निश्चय ही, हे गौतम ! देवदत्ता देवी अपने पूर्वकृत अशुभ पापकर्मो का फल पा रही है ।

देवदत्ता का भविष्य

२९—देवदत्ता ण भंते ! देवी इओ कालमासे कालं किच्चा कहिं गमिहिइ ? कहिं उववज्जिहिइ ?

गोयमा ! असीइं वासाइं परमाउयं पालइत्ता कालमासे कालं किच्चा इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए नेरइएसु नेरइयत्ताए उववज्जिहिइ । संसारो । वणस्सई । तओ अणन्तरं उव्वट्टित्ता गंगपुरे नयरे हंसत्ताए पच्चायाहिइ । से णं तत्थ साउणिएहिं वहिए समाणे तत्थेव गंगपुरे नयरे सेट्ठिकुलंसि उववज्जिहिइ । बोही । सोहम्मे । महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ । निक्खेवो ।

२९—तब गौतम स्वामी ने प्रश्न किया—अहो भगवन् ! देवदत्ता देवी यहाँ से काल मास में काल करके कहाँ जाएगी ? कहाँ उत्पन्न होगी ?

भगवान् महावीर ने कहा—हे गौतम ! देवदत्ता देवी ८० वर्ष की परम-आयु भोग कर काल मास में काल करके इस रत्नप्रभा नामक प्रथम पृथिवी-नरक में नारक पर्याय में उत्पन्न होगी । शेष संसारभ्रमण पूर्ववत् करती हुई अर्थात् प्रथम अध्ययनगत मृगापुत्र की भांति यावत् वनस्पति अन्तर्गत निम्ब आदि कटु-वृक्षों तथा कटुदुग्ध वाले अर्कादि पौधों में लाखों वार उत्पन्न होगी । तदनन्तर वहाँ से निकलकर गङ्गपुर नगर में हंस रूप से उत्पन्न होगी । वहाँ शाकुनिकों द्वारा वध किए जाने पर वह गंगपुर में ही श्रेष्ठिकुल में पुत्ररूप में जन्म लेगी । वहाँ उसका जीव सम्यक्त्व को प्राप्त कर सौधर्म नामक प्रथम देवलोक में उत्पन्न होगा । वहाँ से च्युत होकर महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न होगा । वहाँ चारित्र ग्रहण कर यथावत् पालन कर सिद्धि को प्राप्त करेगा । सर्व कर्मों से मुक्त होगा ।

निक्षेप—श्री सुधर्मा स्वामी ने उपसंहार करते हुए कहा—हे जम्बू ! निर्वाण-प्राप्त श्रमण भगवान् महावीर ने नौवें अध्ययन का यह अर्थ कहा है ।

।। नवम अध्ययन समाप्त ।।

दशम अध्ययन

अंजू

प्रस्तावना

१—दसमस्स उक्खेवो-'जइ णं भंते !'

१—ग्रहो भगवन् ! श्रमण भगवान् महावीर ने दशम ग्रध्ययन का क्या ग्रर्थ कहा है, इत्यादि, उत्क्षेप-प्रस्तावना पूर्ववत् ही जान लेना चाहिये ।

२—एवं खलु जंबू ! तेण कालेणं तेण समएणं वद्धमाणपुरे नामं नयरे होत्था । विजयवद्धमाणे उज्जाणे । मणिभद्दे जक्खे । विजयमित्ते राया । तत्थ णं धणदेवे नामं सत्थवाहे होत्था, ग्रड्ढे ! पियंगू नामं भारिया ! अंजू दारिया जाव उक्किट्ठसरीरा । समोसरणं, परिसा जाव पडिगया ।

२—हे जम्बू ! उस काल तथा उस समय मे वर्द्धमानपुर नाम का एक नगर था । वहा विजयवर्द्धमान नामक उद्यान था । उस मे मणिभद्र यक्ष का यक्षायतन था । वहाँ विजयमित्र नामक राजा राज्य करता था । धनदेव नामक एक सार्थवाह—व्यापारियो का नायक, रहता था जो धनाढ्य ग्रौर प्रतिष्ठित था । उसके प्रियङ्गु नाम की भार्या थी । उनकी उत्कृष्ट शरीरवाली सुन्दर ग्रञ्जू नामक एक बालिका थी । उस समय विजयवर्द्धमान नामक उद्यान मे श्रमण भगवान् महावीर स्वामी पधारे यावत् परिषद् धर्मदेशना सुनकर वापिस चली गयी ।

अंजू का वर्त्तमान-भव

३—तेणं कालेणं तेणं समएण जेट्ठे जाव ग्रडमाणे जाव विजयमित्तस्स रन्नो गिहस्स ग्रसोग-वणियाए ग्रदूरसामतेणं वीइवयमाणे पासइ एगं इत्थिय सुक्कं, भुक्खं निम्मस, किडिकिडियाभूयं, ग्रट्ठिचम्मावणद्धं नीलसाडगनियत्थं कट्ठाइं कलुणाइं विस्सराइं कूवमाणि पासइ, पासित्ता चिन्ता तहेव, जाव एवं वयासी—'सा णं, भंते ! इत्थिया पुव्वभवे का ग्रासी ?' वागरणं !

३—उस समय भगवान् के ज्येष्ठ शिष्य श्री गौतमस्वामी यावत् भिक्षार्थ भ्रमण करते हुए विजयमित्र राजा के घर की ग्रशोकवाटिका के समीप से जाते हुए सूखी, भूखी, निर्मास (जिसके शरीर का मास सूख गया हो) किटि-किटि शब्द से युक्त (जिसकी शरीरगत ग्रस्थिया कडकड शब्द कर रही हो) ग्रस्थिचर्मावनद्ध—जिसका चमडा हड्डियो से चिपटा हुग्रा हो ग्रर्थात् ग्रस्थिचर्मविशेष तथा नीली साडी पहने हुए, कष्टमय, करुणोत्पादक, दीनतापूर्ण वचन बोलती हुई एक स्त्री को देखते है । देखकर विचार करते हैं । शेष सब वृत्तान्त पूर्ववत् समझ लेना चाहिये । यावत् गौतम स्वामी भगवान् के निकट ग्राकर पूछते है—'भगवन् ! यह स्त्री पूर्वभव मे कौन थी ?' इसके उत्तर मे भगवान् महावीर स्वामी प्रतिपादन करने लगे—

पूर्वभव

४—एवं खलु गोयमा ! तेणं कालेण तेणं समएणं इहेव जम्बुद्दीवे दीवे भारहेवासे इंदपुरे नामं नयरे होत्था। तत्थ णं इन्ददत्ते राया। पुढविसिरी नामं गणिया होत्था। वण्णओ।[1] तए णं सा पुढविसिरी गणिया इंदपुरे नयरे बहवे राईसर जाव प्पभिइओ बहूहिं चुण्णप्पओगेहि य जाव (हिय-उड्डावणेहि य निण्हवणेहि य पण्हवणेहि य वसीकरणेहि य आभिओगेहि य) अभिओगेत्ता उरालाइं माणुस्सगाइं भोगभोगाइं भुंजमाणी विहरइ।

४—हे गौतम ! उस काल और उस समय मे इसी जम्बूद्वीप नामक द्वीप के अन्तर्गत भारत वर्ष मे इन्द्रपुर नाम का एक नगर था। वहाँ इन्द्रदत्त नाम का राजा राज्य करता था। इसी नगर मे पृथ्वीश्री नाम की एक गणिका—वेश्या रहती थी। उसका वर्णन पूर्ववत् कामध्वजा वेश्या की ही तरह जान लेना चाहिये। इन्द्रपुर नगर मे वह पृथ्वीश्री गणिका अनेक ईश्वर, तलवर यावत् सार्थवाह आदि लोगो को (वशीकरण सबधी) चूर्णादि के प्रयोगो से वशवर्ती करके मनुष्य सबधी उदार-मनोज्ञ कामभोगो का यथेष्ट रूप मे उपभोग करती हुई समय व्यतीत कर रही थी।

५—तए णं सा पुढवीसिरी गणिया एयकम्मा एयप्पहाणा एयविज्जा एयसमायारा सुबहुं पावं कम्म समज्जिणित्ता पणतीसं वाससयाइ परमाउय पालइत्ता कालमासे काल किच्चा छट्ठीए पुढवीए उक्कोसेणं वावीसं सागरोवमट्ठिइएसु नेरइएसु नेरइयत्ताए उववन्ना।

५—तदनन्तर एतत्कर्मा एतत्प्रधान एतद्विद्य एव एतत्-आचारवाली वह पृथ्वीश्री गणिका अत्यधिक पापकर्मो का उपार्जन कर ३५ सौ वर्ष के परम आयुष्य को भोगकर कालमास मे काल करके छट्ठी नरकभूमि मे २२ सागरोपम की उत्कृष्ट स्थितिवाले नारकियो मे नारक रूप से उत्पन्न हुई।

वर्त्तमान भव

६—सा णं तओ अणंतरं उव्वट्टित्ता इहेह वद्धमाणपुरे नयरे धणदेवस्स सत्थवाहस्स पियंगु भारियाए कुच्छिसि दारियत्ताए उववन्ना। तए णं सा पियंगु भारिया नवण्हं मासाणं दारिया पयाया। नामं अजुसिरी। सेसं जहा देवदत्ताए।

६—वहा से निकल कर इसी वर्धमानपुर नगर मे वह धनदेव नामक सार्थवाह की प्रियङ्गु भार्या की कोख से कन्या रूप मे उत्पन्न हुई अर्थात् कन्या रूप से गर्भ मे आई। तदनन्तर उस प्रियङ्गु भार्या ने नव मास पूर्ण होने पर उस कन्या को जन्म दिया और उसका नाम अञ्जुश्री रक्खा। उसका शेष वर्णन (नौवे अध्ययन मे वर्णित) देवदत्ता ही की तरह जान लेना चाहिये।

७—तए णं से विजये राया आसवाहणियाए जहा वेसमणदत्ते तहा अंजु पासइ। नवरं अप्पणो अट्ठाए वरेइ, जहा तेयली[2] जाव अंजूए भारियाए सद्धि उप्पि जाव विहरइ।

---

१ द्वि अ० सूत्र ३

२ ज्ञाताधर्मकथाङ्ग अ०-२।

७—तदनन्तर महाराज विजयमित्र अश्वक्रीडा के निमित्त जाते हुए राजा वैश्रमणदत्त की भाति ही अञ्जुश्री को देखते हैं और अपने ही लिए उसे तेतलीपुत्र अमात्य की तरह मागते है। यावत् वे अजुश्री के साथ उन्नत प्रासादो मे सानन्द विहरण करते है।

८—तए ण तीसे अजूए देवीए अन्नया कयाइ जोणिसूले पाउब्भूए यावि होत्था। तए णं से विजये राया, कोडु बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एव वयासी—'गच्छह ण तुमं देवाणुप्पिया! वद्धमाणपुरे नयरे सिघाडग जाव एव वयह—'एवं खलु, देवाणुप्पिया! विजयस्स रन्नो अंजूए देवीए जोणिसूले पाउब्भूए! जो ण इच्छइ वेज्जो वा वेज्जपुत्तो वा जाणुओ वा जाणुयपुत्तो वा तेगिच्छिओ वा तेगिच्छियपुत्तो वा अजूए देवीए जोणीसूले उवसामित्तए तस्स णं विजए राया विउल अत्थसपयाणं दलयइ। तए णं ते कोडु बियपुरिसा जाव उग्घोसेंति।

८—किसी समय अञ्जुश्री के शरीर मे योनिशूल (योनि मे होने वाली असह्य वेदना) नामक रोग का प्रादुर्भाव हो गया। यह देखकर विजय नरेश ने कौटुम्बिक पुरुषो को बुलाकर कहा—'तुम लोग वर्धमानपुर नगर मे जाओ और जाकर वहा के शृ गाटक—त्रिपथ, चतुष्पथ यावत् सामान्य मार्गो पर यह उद्घोषणा करो कि—देवी अञ्जुश्री को योनिशूल रोग उत्पन्न हो गया है। अत जो कोई वैद्य या वैद्यपुत्र, जानकार या जानकार का पुत्र, चिकित्सक या उसका पुत्र उस रोग को उपशान्त कर देगा, राजा विजयमित्र उसे विपुल धन-सम्पत्ति प्रदान करेगे।' कौटुम्बिक पुरुष राजाज्ञा से उक्त उद्घोषणा करते है।

९—तए णं ते बहवे वेज्जा वा ६ इमं एयारूव उग्घोसण सोच्चा निसम्म जेणेव विजये राया तेणेव उवागच्छन्ति, उवागच्छित्ता अंजूए देवीए बहूहिं उप्पत्तियाहिं वेणइयाहिं कम्मियाहिं पारिणामियाहिं बुद्धीहिं परिणामेमाणा इच्छन्ति अंजूए देवीए जोणिसूलं उवसामित्तए, नो संचाएति उवसामित्तए। तए णं ते बहवे वेज्जा य ६ जाहे नो संचाएति अजूए देवीए जोणिसूलं उवसामित्तए ताहे संता, तंता परितता जामेव दिसिं पाउब्भूया तामेव दिसिं पडिगया।

तए णं सा अजू देवी ताए वेयणाए अभिभूया समाणी सुक्का भुक्खा निम्मंसा कट्ठाइ कलुणाइं विस्सराइ विलवइ।

एव खलु गोयमा! अजू देवी पुरा पोराणाणं जाव विहरइ।

९—तदनन्तर (राजा की आज्ञा से अनुचरो के द्वारा की गयी) इस प्रकार की उद्घोषणा को सुनकर नगर के बहुत से अनुभवी वैद्य, वैद्यपुत्र आदि चिकित्सक विजयमित्र राजा के यहाँ आते हैं। अपनी औत्पत्तिकी, वैनयिकी, कार्मिकी और पारिणामिकी बुद्धियो के द्वारा परिणाम को प्राप्त कर अर्थात् निदान आदि द्वारा निर्णय करते हुए विविध प्रयोगो के द्वारा देवी अजूश्री के योनिशूल को उपशान्त करने का प्रयत्न करते है, परन्तु उनके उपयोगो से अञ्जूश्री का योनिशूल शात नही हो पाया। जब वे अनुभवी वैद्य आदि अजूश्री के योनिशूल को शमन करने मे विफल हो गये तब खिन्न, श्रान्त एव हतोत्साह होकर जिधर से आये थे उधर ही चले गये।

तत्पश्चात् देवी अजूश्री उस योनिशूलजन्य वेदना से अभिभूत (पीडित) हुई सूखने लगी, भूखी रहनें लगी और मास रहित होकर कष्ट-हेतुक, करुणोत्पादक और दीनतापूर्ण शब्दो मे विलाप करती हुई समय-यापन करने लगी।

भगवान् कहते है—हे गौतम ! इस प्रकार रानी अञ्जूश्री अपने पूर्वोपार्जित पाप कर्मों के फल का उपभोग करती हुई जीवन व्यतीत कर रही है ।

भविष्यत् वृत्तान्त

१०—"अंजू णं भंते ! देवी इओ कालमासे काल किच्चा कहिं गच्छिहिइ ? कहिं उववज्जिहिइ ।'

'गोयमा ! अजू णं देवी नउइं वासाइं परमाउय पालइत्ता कालमासे कालं किच्चा इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए नेरइएसु नेरइयत्ताए उववज्जिहिइ । एवं संसारो जहा पढमे तहा नेयव्वं जाव वणस्सई । सा णं तओ अणतरं उव्वट्टित्ता सव्वओभद्दे नयरे मयूरत्ताए पच्चायाहिइ । से णं तत्थ साउणिएहिं वहिए समाणे तत्थेव सव्वओभद्दे नयरे सेट्ठिकुल सि पुत्तत्ताए पच्चायाहिइ । से णं तत्थ उम्मुक्कबालभावे तहारूवाण थेराण अंतिए केवलं बोहिं बुज्झिहिइ । पव्वज्जा । सोहम्मे ।

"से णं ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं कहिं गच्छिहिइ ? कहिं उववज्जिहिइ ?

गोयमा ! महाविदेहे जहा पढमे जाव सिज्झिहिइ, जाव अतं काहिइ ।

एवं खलु जम्बू ! समणेणं जाव सपत्तेणं दुहविवागाणं दसमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पन्नत्ते ।

सेव भते । सेव भते ! त्ति बेमि ।

१०—गौतमस्वामी ने प्रश्न किया—अहो भगवन् ! अञ्जू देवी मृत्यु का समय आने पर काल करके कहाँ जायेगी ? कहाँ उत्पन्न होगी ?

भगवान् ने उत्तर दिया—हे गौतम ! अञ्जू देवी ९० वर्ष को परम आयु को भोगकर काल मास मे काल करके इस रत्नप्रभानामक पृथ्वी के नारको मे नारकी रूप से उत्पन्न होगी । उसका शेष ससार—परिभ्रमण प्रथम अध्ययन की तरह जानना चाहिये । यावत् वनस्पति-गत निम्बादि कटुवृक्षो तथा कटु दुग्ध वाले अर्क आदि पौधो मे लाखो बार उत्पन्न होगी । वहाँ की भव-स्थिति को पूर्ण कर इसी सर्वतोभद्र नगर मे मयूर के रूप मे जन्म लेगी । वहा वह मोर व्याधो के द्वारा मारा जाने पर सर्वतोभद्र नगर के ही एक श्रेष्ठीकुल मे पुत्र रूप से उत्पन्न होगा । वहा बालभाव को त्याग कर, युवावस्था को प्राप्त कर, विज्ञान की परिपक्व अवस्था को प्राप्त करता हुआ वह तथारूप स्थविरो से वोधिलाभ-सम्यक्त्व को प्राप्त करेगा । तदनन्तर प्रव्रज्या—दीक्षा ग्रहण कर मृत्यु के बाद सौधर्म देवलोक मे उत्पन्न होगा ।

गौतम—भगवन् ! देवलोक की आयु तथा स्थिति पूर्ण हो जाने के बाद वह कहा जायेगा ? कहा उत्पन्न होगा ?

भगवान्—गौतम ! महाविदेह क्षेत्र मे जाएगा । वहाँ उत्तम कुल मे जन्म लेगा । जैसा कि प्रथम अध्ययन मे वर्णित है यावत् सिद्ध बुद्ध सव दु खो का अन्त करेगा ।

हे जम्बू ! इस प्रकार श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने दु खविपाकनामक दशम अध्ययन का यह अर्थ प्रतिपादन किया है ।

जम्बू—भगवन् ! आपका यह कथन सत्य, परम सत्य, परम-परम सत्य है ।

॥ दशम अध्ययन सम्पूर्ण ॥

॥ दु.खविपाकीय प्रथम श्रुतस्कन्ध समाप्त ॥

द्वितीय श्रुतस्कन्ध

सुखविपाक

सार : संक्षेप

यद्यपि कार्मणजाति के पुद्‌गल, जीव के साथ बद्ध होने से पूर्व समान स्वभाव (प्रकृति) वाले होते हैं, किन्तु जब उनका जीव के साथ बन्ध होता है तो उनमे जीव के योग के निमित्त से भिन्न-भिन्न प्रकार के स्वभाव उत्पन्न हो जाते हैं। वही स्वभाव जैनागम मे 'कर्मप्रकृति' के नाम से प्रसिद्ध है। ऐसी प्रकृतियाँ मूल मे आठ हैं और फिर उनके अनेकानेक अवान्तर भेद-प्रभेद है।

विपाक की दृष्टि से कर्मप्रकृतियाँ दो भागो मे विभक्त की गई है—अशुभ और शुभ। ज्ञानावरणीय आदि चार घातिकर्मों की सभी अवान्तर प्रकृतियाँ अशुभ है। अघातिकर्मों की प्रकृतियाँ दोनो भागो मे विभक्त है—कुछ अशुभ और कुछ शुभ। अशुभ प्रकृतियाँ पापप्रकृतियाँ कहलाती है, जिनका फल-विपाक जीव के लिए अनिष्ट, अकान्त, अप्रिय एव दु खरूप होता है। शुभ कर्म-प्रकृतियो का फल इससे विपरीत—इष्ट, कान्त, प्रिय और सासारिक सुख को उत्पन्न करने वाला होता है। दोनो प्रकार के फल-विपाक को सरल, सरस और सुगम रूप से समझाने के लिए विपाकसूत्र की रचना हुई है।

यद्यपि यह सत्य है कि पाप और पुण्य—दोनो प्रकार की कर्मप्रकृतियो का सर्वथा क्षय होने पर ही मुक्ति की प्राप्ति होती है, तथापि दोनो प्रकार की प्रकृतियो मे कितना और कैसा अन्तर है, यह तथ्य विपाकसूत्र मे वर्णित कथानको के माध्यम से समझा जा सकता है।

दु खविपाक के कथा-नायक मृगापुत्र आदि भी अन्त मे मुक्ति प्राप्त करेगे और सुखविपाक मे उल्लिखित सुबाहु कुमार आदि को भी मुक्ति प्राप्त होगी। दोनो प्रकार के कथानायको की चरम स्थिति एक-सी होने वाली है। तथापि उससे पूर्व ससार-परिभ्रमण का जो चित्रण किया गया है, वह विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है। पापाचारी मृगापुत्र आदि को दिल दहलाने वाली, घोरतर दु खमय दुर्गतियो मे से दीर्घ-दीर्घतर काल तक गुजरना होगा। अनेकानेक वार नरको मे, एकेन्द्रियो मे तथा दूसरी अत्यन्त विषम एव त्रासजनक योनियो मे दुस्सह वेदनाएँ भुगतनी होगी। तब कही जाकर उन्हे मानव-भव पाकर सिद्धि की प्राप्ति होगी।

सुखविपाक के कथानायक सुबाहुकुमार आदि को भी दीर्घकाल तक ससार मे रहना है। किन्तु उनके दीर्घकाल का अधिकाश भाग स्वर्गीय सुखो के उपभोग मे अथवा सुखमय मानवभव मे ही व्यतीत होने वाला है।

पुण्यकर्म के फल से होने वाले सुखरूप विपाक और पापाचार के फलस्वरूप होने वाले दु खमय विपाक की तुलना करके देखने पर ज्ञात होगा कि पाप और पुण्य दोनो बन्धनात्मक होने पर भी दोनो के फल मे अन्धकार और प्रकाश जैसा अन्तर है।

यह सत्य है कि मुमुक्षु साधक एकान्त सवर और निर्जरा के कारणभूत वीतराग भाव में रमण करना ही उपादेय मानता है, किन्तु इस प्रकार के विशुद्ध वीतरागभाव मे दीर्घकाल पर्यन्त निरन्तर रमण करना वडे-वडे उच्चकोटि के साधको के लिए भी सभव नही है। अतएव पापवन्ध से वचने के लिए पुण्य-प्रवृत्ति करने के सिवाय दूसरा कोई चारा नही है। भले ही यह आदर्श स्थिति न हो मगर आदर्श स्थिति प्राप्त करने के लिए अनिवार्य स्थिति अवश्य है।

विपाकसूत्र के द्वितीय श्रुतस्कन्ध मे ऐसे ही पुण्यशाली पुरुषो का वर्णन किया गया है। इसमे भी प्रथम श्रुतस्कन्ध की तरह दश अध्ययन हैं।

प्रथम अध्ययन मे सुवाहुकुमार का वर्णन किया गया है। परम पुण्य के उदय से सुवाहु को राज-परिवार मे जन्म लेने के साथ ही श्रमण भगवान् महावीर के समागम का भी सौभाग्य प्राप्त होता है। उसने सुन्दर, मनोहर सौम्य और प्रिय वाह्य आकृति प्राप्त की। वह इतना प्रियदर्शन है कि गौतम स्वामी जैसे विरक्त महापुरुष का भी हृदय अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है। वे भगवान् से उसकी मनोहरता और सोमता का कारण पूछते हैं। उसके पूर्वभव के विषय मे पृच्छा करते हैं।

भगवान् ने गौतम स्वामी के प्रश्न का जो उत्तर दिया, उसका साराश यह है कि सुवाहु पूर्वभव मे सुमुख गाथापति था। एक वार मासखमण की निरन्तर तपस्या करने वाले सुदत्त अनगार पारणा के लिए उसके गृह मे प्रविष्ट हुए। दृष्टि पडते ही सुमुख को हर्ष और सन्तोष हुआ। उत्तरासग करके उनके सामने गया, प्रदक्षिणा करके मुनिराज को वन्दन-नमस्कार किया। निर्दोष आहार भक्तिभाव पूर्वक वहराया। उच्च और उदार भाव से प्रदत्त आहारदान के परिणमस्वरूप उसका ससार परीत हो गया। उसने मनुष्यायु का वन्ध किया। यही नही, देवो द्वारा पाँच दिव्य प्रकट करके अपना आन्तरिक आनन्दातिरेक प्रकाशित किया गया। मानवगण ने सुमुख को 'धन्य धन्य' कहा। सुवाहुकुमार ने भगवान् महावीर के निकट गृहस्थधर्म अगीकार किया, फिर अनगार धर्म की प्रव्रज्या अगीकार की। अन्त मे समाधिपूर्वक शरीर त्याग कर सौधर्म देवलोक मे जन्म लिया। तत्पश्चात् वीच-वीच मे मनुष्य होकर सभी विषमसख्यक देव-लोको के सुखो का उपभोग करने के वाद सर्वार्थसिद्ध विमान मे, जहाँ सासारिक सुखो की चरम सीमा होती है, जन्म लेकर तेतीस सागरोपम जितने दीर्घतर काल पर्यन्त रहकर महाविदेह मे उत्पन्न होकर शाश्वत अनन्त आनन्दमय सिद्धि प्राप्त करेगा।

कहाँ मृगापुत्र आदि का दु खो से परिपूर्ण लम्वा भवभ्रमण और कहाँ सुवाहुकुमार आदि का सुखमय ससार! दोनो की तुलना करने से पाप और पुण्य का अन्तर सरलता से समझा जा सकता है।

प्रथम अध्ययन मे सुवाहुकुमार के वर्णन के सदृश ही अन्य अध्ययनो मे शेष नौ पुण्यशालियों का वर्णन है। नाम, आदि की भिन्नता होने पर भी मुख्य तत्त्व समान ही है।

विस्तार के लिए मूल आगम देखना चाहिए।

द्वितीय श्रुतस्कन्ध : सुखविपाक

प्रथम अध्ययन

प्रस्तावना

१—तेण कालेण तेण समएणं रायगिहे नयरे, गुणसिलए चेइए, सुहम्मे समोसढे। जम्बू जाव पज्जुवासमाणे एवं वयासी—जइ ण भंते! समणेणं भगवया महावीरेण जाव संपत्तेणं दुहविवागाण अयमट्ठे पन्नत्ते, सुहविवागाणं भन्ते! समणेणं जाव सम्पत्तेण के अट्ठे पन्नत्ते?

तए णं से सुहम्मे अणगारे जंबु अणगारं एव वयासी—'एवं खलु जम्बू! समणेण जाव सम्पत्तेणं सुहविवागाणं दस अज्झयणा पन्नत्ता, तं जहा—

सुबाहू भद्दनदी य, सुजाए य सुवासवे।
तहेव जिणदासे य धणवई य महब्बले॥
भद्दनदी महच्चदे वरदत्ते तहेव य॥

१—उस काल तथा उस समय राजगृह नगर के अन्तर्गत गुणशीलनामक चैत्य—उद्यान में अनगार श्रीसुधर्मा स्वामी पधारे। उनकी पर्युपासना-सेवा मे सलग्न रहे हुए श्री जम्बू स्वामी ने प्रश्न किया—प्रभो! यावत् मोक्ष रूप परम स्थिति को सप्राप्त श्रमण भगवान् महावीर ने यदि दुःख-विपाक का यह (पूर्वोक्त) अर्थ प्रतिपादित किया, तो यावत् मुक्ति को सप्राप्त श्रमण भगवान् महावीर ने सुखविपाक का क्या अर्थ प्रतिपादित किया है?

(विनयशील अन्तेवासी) आर्य जम्बू की इस जिज्ञासा के उत्तर में अनगार श्रीसुधर्मा स्वामी जंबू अनगार के प्रति इस प्रकार बोले—हे जम्बू! यावत् निर्वाणप्राप्त श्रमण भगवान् महावीर ने सुख-विपाक के दस अध्ययन प्रतिपादित किये हैं। वे इस प्रकार हैं—

(१) सुबाहु (२) भद्रनदी (३) सुजात (४) सुवासव (५) जिनदास (६) धनपति (७) महाबल (८) भद्रनदी (९) महचन्द्र और (१०) वरदत्त।

२—'जइ ण भंते! समणेण जाव संपत्तेण सुहविवागाण दस अज्झयणा पन्नत्ता, पढमस्स णं भंते! अज्झयणस्स सुहविवागाण जाव सपत्तेण के अट्ठे पन्नत्ते? तए णं से सुहम्मे अणगारे जंबुं अणगारं एव वयासी—

१—हे भदन्त! यावत् मोक्षसम्प्राप्त श्रमण भगवान् महावीर ने यदि सुखविपाक के सुबाहुकुमार आदि दश अध्ययन प्रतिपादित किये है तो हे भगवन्! मोक्ष को उपलब्ध श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने सुख-विपाक के प्रथम अध्ययन का क्या अर्थ कथन किया है?

इस प्रश्न के उत्तर मे श्रीसुधर्मा स्वामी ने श्रीजम्बू अनगार के प्रति इस प्रकार कहा—

३—एवं खलु जम्बू ! तेणं कालेणं तेण समएणं हत्थिसीसे नामं नयरे होत्था—रिद्धत्थमियसमिद्धे । तत्थ णं हत्थिसीसस्स नयरस्स बहिया उत्तर-पुरत्थिमे दिसीभाए एत्थ णं पुप्फकरंडए नामं उज्जाणे होत्था, सव्वोउय-पुप्फ-फल-समिद्धे । तत्थ णं कयवणमालपियस्स जक्खस्स जक्खाययणे होत्था, दिव्वे० ।

तत्थ णं हत्थिसीसे नयरे अदीणसत्तू नाम राया होत्था, महया हिमवंत-महंत-मलय-मंदर-महिंदसारे । तस्स णं अदीणसत्तुस्स रन्नो धारिणीपामोक्खा देवीसहस्सं ओरोहे यावि होत्था ।

३—इस प्रकार निश्चय ही हे जम्बू ! उस काल तथा उस समय मे हस्तिशीर्ष नाम का एक वडा ऋद्ध-भवनादि के आधिक्य से युक्त, स्तिमित-स्वचक्र-परचक्र के भय से मुक्त, समृद्ध-धन-धान्यादि से परिपूर्ण नगर था । उस नगर के वाहर उत्तरपूर्व दिशा मे अर्थात् ईशान कोण मे सव ऋतुओ मे उत्पन्न होने वाले फल-पुष्पादि से युक्त पुष्पकरण्डक नाम का एक (रमणीय) उद्यान था । उस उद्यान मे कृतवनमाल-प्रिय नामक यक्ष का यक्षायतन था । जो दिव्य—प्रधान एव सुन्दर था ।

वहा अदीनशत्रु नामक राजा राज्य करता था, जो कि राजाओ मे हिमालय आदि पर्वतो के समान महान् था । अदीनशत्रु नरेश के अन्त पुर मे धारिणीप्रमुख अर्थात् धारिणी जिनमे प्रधान है, ऐसी एक हजार रानिया थी ।

सुवाहु का जन्म : गृहस्थजीवन

४—तए णं सा धारिणी देवी अन्नया कयाइ तंसि तारिसगंसि वासघरंसि (वासभवणंसि) सीहं सुमिणे जहा मेहस्स जम्मणं तह भाणियव्वं;[1] जाव सुवाहुकुमारे अलभोगसमत्थे यावि होत्था । तए णं सुवाहुकुमारं अम्मापियरो वावत्तरिकलापडिय जाव[2] अलभोगसमत्थ वा वि जाणंति, जाणित्ता अम्मापियरो पच पासायवडिंसगसयाइ कारवेंति अब्भुग्गयमूसियपहसियाइं । एगं च णं महं भवणं कारेंति एवं जहा महावलस्स रन्नो णवर पुप्फचूला पामोक्खाणं पंचण्हं रायवरकन्नसयाण एगदिवसेण पाणि गिण्हावेंति । तहेव पंचसइओ दाओ, जाव उप्पि पासायवरगए फुट्टमाणेहिं जाव विहरइ ।

४—तदनन्तर एक समय राजकुलउचित वासभवन मे शयन करती हुयी धारिणी देवी ने स्वप्न मे सिह को देखा । जैसे ज्ञाताधर्मकथाङ्ग सूत्र मे वर्णित मेघकुमार का जन्म कहा गया है, उसी प्रकार पुत्र सुवाहु के जन्म आदि का वर्णन भी जान लेना चाहिये । यावत् सुवाहुकुमार सासारिक कामभोगो का उपभोग करने मे समर्थ हो गया । तव सुवाहुकुमार के माता-पिता ने उसे बहत्तर कलाओ मे कुशल तथा भोग भोगने मे समर्थ हुआ जाना, और जानकर उसके माता-पिता जिस प्रकार भूपणो मे मुकुट सर्वोत्तम होता है, उसी प्रकार महलो मे उत्तम पाच सौ महलो का निर्माण करवाया जो अत्यन्त ऊचे, भव्य एव सुन्दर थे । उन प्रासादो के मध्य मे एक विशाल भवन तैयार करवाया, इत्यादि सारा वर्णन महावल राजा ही की तरह जान लेना चाहिए । महावल ही की तरह सम्पन्न हुए सुवाहुकुमार के विवाह मे विशेषता यह है कि—पुष्पचूला प्रमुख पाच सौ श्रेष्ठ राजकन्याओ के साथ एक ही दिन मे उसका विवाह कर दिया गया । इसी तरह पाच सौ का प्रीतिदान-दहेज उसे

१-ज्ञाताधर्मकथाग, प्रथम अध्ययन । २ औ सूत्र-१४७

दिया गया। तदनन्तर सुबाहुकुमार ऊपर सुन्दर प्रासादो मे स्थित, जिसमे मृदग वजाये जा रहे है, ऐसे नाट्यादि से उद्गीयमान होता हुआ मानवोचित मनोज्ञ विषयभोगो का यथारुचि उपभोग करने लगा।

सुबाहु का धर्म-श्रवण

५—तेणं कालेण तेण समएण, समणे भगवं महावीरे समोसढे। परिसा निग्गया। अदीणसत्तू जहा कूणिओ निग्गओ सुबाहू वि जहा जमाली तहा रहेण निग्गए,[1] जाव धम्मो कहिओ। राया परिसा गया।

५—उस काल तथा उस समय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी हस्तिशीर्ष नगर मे पधारे। परिषद् (जनता) धर्मदेशना सुनने के लिए नगर से निकली, जैसे महाराजा कूणिक निकला था, अदीनशत्रु राजा भी उसी तरह भगवद्दर्शन तथा देशनाश्रवण करने के लिये निकला। जमालि-कुमार की तरह सुबाहुकुमार ने भी भगवान् के दर्शनार्थ रथ से प्रस्थान किया। यावत् भगवान् ने धर्म का प्रतिपादन किया, परिषद् और राजा धर्मदेशना सुनकर वापस लौट गये।

गृहस्थधर्म का स्वीकार

६—तए ण से सुबाहुकुमारे समणस्स भगवओ महावीरस्स अतिए धम्म सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठे उट्ठाए उट्ठेइ, उट्ठित्ता समण भगव महावीर वदइ, वंदित्ता नमसइ, नमंसित्ता एवं वयासी—'सद्दहामि ण भंते! निग्गथं पावयणं। जहा ण देवाणुप्पियाण अतिए वहवे राईसर जाव प्पभिईओ मुडा भवित्ता अगाराओ अणगारिय पव्वइया, नो अह तहा सचाएमि मुडे भवित्ता अगाराओ अणगारिय पव्वइत्तए अह ण देवाणुप्पियाण अतिए पंचाणुव्वइयं सत्तसिक्खावइय दुवालसविहं गिहिधम्मं पडिवज्जामि।"

"अहासुह देवाणुप्पिया! मा पडिवधं करेह।"

तए ण से सुबाहुकुमारे समणस्स भगवओ महावीरस्स अतिए पंचाणुव्वइय सत्तसिक्खावइयं दुवालसविह गिहिधम्म पडिवज्जइ। पडिवज्जित्ता तमेव रहं दुरूहइ, दुरूहित्ता जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिस पडिगए।

६—तदनन्तर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के निकट धर्मकथा श्रवण तथा मनन करके अत्यन्त प्रसन्न हुआ सुबाहुकुमार उठकर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वन्दन, नमस्कार करने के अनन्तर कहने लगा—'भगवन्! मे निर्ग्रन्थप्रवचन पर श्रद्धा करता हू यावत् जिस तरह आपके श्रीचरणो मे अनेको राजा, ईश्वर यावत् सार्थवाह आदि उपस्थित होकर, मुडित होकर तथा गृहस्थावस्था से निकलकर अनगारधर्म मे दीक्षित हुए है, अर्थात् राजा, ईश्वर आदि ने पच महाव्रतो को स्वीकार किया है, वैसे मैं मुंडित होकर घर त्यागकर अनगार अवस्था को धारण करने मे समर्थ नही हूँ। मैं पाच अणुव्रतो तथा सात शिक्षाव्रतो का जिसमे विधान है, ऐसे वारह प्रकार के गृहस्थ धर्म को अगीकार करना चाहता हू।

१—देखिए भगवती सूत्र, श ९

उत्तर मे भगवान् ने कहा—'जैसे तुमको सुख हो वैसा करो, किन्तु इसमे देर मत करो।'

ऐसा कहने पर सुबाहुकुमार ने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के समक्ष पाच अणुव्रतो और सात शिक्षाव्रतो वाले बारह प्रकार के गृहस्थधर्म को स्वीकार किया। अर्थात् उक्त द्वादशविध व्रतो के यथाविधि पालन करने का नियम ग्रहण किया। तदनन्तर उसी रथ पर सुबाहुकुमार सवार हुआ और सवार होकर जिस दिशा से आया था, उसी दिशा मे वापस चला गया।

गौतम की सुबाहुविषयक जिज्ञासा

७—तेणं कालेण तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स जेट्ठे अंतेवासी इन्दभूई जाव एवं वयासी—"अहो ण भंते! सुबाहुकुमारे इट्ठे, इट्ठरूवे, कंते, कंतरूवे, पिये, पियरूवे, मणुन्ने, मनुन्नरूवे, मणामे, मणामरूवे, सोमे, मोमरूवे, सुभगे, सुभगरूवे, पियंदसणे सुरूवे। बहुजणस्स वि य ण भंते! सुबाहुकुमारे इट्ठे जाव सुरूवे। साहुजणस्स वि य ण! सुबाहुकुमारे इट्ठे इट्ठरूवे जाव सुरूवे। सुबाहुणा भंते! कुमारेण इमा एयारूवा उराला माणुस्सरिद्धि किन्ना लद्धा? किन्ना पत्ता? किन्ना अभिसमन्नागया? के वा एस आसी पुव्वभवे?" जाव (किंनामए वा किं वा गोत्तेण? कयरंसि गामंसि वा सनिवेससि वा? किं वा दच्चा किं वा भोच्चा किं वा समायरित्ता कस्स वा तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा अंतिए एगमवि आयरिय वयणं सोच्चा निसम्म सुबाहुणा कुमारेण इमा एयारूवा माणुसिड्ढी लद्धा पत्ता) अभिसमन्नागया?

७—उस काल तथा उस समय श्रमण भगवान् महावीर के ज्येष्ठ शिष्य इन्द्रभूति गौतम अनगार यावत् इस प्रकार कहने लगे—'अहो भगवन्! सुबाहु कुमार बालक (बहुजन इष्ट) बडा ही इष्ट, इष्टरूप, कान्त, कान्तरूप, प्रिय, प्रियरूप, मनोज्ञ, मनोज्ञरूप, मनोम, मनोमरूप, सौम्य, सुभग प्रियदर्शन और सुरूप-सुन्दर रूप वाला है। अहो भगवन्! यह सुबाहुकुमार साधुजनो के इष्ट, इष्ट रूप यावत् सुरूप लगता है।

भदन्त! सुबाहुकुमार ने यह अपूर्व मानवीय समृद्धि कैसे उपलब्ध की? कैसे भोग कर और कैसे उसके सन्मुख उपस्थित हुई? सुबाहुकुमार पूर्वभव मे कौन था? या किसको श्रवण कर गोत्र क्या था? किस ग्राम अथवा बस्ती मे उत्पन्न हुआ था? क्या दान के सन्मुख उपस्थित और कैसे आचार का पालन करके और किस श्रमण या माहन के एक
सुबाहुकुमार ने ऐसी यह ऋद्धि लब्ध एव प्राप्त की है, कैसे यह इतनी अद्भुत और आकर्षक हुई है?

विवेचन—सुबाहुकुमार की व्यावहारिक जीवन सभी प्रसन्न थे। प्राणो के अन्तराल थी कि वह आम जनसमुदाय का प्रीति-भाजन बन स्थान बना लिया था। इतना ही नही, से उसे चाहते थे। जन-मन के हृदय मे देवता की त्मिक साधना की दिशा मे प्रतिपल जागृत व वह साधुजनो का भी स्नेहपात्र बन गया था। अनासक्त एव निष्काम वृत्ति वाले साधुपुरुषो के प्रगतिशील रहने के कारण नि स्वार्थ, बन गया। यहाँ सुबाहुकुमार के लिये जो अनेक विशेषण के हृदय मे भी सुबाहु का प्रेम-पूर्ण स सामानार्थक प्रतीत होते हैं, किन्तु उन सब के अर्थ मे थोड़ा प्रयुक्त किये गये है, वे सामान्य
अन्तर है, जो इस प्रकार है

इष्ट—जो चाहने योग्य हो, जिसकी इच्छा की जाय, वह इष्ट होता है ।

इष्टरूप—किसी की चाह उसके विशेष कृत्य को उपलक्षित करके भी सम्भव है, अत इष्टरूप अर्थात् उसकी आकृति ही ऐसी थी जिससे इष्ट प्रतीत होता था ।

कान्त—इष्टरूपता भी अन्यान्य कारणो से सभवित है, अत स्वरूपत कान्त-रमणीय था ।

कान्तरूप—सुन्दर स्वभाव वाला । (सुबाहु की इष्टता मे उसका सुन्दर स्वभाव कारण था ।)

प्रिय—सुन्दर स्वभाव होने पर भी कर्म के प्रभाव से प्रेम उत्पन्न करने मे असमर्थ रह सकता है, अत प्रेम का उत्पादक जो हो वह प्रिय ।

प्रियरूप—जिसका रूप प्रिय—प्रीतिजनक हो ।

मनोज्ञ-मनोज्ञरूप—आन्तरिक वृत्ति से जिसकी शोभनता अनुभव मे आवे वह मनोज्ञ, उसके रूप वाला मनोज्ञरूप कहलाता है ।

मनोम, मनोमरूप—किसी की मनोज्ञता तात्कालिक भी हो सकती है, अत. मनोम विशेषण से जिसकी सुन्दरता का स्मरण बार-बार किया जाय ।

सोम—रुद्रतारहित व्यक्ति सोम—सौम्य स्वभाव वाला होता है ।

सुभग—वल्लभता वाला ।

सुरूप—सुन्दर आकार तथा स्वभाव वाले को सुरूप कहते है ।

प्रियदर्शन—प्रेम का जनक आकार और उस आकार वाला ।

भगवान् द्वारा समाधान

८—एवं खलु गोयमा ! तेणं कालेणं तेण समएण इहेव जबुद्दीवे दीवे भारहे वासे हत्थिणाउरे नाम नयरे होत्था, रिद्धत्थमियसमिद्धे । तत्थ ण हत्थिणाउरे नयरे सुमुहे नामं गाहावई परिवसइ, अड्ढे ।

८—हे गौतम ! उस काल तथा उस समय मे इसी जम्बूद्वीप नामक द्वीप के अन्तर्गत भारत-वर्ष मे हस्तिनापुर नाम का एक ऋद्ध, स्तमित एव समृद्ध नगर था । वहा सुमुख नाम का धनाढ्य गाथापति रहता था ।

९—तेण कालेणं तेणं समएण धम्मघोसा नामं थेरा जाइसपन्ना जाव पचहिं समणसएहिं सद्धि सपरिवुडा पुव्वाणुपुव्वि चरमाणा गामाणुगामं दूइज्जमाणा जेणेव हत्थिणाउरे नयरे, जेणेव सहसंबवणे उज्जाणे तेणेव उवागच्छन्ति । उवागच्छित्ता अहापडिरूवं उग्गहं उग्गिण्हित्ता सजमेणं तवसा अप्पाण भावेमाणा विहरति ।

९—उस काल तथा उस समय उत्तम जाति और कुल से सपन्न अर्थात् श्रेष्ठ मातृपक्ष एवं पितृपक्ष वाले यावत् पाच सौ श्रमणो से परिवृत हुए धर्मघोष नामक स्थविर (जाति, श्रुत व पर्याय से वृद्ध) क्रमपूर्वक चलते हुए तथा ग्रामानुग्राम विचरते हुए हस्तिनापुर नगर के सहस्राम्रवननामक

उद्यान मे पधारे। पधार कर वहा यथाप्रतिरूप—अनगार धर्म के अनुकूल अवग्रह (आश्रयस्थान) को ग्रहण करके सयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरण करने लगे।

विवेचन—स्थविर शब्द का सामान्य अर्थ वृद्ध या वडा साधु होता है। स्थानाग मे तीन प्रकार के स्थविर वताये है—१ जातिस्थविर २ श्रुतस्थविर ३ पर्यायस्थविर। साठ वर्ष की अवस्था वाला मुनि जातिस्थविर कहलाता है। स्थानाग व समवायाग का पाठी श्रुतस्थविर गिना जाता है। कम से कम वीस वर्ष की दीक्षापर्याय वाला पर्यायस्थविर माना जाता है। (स्थानाग सूत्र स्थान ३ उ, ३) ज्ञातासूत्र आदि मे गणधरो को भी स्थविर पद से सम्वोधित किया है।

१०—तेण कालेणं तेण समएणं धम्मघोसाणं थेराणं अंतेवासी सुदत्ते नामं अणगारे उराले जाव तेउलेस्से मासमासेण खममाणे विहरइ। तए णं से सुदत्ते अणगारे मासक्खमणपारणगंसि पढमाए पोरिसीए सज्झाय करेइ, जहा गोयमस्वामी तहेव, धम्मघोसे थेरे आपुच्छइ, जाव अडमाणे सुमुहस्स गाहावइस्स गेहे अणुप्पविट्ठे।

१०—उस काल और उस समय मे धर्मघोष स्थविर के अन्तेवासी—शिष्य उदार-प्रधान यावत् तेजोलेश्या को सक्षिप्त किये हुए (अनेक योजन प्रमाण वाले क्षेत्र मे स्थित वस्तुओ को भस्म कर देने वाली तेजोलेश्या—घोर तप से प्राप्त होने वाली लब्धि-विशेष, को अपने मे सक्षिप्त—गुप्त किये हुए) सुदत्त नाम के अनगार एक मास का क्षमण-तप करते हुए अर्थात् एक-एक मास के उपवास के वाद पारणा करते हुए विचरण कर रहे थे। एक वार सुदत्त अनगार मास-क्षमण पारणे के दिन प्रथम प्रहर मे स्वाध्याय करते है, दूसरे प्रहर मे ध्यान करते हैं और तीसरे प्रहर मे श्री गौतम स्वामी जैसे श्रमण भगवान् महावीर से भिक्षार्थ गमन के लिए पूछते है, वैसे ही वे धर्मघोष स्थविर से पूछते है, यावत् भिक्षा के लिए भ्रमण करते हुए सुमुख गाथापति के घर मे प्रवेश करते हैं।

विवेचन—हमने यहा धम्मघोसे थेरे आपुच्छइ' ऐसा ही पाठ रक्खा है परन्तु इसके स्थान पर 'सुहम्मे थेरे आपुच्छइ' ऐसा पाठ भी उपलब्ध होता है। प्रकृत मे सुधर्मा स्थविर का कोई प्रसग न होने से 'धम्मघोसे थेरे आपुच्छइ' पाठ प्रसग के अनुकूल व युक्तिसङ्गत लगता है। अन्यथा 'सुहम्मे थेरे' पाठ से श्री जम्बू स्वामी के गुरु श्री-सुधर्मा स्वामी के ग्रहण की भी भूल हो जाना सम्भव है। फिर भी 'सुहम्मे थेरे' इस पाठ की अवहेलना नही की जा सकती है, कारण वह अनेक प्रतियो मे उपलब्ध है, अत "स्थितस्य गतिश्चिन्तनीया" इस न्याय को अभिमुख रखकर सूत्रगत पाठ का यदि विचार किया जाय तो सम्भव है 'सुधर्मा' शब्द से सूत्रकार को भी धर्मघोष स्थविर ही इष्ट हो। धर्मघोष मुनि का ही दूसरा नाम सुधर्मा होना चाहिये। इसी अभिप्राय से शायद सूत्रकार ने धर्मघोष के वदले सुधम्मे-सुधर्मा पद का उल्लेख किया है। इस पाठ के सम्वन्ध मे वृत्तिकार श्री अभयदेव सूरि 'सुहम्मे थेरे' 'त्ति धर्मघोषस्थविरमित्यर्थ, धर्मशब्दसाम्यात् शब्दद्वयस्याप्येकार्थत्वात्' इस प्रकार करते हैं। तात्पर्य यह है सुधर्मा और धर्मघोष इन दोनो के नामो मे 'धर्म' शब्द समान है। इस समानता को लेकर ये दोनों शब्द एक ही अर्थ के परिचायक है—सुधर्मा शब्द से धर्मघोष और धर्मघोष शब्द से सुधर्मा का ग्रहण होता है। तत्त्व सर्वज्ञगम्य है।

११—तए ण से सुमुहे गाहावई सुदत्त अणगार एज्जमाणं पासइ, पासित्ता हट्ठतुट्ठे आसणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठेत्ता पायपीढाओ पच्चोरुहइ पच्चोरुहित्ता पाउयाओ ओमुयइ, ओमुइत्ता एगसाडियं

उत्तरासग करेइ, करित्ता सुदत्त अणगार सत्तट्ठपयाइ पच्चुग्गच्छइ, पच्चुग्गच्छित्ता तिक्खुत्तो आयाहिण पयाहिण करेइ, करित्ता वदइ, नमसइ, वदित्ता नमसित्ता जेणेव भत्तघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सुमहत्थेण विउलेण असणपाणेण पडिलाभिस्सामि त्ति तुट्ठे पडिलाभेमाणे वि तुट्ठे, पडिलाभिए वि तुट्ठे !

११—तदनन्तर वह सुमुख गाथापति सुदत्त अनगार को आते हुए देखता है और देखकर अत्यन्त हर्षित और प्रसन्न होकर आसन से उठता है। आसन से उठकर पाद-पीठ—पैर रखने के आसन से नीचे उतरता है। उतरकर पादुकाओ को छोडता है। छोडकर एक शाटिक—एक कपडा जो बीच मे सिया हुआ न हो, इस प्रकार का उत्तरासग (उत्तरीय वस्त्र का शरीर मे न्यास) करता है, उत्तरासग करने के अनन्तर सुदत्त अनगार के सत्कार के लिए सात-आठ कदम सामने जाता है। सामने जाकर तीन बार आदक्षिण प्रदक्षिणा करता है, वदन करता है, नमस्कार करके जहा अपना भक्तगृह—भोजनालय था वहा आता है। आकर अपने हाथ 'से विपुल अशन पान का-आहार का दान दू गा अथवा दान का लाभ प्राप्त करू गा, इस विचार से अत्यन्त प्रसन्नता को प्राप्त होता है। वह देते समय भी प्रसन्न होता है और आहारदान के पश्चात् भी प्रसन्नता का अनुभव करता है।

१२—तए ण तस्स सुमुहस्स गाहावइस्स तेण दव्वसुद्धेण[1] गाहकसुद्धेण दायकसुद्धेण तिविहेण तिकरणसुद्धेण सुदत्ते अणगारे पडिलाभिए समाणे संसारे परित्तीकए,[2] मणुस्साउए निबद्धे । गेहसि य से इमाइ पच दिव्वाइ[3] पाउब्भूयाइ, तजहा—

१ वसुहारा वुट्ठा
२ दसद्धवण्णे कुसुमे निवाडिए
३ चेलुक्खेवे कए
४. आहयाओ देवदुन्दुभीओ
५ अतरा वि य ण आगासे 'अहो दाण अहो दाण' घुट्ठे य ।

---

१ दव्वसुद्धेण गाहग-सुद्धेण दायग-सुद्धेण—द्रव्य शुद्धि, ग्राहकशुद्धि और दाता की शुद्धि इस प्रकार है—देयशुद्धि—सुमुख गाथापति द्वारा निर्दोष आहार देना, दातृ-शुद्धि—दान मे पहिले, दान देते समय और दान देने के पश्चात् सुमुख के चित्त मे आनन्द का अनुभव होना, हर्षित मन वाला होना। आदाता-गाहक मान-क्षमण-तपोधनी सुदत्त मुनि। इस प्रकार देय दाता व आदाता की पवित्रता से दान उत्तम फल-दायी होता है।

२ परिसमन्तात् इत गत इति परीत । अपरीत परीतीकृत इति परीतीकृत—पराङ्मुखीकृत—अल्पीकृत इत्यर्थ । ससार को सक्षिप्त कर देना ।

३ दिव्वाइ=१ देवता सम्बन्धी वसु-सुवर्ण और उसकी लगातार वृष्टि धारा कहलाती है। देवकृत सुवर्ण-वृष्टि को ही वसुधारा कहते है। २ कृष्ण, नील, पीत, श्वेत और रक्त पाच रग पुष्पो मे पाये जाते हैं। देवो द्वारा वरसाए गये ये पुष्प वैक्रिय-लब्धिजन्य है, अत अचित्त होते है। ३ चेलोत्क्षेप—चेल-वस्त्र, उसका उत्क्षेप-फेंकना चेलोत्क्षेप कहा जाता है। ४ देवदुन्दुभिनाद—देव—दुन्दुभियो का वजना। ५ आश्चर्य उत्पन्न करने वाले दान की 'अहो दान' सज्ञा है। जिस दान के प्रभाव से आकर्पित हो देवता स्वय ऐमा करते हो उसे अहोदान शब्द से कहना युक्तिसगत ही है।

हत्थिणाउरे सिंघाडग जाव पहेसु बहुजणो अन्नमन्नस्स एवं आइक्खइ ४—'धन्ने णं देवाणुप्पिया ! सुमुहे गाहावई जाव गाहावई जाव (एवं कयलक्खे ण सुलद्धे ण सुमुहस्स गाहावइस्स जम्मजोवियफले, जस्स ण इमा एयारूवा उराला माणुसिड्ढो लद्धा पत्ता अभिसमन्नागता) तं धन्ने—५ णं सुमुहे गाहावई !'

१२—तदनन्तर उस सुमुख गाथापति के शुद्ध द्रव्य (निर्दोष आहारदान) से तथा त्रिविध, त्रिकरण शुद्धि से अर्थात् मन वचन और काय की स्वाभाविक उदारता सरलता एव निर्दोपता से सुदत्त अनगार के प्रतिलम्भित होने पर अर्थात् सुदत्त अनगार को विशुद्ध भावना द्वारा शुद्ध आहार के दान से अत्यन्त प्रसन्नता को प्राप्त हुए सुमुख गाथापति ने ससार को (जन्म-मरण की परम्परा को) वहुत कम कर दिया और मनुष्य आयुष्य का बन्ध किया। उसके घर मे सुवर्णवृष्टि, पाच वर्णो के फूलो की वर्पा, वस्त्रो का उत्क्षेप (फेकना) देवदुन्दभियो का बजना तथा आकाश मे 'अहोदान' इस दिव्य उद्घोषणा का होना—ये पॉच दिव्य प्रकट हुए।

हस्तिनापुर के त्रिपथ यावत् सामान्य मार्गों मे अनेक मनुष्य एकत्रित होकर आपस मे एक दूसरे से कहते थे—हे देवानुप्रियो ! धन्य है सुमुख गाथापति ! सुमुख गाथापति सुलक्षण है, कृतार्थ है, उसने जन्म और जीवन का सुफल प्राप्त किया है जिसे इस प्रकार की यह मानवीय ऋद्धि प्राप्त हुई। वास्तव मे धन्य है सुमुख गाथापति !

विवेचन—भावनाशील और सरलचेता दाता को दान देते हुए तीन वार हर्ष होता है—(१) आज मैं दान दूगा, आज मुझे सद्भाग्य से दान देने का स्वर्णावसर उपलब्ध हुआ है, यह प्रथम हर्ष ! फिर दान देने के समय उसके रोये-रोये मे आनन्द उभरता है, यह दूसरा हर्ष ! और दान देने के पश्चात् अन्तरात्मा मे सतोप व आनन्द वृद्धिगत होता रहता है, यह तीसरा हर्ष।

दूसरी तरह देय, दाता व प्रतिग्राहक पात्र, ये तीनो ही शुद्ध हो तो वह दान जन्म-मरण के वन्धनो को तोडने वाला और ससार को परित्त-सक्षिप्त—कम करने वाला होता है।

१३—तए ण से सुमुहे गाहावई बहूहिं वाससयाइ आउय पालेइ, पालइत्ता कालमासे काल किच्चा इहेव हत्थिसीसे नयरे अदीणसत्तुस्स रन्नो धारिणीए देवीए कुच्छिसि पुत्तत्ताए उववन्ने। तए ण सा धारिणी देवी सयणिज्जसि सुत्तजागरा ओहीरमाणी ओहीरमाणी तहेव सीह पासइ, सेस त चेव जाव उप्पि पासाए विहरइ।

तं एव खलु, गोयमा ! सुवाहुणा इमा एयारूवा माणुस्सरिद्धी लद्धा पत्ता अभिसमन्नागया।

१३—तदनन्तर वह सुमुख गाथापति सैकडो वर्पों की आयु का उपभोग कर काल-मास मे काल करके इसी हस्तिशीर्पक नगर मे अदीनशत्रु राजा की धारिणी देवी की कुक्षि मे पुत्र रूप मे उत्पन्न हुआ (गर्भ मे आया)। तत्पश्चात् वह धारिणी देवी किञ्चित् सोई और किञ्चित् जागती हुई स्वप्न मे सिह को देखती है। शेष वर्णन पूर्ववत् जानना चाहिए। यावत् उन्नत प्रासादो मे मानव सम्वन्धी उदार भोगो का यथेष्ट उपभोग करता विचरता है।

भगवान् ने कहा—हे गौतम ! सुवाहुकुमार को उपर्युक्त महादान के प्रभाव से इस तरह की मानव-समृद्धि उपलव्ध तथा प्राप्त हुई और उसके समक्ष समुपस्थित हुई है।

१४—"पभू ण भन्ते ! सुबाहुकुमारे देवाणुप्पियाण अतिए मु डे भवित्ता अगाराओ अणगारिय पव्वइत्तए?"

'हृता पभू'।

तए ण से भगव गोयमे समण भगव महावीर वदइ नमसइ, वदित्ता नमसित्ता सजमेण तवसा अप्पाण भावेमाणे विहरइ। तए ण से समणे भगव महावीरे अन्नया कयाइ हत्थिसीसाओ नयराओ पुप्फकरडाओ उज्जाणाओ कयवणमालज-क्खाययणाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता वहिया जणवय-विहारं विहरइ।

तए ण से सुबाहुकुमारे समणोवासए जाए अभिगयजीवाजीवे जाव[1] पडिलाभे माणे विहरइ।

गौतम—प्रभो ! सुबाहुकुमार आपश्री के चरणो मे मुण्डित होकर, गृहस्थावास को त्याग कर अनगार धर्म को ग्रहण करने मे समर्थ है ?

भगवान्—हाँ गौतम ! है अर्थात् प्रव्रजित होने मे समर्थ है।

तदनन्तर भगवान् गौतम ने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वन्दना व नमस्कार किया। वन्दना नमस्कार करके सयम तथा तप से आत्मा को भावित करते हुए विहरण करने लगे।

तदनन्तर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने किसी अन्य समय हस्तिशीर्ष नगर के पुष्प-करण्डक उद्यानगत कृतवनमाल नामक यक्षायतन से विहार किया और विहार करके अन्य देशो मे विचरने लगे।

इधर सुबाहुकुमार श्रमणोपासक-देशविरत श्रावक हो गया। जीव अजीव आदि तत्वो का मर्मज्ञ यावत् आहारादि के दान-जन्य लाभ को प्राप्त करता हुआ समय व्यतीत करने लगा।

विवेचन—भगवान् महावीर की धर्मदेशना से प्रभावित व प्रतिवोधित हुए सुवाहुकुमार ने भगवान् से कहा था—प्रभो ! आपके पास अनेक राजा-महाराजा, सेठ-साहूकार, साधु धर्म को स्वोकार करते हैं परन्तु मै उस सर्वविरति रूप साधुधर्म को स्वीकार करने मे समर्थ नही हूँ। अत. आप मुझे देशविरति धर्म—अणुव्रत पालन का ही नियम करावे।

सुवाहुकुमार के उक्त कथन को स्मृति मे रखते हुए गौतम स्वामी ने 'पभू णं, भते ! सुवाहु-कुमारे देवाणुप्पियाण अतिए मु डे भवित्ता अगाराओ अणगारिय पव्वइत्तए ?' इस प्रश्न मे 'पभू' शव्द का इसी अभिप्राय से प्रयोग किया लगता है।

१५—तए ण से सुबाहुकुमारे अन्नया कयाइ चाउद्दसट्ठमुद्दिट्ठपुण्णमासिणीसु जेणेव पोसहसाला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पोसहसाल पमज्जइ, पमज्जित्ता उच्चारपासवणभूमिं पडिलेहेइ पडिलेहित्ता दब्भसथारग संथरइ सथरित्ता दब्भसथार दुरुहइ, दुरुहित्ता अट्ठमभत्त पगिण्हइ, पगिण्हित्ता पोसहसालाए पोसहिए अट्ठमभत्तिए पोसह पडिजागरमाणे पडिजागरमाणे विहरइ।

१५ तत्पश्चात् किसी समय वह सुवाहुकुमार चतुर्दशी, अष्टमी, उद्दिष्ट-अमावस्या और

---

१ देखिये समिति द्वारा प्रकाशित उपासकदशाग पृ ६२

पूर्णमासी, इन तिथियो मे जहाँ पौपधशाला थी—पौपधव्रत करने का स्थान विशेष था—वहाँ आता है। आकर पौपधशाला का प्रमार्जन करता है, प्रमार्जन कर उच्चारप्रस्रवणभूमि—मल-मूत्र विसर्जन के स्थान की प्रतिलेखना-निरीक्षण करता है। दर्भसस्तार—कुशा के आसन को बिछाता है। बिछाकर दर्भ के आसन पर आरूढ होता है और अट्ठमभक्त-तीन दिन का लगातार उपवास ग्रहण करता है। पौपधशाला मे पौपधिक—पौषधव्रत[1] धारण किये हुए वह, अष्टमभक्त सहित पौषध—अष्टमी, चतुर्दशी आदि पर्व तिथियो मे करने योग्य जैन श्रावक का व्रत विशेष अथवा आहारादि के त्याग-पूर्वक किये जाने वाले धार्मिक अनुष्ठान विशेष—का यथाविधि पालन करता हुआ अर्थात् तेला-पौषध करके विहरण करता है।

१६—तए ण तस्स सुबाहुस्स कुमारस्स पुव्वरत्तावरत्तकालसमयसि धम्मजागरियं जागर-माणस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए कप्पिए पत्थिए मणोगए सकप्पे समुप्पज्जित्था—धन्ना ण ते गामागर-नगर-निगम-रायहाणि-खेड-कव्वड-दोणमुह-मडंब-पट्टणासम-सवाह-सन्निवेसा जत्थ ण समणे भगव महावीरे विहरइ।

धन्ना ण ते राईसर-तलवर-माडबिय-कोडुंबिय-इब्भ-सेट्ठि-सेणावइ-सत्थवाहप्पभिइओ जे ण समणस्स भगवओ महावीरस्स अतिए मुंडा जाव पव्वयंति।

धन्ना णं ते राईसरतलवर० जे ण समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए पंचाणुव्वइय सत्त-सिक्खावइयं दुवालसविहं गिहिधम्मं पडिवज्जन्ति।

धन्ना णं ते राईसरतलवर० जाव जे णं समणस्स भगवओ महावीरस्स अन्तिए धम्मं सुणेन्ति।

तं जइ ण समणे भगव महावीरे पुव्वाणुपुव्वि चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे इहमाग-च्छिज्जा जाव विहरिज्जा, तए ण अह समणस्स भगवओ महावीरस्स अतिए मुंडे भवित्ता जाव (अगाराओ अणगारियं) पव्वएज्जा।

१६ तदन्तर मध्य रात्रि मे धर्मजागरण के कारण जागते हुए सुबाहुकुमार के मन मे यह आन्तरिक विचार, चिन्तन, कल्पना, इच्छा एव मनोगत सकल्प उठा कि—वे ग्राम आकर नगर, निगम, राजधानी, खेट (खेडे) कर्वट, द्रोणमुख, मडम्ब, पट्टन, आश्रम, सवाध और सन्निवेश धन्य है जहाँ पर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी विचरते है।

वे राजा, ईश्वर, तलवर, माडबिक, कौटुम्बिक, इभ्य, श्रेष्ठी, सेनापति और सार्थवाह आदि भी धन्य है जो श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के निकट मुण्डित होकर प्रव्रजित होते है।

---

१ धर्म की पुष्टि करनेवाले नियमविशेप का धारण करना पौपधव्रत कहलाता है। इसमे आहारादि के त्याग के साथ ही शरीर के शृंगार का त्याग, ब्रह्मचर्य का पालन, व्यापार-व्यवहार का भी वर्जन अपेक्षित है। चारो प्रकार के आहार के त्यागपूर्वक किया जाने वाला पौपधव्रत पौपधोपवास कहलाता है 'पोपण पोप पुष्टि-रित्यर्थ त धत्ते गृह्णाति इति पौपध ।'

वे राजा, ईश्वर आदिक धन्य है जो श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पास पञ्चाणुव्रतिक और सप्त शिक्षाव्रतिक (पाच अणुव्रतो एव सात शिक्षाव्रतो का जिसमे विधान है) उस बारह प्रकार के गृहस्थ धर्म को अङ्गीकार करते है।

वे राजा ईश्वर आदि धन्य है जो श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पास धर्म-श्रवण करते हैं।

सो यदि श्रमण भगवान् महावीर स्वामी पूर्वानुपूर्वी—क्रमश गमन करते हुए ग्रामानुग्राम विचरते हुए, यहाँ पधारे तो मैं गृह त्याग कर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पास मुण्डित होकर प्रव्रजित हो जाऊँ।

१७—तए ण समणे भगवं महावीरे सुबाहुस्स कुमारस्स इम एयारूव अज्झत्थियं जाव[1] वियाणित्ता पुव्वाणुपुव्विं जाव[2] दूइज्जमाणे जेणेव हत्थिसीसे णयरे जेणेव पुप्फकरंडे उज्जाणे जेणेव कयवणमालपियस्स जक्खस्स जक्खाययणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अहापडिरूव उग्गहं उग्गिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

परिसा राया निग्गया। तए ण तस्स सुबाहुस्स कुमारस्स त महया जणसद्द वा जणसण्णिवायं वा जहा जमाली तहा निग्गओ[3]। धम्मो कहिओ। परिसा राया पडिगया।

१७ तदनन्तर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी सुबाहु कुमार के इस प्रकार के सकल्प को जानकर क्रमश ग्रामानुग्राम विचरते हुए जहाँ हस्तिशीर्षनगर था, और जहाँ पुष्पकरण्डक नामक उद्यान था, और जहाँ कृतवनमालप्रिय यक्ष का यक्षायतन था, वहाँ पधारे एव यथा प्रतिरूप—अनगार वृत्ति के अनुकूल अवग्रह-स्थानविशेष को ग्रहण कर सयम व तप से आत्मा को भावित करते हुए अवस्थित हुए।

तदनन्तर परिषदा व राजा दर्शनार्थ निकले। सुबाहुकुमार भी पूर्व ही की तरह बडे समारोह के साथ भगवान् की सेवा मे उपस्थित हुआ। भगवान् ने उस परिषद् तथा सुबाहुकुमार को धर्म का प्रतिपादन किया। परिषद् और राजा धर्मदेशना सुन कर वापिस चले गये।

१८—तए ण सुबाहुकुमारे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ० जहा मेहो तहा अम्मापियरो आपुच्छइ।[4] निक्खणाभिसेओ तहेव जाव अणगारे जाव इरियासमिए जाव गुत्तबंभयारी।

१८. सुबाहुकुमार श्रमण भगवान् महावीर के पास से धर्म श्रवण कर उसका मनन करता हुआ (ज्ञाताधर्मकथा मे वर्णित) श्रेणिक राजा के पुत्र मेघकुमार की तरह अपने माता-पिता से अनुमति लेता है। तत्पश्चात् सुबाहुकुमार का निष्क्रमण-अभिषेक मेघकुमार ही की तरह होता है। यावत् वह अनगार हो जाता है, ईर्यासमिति का पालक यावत् गुप्त ब्रह्मचारी बन जाता है।

१—२—देखिये ऊपर का १६ वा सूत्र। ३—भगवती श ९।
४—देखिये ज्ञाताधर्मकथा, प्र अ।

१९—तए ण से सुबाहू अणगारे समणस्स भगवओ महावीरस्स तहारूवाणा थेराणं अंतिए सामाइयमाइयाइं[1] एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ, अहिज्जित्ता बहूहिं चउत्थछट्ठट्ठमतवोवहाणेहिं अप्पाण भवित्ता बहूइं वासाइं सामण्णपरियाग पाउणित्ता मासियाए सलेहणाए अप्पाण झूसित्ता सट्ठिं भत्ताइ अणसणाए छेइत्ता आलोइयपडिक्कते समाहिपत्ते कालमासे काल किच्चा सोहम्मे कप्पे देवत्ताए उववन्ने।

१९ तदनन्तर सुबाहु अनगार श्रमण भगवान् महावीर के तथारूप स्थविरो के पास से सामायिक आदि एकादश अङ्गो का अध्ययन करते हैं। अनेक उपवास, वेला, तेला आदि नाना प्रकार के तपो के आचरण से आत्मा को वासित करके अनेक वर्षो तक श्रामण्यपर्याय (साधुवृत्ति) का पालन कर एक मास की सलेखना (एक अनुष्ठान-विशेष जिसमे शारीरिक व मानसिक तप द्वारा कषाय आदि का नाश किया जाता है) के द्वारा अपने आपको आराधित कर साठ भक्तो—भोजनो का अनशन द्वारा छेदन कर अर्थात् २९ दिन का अनशन कर आलोचना व प्रतिक्रमणपूर्वक समाधि को प्राप्त होकर कालमास मे काल करके सौधर्म देवलोक मे देव रूप से उत्पन्न हुए।

विवेचन—यहाँ यह शङ्का सम्भव है कि 'मासियाए सलेहणाए' शब्द का उल्लेख करने के बाद 'सट्ठिभत्ताइ' का उल्लेख हुआ है, जो २९ दिन का ही वाचक है तो 'मासियाए सलेहणाए' की अर्थसङ्गति कैसे बैठेगी?

हमारी दृष्टि से इसकी यह सङ्गति सम्भव है कि प्रत्येक ऋतु मे मासगत दिनो की सख्या समान नही होती है, अत जिस ऋतु मे जिस मास के २९ दिन होते है उस मास को ग्रहण करने के लिए सूत्रकार ने 'मासियाए सलेहणाए' शब्द ग्रहण किया है। यह पद देकर भी 'सट्ठिभत्ताइ' जो पद दिया है इससे यही द्योतित होता है कि २९ दिन के मास मे ही साठ भक्त-भोजन छोडे जा सकते है, ३० दिन के मास मे नही।

२०—से ण ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं, भवक्खएणं, ठिइक्खएण अणतर चय चइत्ता माणुस्स विग्गह लहिहिइ, लहिहित्ता केवलं बोहिं बुज्झिहिइ, बुज्झिहित्ता तहारूवाण थेराण अंतिए मुंडे जाव पव्वइस्सइ। से ण तत्थ बहूइं वासाइ सामण्णं पाउणिहिइ, पाउणिहित्ता आलोइयपडिक्कंते समाहिपत्ते कालगए सणकुमारे कप्पे देवत्ताए उववज्जिहिइ।

से णं ताओ देवलोगाओ माणुस्स, पव्वजा बभलोए। माणुस्स। तओ महासुक्के। तओ माणुस्स, आणए देवे। तओ माणुस्स, आरणे। तओ माणुस्सं, सव्वट्ठसिद्धे।

से ण तओ अणंतर उव्वट्टित्ता महाविदेहे वासे जाइ अड्डाइ जहा दढपइन्ने, सिज्झिहिइ।

---

१ सामायिक शब्द चारित्र के पचविध विभागो मे से प्रथम विभाग-पहला चारित्र, श्रावक का नवम व्रत, आवश्यक सूत्र का प्रथम विभाग तथा सयमविशेष इत्यादि अनेक अर्थो का द्योतक है। प्रकृत मे सामायिक का अर्थ प्रथम अङ्ग आचाराङ्ग ग्रहण करना अनुकूल प्रतीत होता है, कारण 'सामाइयमाइयाइ' ऐसा उल्लेख है और वह 'एक्कारस अगाइ' का विशेषण है अर्थात् सामायिक है आदि मे जिसके ऐसे ग्यारह अङ्ग। ग्यारह अङ्गो के नाम ये है—आचाराङ्ग, सूत्रकृताङ्ग, स्थानाग, समवायाग, भगवती, ज्ञाताधर्मकथाङ्ग, उपासकदशाङ्ग, अन्तकृद्दशाङ्ग, अनुत्तरोपपातिकदशाङ्ग, प्रश्नव्याकरण, विपाकसूत्र।

२०. तदनंतर वह सुबाहुकुमार का जीव सौधर्म देवलोक से आयु, भव और स्थिति के क्षय होने पर व्यवधान रहित देव शरीर को छोड़कर सीधा मनुष्य शरीर को प्राप्त करेगा। प्राप्त करके शंकादि दोषों से रहित केवली– बोधि का लाभ करेगा, बोधि उपलब्ध कर तथारूप स्थविरों के पास मुंडित होकर साधुधर्म में प्रव्रजित हो जाएगा। वहाँ वह अनेक वर्षों तक श्रामण्यपर्याय—संयम व्रत का पालन करेगा और आलोचना तथा प्रतिक्रमण कर समाधि को प्राप्त होगा। काल धर्म को प्राप्त कर सनत्कुमारनामक तीसरे देवलोक में देवता के रूप से उत्पन्न होगा।

वहाँ से पुनः मनुष्य भव प्राप्त करेगा। दीक्षित होकर यावत् महाशुक्र नामक देवलोक में उत्पन्न होगा। वहाँ से च्यव कर फिर मनुष्य-भव में जन्म लेगा और पूर्व की ही तरह दीक्षित होकर यावत् आनत नामक नवम देवलोक में उत्पन्न होगा। वहाँ की भवस्थिति को पूर्ण कर मनुष्य-भव में आकर दीक्षित हो आरण नाम के ग्यारहवें देवलोक में उत्पन्न होगा। वहाँ से च्यव कर मनुष्य-भव को धारण करके अनगार-धर्म का आराधन कर शरीरान्त होने पर सर्वार्थसिद्ध नामक विमान में उत्पन्न होगा। वहाँ से च्यवकर सुबाहुकुमार का वह जीव व्यवधानरहित महाविदेह क्षेत्र में सम्पन्न कुलों में से किसी कुल में उत्पन्न होगा। वहाँ दृढप्रतिज्ञ[1] की भाँति चारित्र प्राप्त कर सिद्धपद को प्राप्त करेगा।

विवेचन—'आउक्खएणं' आदि तीन शब्दों की व्याख्या वृत्तिकार श्री अभयदेव सूरि ने इस प्रकार की है—'आउक्खएणं त्ति—आयुष्यकर्मनिर्जरेण, भवक्खएण त्ति-देवगतिनिबन्धनदेवगत्यादिकर्म-द्रव्यनिर्जरेण, ठिइक्खएणं आयुष्यकर्मादिकर्मस्थितिविगमेन।' आयु शब्द से आयुष्कर्म के दलिकों या कर्मवर्गणाओं का क्षय इष्ट है। भव शब्द से देवगति में कारणभूत देवगति नामकर्म के कर्मदलिकों का नाश गृहीत है—और स्थिति शब्द से आयुष्कर्म के दलिक जितने समय तक आत्मप्रदेशों से सम्बन्धित रहते हैं, उस कालस्थिति का नाश स्थितिनाश कहा जाता है।

२१—एवं खलु जम्बू! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं सुहविवागाणं पढमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते। त्ति बेमि।

२१. आर्य सुधर्मा स्वामी कहते हैं—हे जम्बू! यावत् मोक्षसम्प्राप्त श्रमण भगवान् महावीर ने सुखविपाक अंग के प्रथम अध्ययन का यह अर्थ प्रतिपादित किया है।

ऐसा मैं कहता हूँ।

॥ प्रथम अध्ययन समाप्त ॥

१. 'दृढप्रतिज्ञ' के वर्णन के लिये देखिए—औप. सूत्र—१४१-१५४

द्वितीय अध्ययन

भद्रनन्दी

१—विइयस्स उक्खेवो।

१—द्वितीय अध्ययन की प्रस्तावना पूर्ववत् समझ लेनी चाहिये।

२—तेणं कालेण तेणं समएणं उसभपुरे नयरे। थूभकरडगउज्जाणं। धन्नो जक्खो। धणावहो राया। सरस्सई देवी।

सुमिणदंसणं, कहणं, जम्मं, बालत्तणं, कलाओ य।
जोव्वणं पाणिग्गहण दाओ पासाय भोगा य।

जहा सुबाहुस्स। नवरं भद्दनंदी कुमारे। सिरिदेवी पामोक्खाणं पंचसयाणं रायवरकन्नगाणं पाणिग्गहणं। सामिस्स समोसरण। सावगधम्मं। पुव्वभवपुच्छा। महाविदेहे वासे पुंडरीकिणी नयरी। विजए कुमारे। जुगबाहू तित्थयरे पडिलाभिए। मणुस्साउए निबद्धे। इह उप्पन्ने। सेस जहा सुबाहुस्स जाव महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ, बुज्झिहिइ, मुच्चिहिइ, परिणिव्वाहिइ, सव्वदुक्खाणमंतं काहिइ।

निक्खेवो।

२—जम्बू स्वामी ने प्रश्न किया कि श्रमण भगवान् महावीर ने सुखविपाक के दूसरे अध्ययन का क्या अर्थ कहा है? उत्तर मे सुधर्मा स्वामी कहते है,—हे जम्बू! उस काल तथा उस समय मे ऋषभपुर नाम का एक नगर था। वहाँ स्तूपकरण्डक नामक उद्यान था। धन्य नामक यक्ष का यक्षायतन था। वहाँ धनावह नाम का राजा राज्य करता था। उसकी सरस्वती देवी नाम की रानी थी। महारानी का स्वप्न-दर्शन, पति मे स्वप्न-वृत्तान्तकथन, समय आने पर बालक का जन्म, बालक का बाल्यावस्था मे कलाए सीखकर यौवन को प्राप्त होना, तदनन्तर विवाह होना, माता-पिता के द्वारा दहेज देना और ऊँचे प्रासादो मे अभीष्ट भोगोपभोगो का उपभोग करना, आदि सभी वर्णन सुबाहुकुमार ही की तरह जानना चाहिये। उसमे अन्तर केवल इतना है कि सुबाहुकुमार के बदले बालक का नाम 'भद्रनन्दी' था। उसका श्रीदेवी प्रमुख पाँच सौ देवियो के साथ (श्रेष्ठ राज्यकन्याओ के साथ) विवाह हुआ। तदनन्तर महावीर स्वामी का पदार्पण हुआ, भद्रनन्दी ने श्रावकधर्म अगीकार किया। गौतम स्वामी द्वारा उसके पूर्वभव सम्बन्धी प्रश्न करने पर भगवान् ने इस प्रकार उत्तर दिया—

महाविदेह क्षेत्र के अन्तर्गत पुण्डरीकिणी नाम की नगरी मे विजय नामक कुमार था। उसके द्वारा भी युगबाहु तीर्थंकर को प्रतिलाभित करना—दान देना, उससे मनुष्य आयुष्य का बन्ध होना, यहाँ भद्रनन्दी के रूप मे जन्म लेना, यह सब सुबाहुकुमार ही की तरह जान लेना चाहिये। यावत् वह महाविदेह क्षेत्र मे उत्पन्न होकर सिद्ध होगा, बुद्ध होगा, मुक्त होगा, निर्वाण पद को प्राप्त करेगा व सर्व दुःखो का अन्त करेगा।

निक्षेप की कल्पना पूर्ववत् कर लेनी चाहिये।

॥ द्वितीय अध्ययन समाप्त ॥

तृतीय अध्ययन

सुजातकुमार

१—तच्चस्स उक्खेवो ।

१—तृतीय अध्ययन की प्रस्तावना भी यथापूर्व जान लेनी चाहिये ।

२—वीरपुरं नयरं । मणोरमं उज्जाणं । वीरकण्हमित्ते राया । सिरीदेवी । सुजाए कुमारे । बलसिरीपामोक्खाणं पचसयकन्नगाणं पाणिग्गहणं । सामीसमोसरण । पुव्वभवपुच्छा । उसुयारे नयरे । उसभदत्ते गाहावई । पुप्फदत्ते अणगारे पडिलाभिए । माणुस्साउए निबद्धे । इह उप्पन्ने जाव महाविदेहवासे सिज्झिहिइ, बुज्झिहिइ, मुच्चिहिइ, परिणिव्वाहिइ, सव्वदुक्खाणमत काहिइ ।

निक्खेवो ।

२—श्री सुधर्मा स्वामी ने कहा—हे जम्बू ! वीरपुर नामक नगर था । वहाँ मनोरम नामका उद्यान था । महाराज वीरकृष्णमित्र राज्य करते थे । श्रीदेवी नामक उनकी रानी थी । सुजात नाम का कुमार था । बलश्री प्रमुख ५०० श्रेष्ठ राज-कन्याओ के साथ सुजातकुमार का पाणिग्रहण-सस्कार हुआ । श्रमण भगवान् महावीर स्वामी पधारे । सुजातकुमार ने श्रावक-धर्म स्वीकार किया । श्री गौतम स्वामी ने पूर्वभव की जिज्ञासा प्रकट की । श्रमण भगवान् महावीर ने इस तरह पूर्वभव का वृत्तान्त कहा—

इषुकासार नामक नगर था । वहाँ ऋषभदत्त गाथापति रहता था । उसने पुष्पदत्त अनगार को निर्दोष आहार दान दिया, फलत शुभ मनुष्य आयुष्य का वन्ध हुआ । आयु पूर्ण होने पर यहाँ सुजातकुमार के रूप मे उत्पन्न हुआ यावत् महाविदेह क्षेत्र मे चारित्र ग्रहण कर सिद्ध पद को प्राप्त करेगा ।

विवेचन—दूसरे अध्ययन की तरह तीसरे अध्ययन का भी सारा वर्णन प्रथम अध्ययन के ही समान है । केवल नाम व स्थान मात्र का भेद है । अत सारा वर्णन सुवाहुमार की ही तरह समझ लेना चाहिये ।

निक्षेप की कल्पना पूर्व की भाति कर लेनी चाहिये ।

॥ तृतीय अध्ययन समाप्त ॥

—

चतुर्थ अध्ययन

सुवासवकुमार

१—चउत्थस्स उक्खेवो ।

१—चतुर्थ अध्ययन की प्रस्तावना भी यथापूर्व समझ लेनी चाहिये ।

२—विजयपुरं नयरं । नन्दणवणं उज्जाणं । असोगो जक्खो । वासवदत्ते राया । कण्हादेवी । सुवासवे कुमारे । भद्दापामोक्खाणं पचसयाणं रायवरकन्नगाणं जाव पुव्वभवे । कोसबी नयरी । धणपाले राया । वेसमणभद्दे अणगारे पडिलाभिए । इहं उववन्ने । जाव सिद्धे । निक्खेवो ।

२—सुधर्मा स्वामी ने उत्तर दिया—हे जम्बू ! विजयपुर नाम का एक नगर था । वहाँ नन्दनवन नाम का उद्यान था । उस उद्यान मे अशोक नामक यक्ष का एक यक्षायतन था । विजयपुर नगर के राजा का नाम वासवदत्त था । उसकी कृष्णादेवी नाम की रानी थी । सुवासवकुमार नामक राजकुमार था । भद्रा-प्रमुख पाच सौ राजाओ की श्रेष्ठ कन्याओ के साथ विवाह हुआ । श्रमण भगवान् महावीर स्वामी पधारे । सुवासवकुमार ने श्रावकधर्म स्वीकार किया । गौतम स्वामी ने उसके पूर्वभव का वृत्तान्त पूछा । उत्तर मे श्री भगवान् ने फरमाया—

गौतम ! कौशाम्बी नाम की नगरी थी । वहाँ धनपाल नामक राजा था । उसने वैश्रमणभद्र अनगार को निर्दोष आहार का दान दिया, उसके प्रभाव से मनुष्य-आयुष्य का बन्ध हुआ यावत् यहाँ सुवासवकुमार के रूप मे जन्म लिया है, यावत् इसी भव मे सिद्धि-गति को प्राप्त हुए ।

विवेचन—प्रस्तुत अध्ययन मे भी चरित्रनायक के नाम, जन्मभूमि, उद्यान, माता-पिता, परिणीत स्त्रियो, पूर्वभव सम्बन्धी नाम, जन्मभूमि तथा प्रतिलम्भित मुनिराज की विभिन्नता के नामो को छोडकर अवशिष्ट सारा कथा-विभाग सुबाहुकुमार की ही तरह समझ लेने का निर्देश किया है ।

निक्षेप की कल्पना पूर्ववत् कर लेनी चाहिये ।

।। चतुर्थ अध्ययन समाप्त ।।

पञ्चम अध्ययन

जिनदास

१—पंचमस्स उक्खेवो ।

१—पञ्चम अध्ययन की प्रस्तावना भी यथापूर्व जान लेनी चाहिये ।

२—सोगन्धिया नयरी । नीलासोए उज्जाणे । सुकालो जक्खो । अप्पडिहओ राया । सुकण्हा देवी । महाचदे कुमारे । तस्स अरहदत्ता भारिया । जिणदासो पुत्तो । तित्थयरागमणं । जिण-दासपुव्वभवो । मज्झमिया नयरी । मेहरहो राया । सुधम्मे अणगारे पडिलाभिए जाव सिद्धे । निक्खेवो ।

२—हे जम्बू ! सौगन्धिका नाम की नगरी थी । वहाँ नीलाशोक नाम का उद्यान था । उसमे सुकाल नाम के यक्ष का यक्षायतन था । उक्त नगरी मे अप्रतिहत नामक राजा राज्य करते थे । सुकृष्णा नाम की उनकी भार्या थी । उनके पुत्र का नाम महाचन्द्रकुमार था । उसकी अर्हद्त्ता नाम की भार्या थी । जिनदास नाम का पुत्र था । किसी समय श्रमण भगवान् महावीर का पदार्पण हुआ । जिनदास ने भगवान् से द्वादशविध गृहस्थ धर्म स्वीकार किया । श्री गौतम स्वामी ने उसके पूर्वभव की जिज्ञासा प्रकट की और भगवान् ने इसके उत्तर मे इस प्रकार फरमाया—

हे गौतम! माध्यमिका नाम की नगरी थी । महाराजा मेघरथ वहाँ के राजा थे । सुधर्मा अनगार को महाराजा मेघरथ ने भावपूर्वक निर्दोष आहार दान दिया, उससे मनुष्य भव के आयुष्य का बन्ध किया और यहाँ पर जन्म लेकर यावत् इसी जन्म मे सिद्ध हुआ ।

निक्षेप—उपसहार की कल्पना पूर्ववत् समझनी चाहिये ।

विवेचन—प्रस्तुत अध्ययन मे जिनदास के जीवन-वृत्तान्त के सकलन मे यदि कोई विशेषता हो तो मात्र इतनी ही कि इसके पितामह श्री अप्रतिहत राजा और पितामही श्री सुकृष्णा देवी का भी इसमे उल्लेख है, जो प्राय अन्य किसी अध्यायो के जीवनवृत्तो मे उपलब्ध नही है । शेष कथा-वस्तु सुबाहुकुमार के समान ही है । विशिष्टता है तो इतनी ही कि इसी भव मे (इसी जन्म मे) यह मोक्ष को प्राप्त हुआ ।

।। पञ्चम अध्ययन समाप्त ।।

—

षष्ठ अध्ययन

धनपति

१—छट्ठस्स उक्खेवो ।

१—छट्ठे अध्याय की प्रस्तावना भी पूर्ववत् ही समझ लेनी चाहिए ।

२—कणगपुरं नयरं । सेयासोय उज्जाणं । वीरभद्दो जक्खो । पियचंदो राया । सुभद्दा देवी । वेसमणे कुमारे जुवराया । सिरीदेवी पमोक्खाण पचसयाण रायवरकन्नगाणं पाणिग्गहण । तित्थय-रागमणं । धणवई जुवरायपुत्ते जाव पुव्वभवो । मणिवया नयरी । मित्तो राया । संभूतिविजए अण-गारे पडिलाभिए जाव सिद्धे ।

निक्खेवो ।

२—हे जम्बू ! कनकपुर नाम का नगर था । वहाँ श्वेताशोकनामक एक उद्यान था । वहाँ वीरभद्र नाम के यक्ष का यक्षायतन था । कनकपुर का राजा प्रियचन्द्र था, उसकी रानी का नाम सुभद्रादेवी था । युवराज पदासीन पुत्र का नाम वैश्रमण कुमार था । उसका श्रीदेवी प्रमुख ५०० श्रेष्ठ राजकन्याओ के साथ विवाह हुआ था । किसी समय तीर्थंकर श्री महावीर स्वामी पधारे । युवराज के पुत्र धनपति कुमार ने भगवान् से श्रावको के व्रत ग्रहण किए यावत् गौतम स्वामी ने उसके पूर्वभव की पृच्छा की । उत्तर मे भगवान् ने कहा—

धनपतिकुमार पूर्वभव मे मणिचयिका नगरी का राजा था । उसका नाम मित्र था । उसने सभूतिविजय नामक अनगार को शुद्ध आहार से प्रतिलाभित किया यावत् इसी जन्म मे वह सिद्धिगति को प्राप्त हुआ ।

निक्षेप—उपसहार भी पूर्ववत् समझना चाहिये ।

विवेचन—प्रस्तुत अध्ययन मे धनपतिकुमार ने भी सुबाहुकुमार ही की तरह पूर्वभव मे सुपात्र दान से मनुष्य आयुष्य का वन्ध किया । भगवान् महावीर स्वामी के पास क्रमश श्रावक धर्म व अन्त मे मुनि धर्म की दीक्षा लेकर कर्मबन्धनो को तोडकर मोक्ष प्राप्त किया ।

इस भव व पूर्वभव मे नामादि की भिन्नता के साथ-साथ सुबाहुकुमार व धनपति कुमार के जीवन मे इतना ही अन्तर है कि सुबाहुकुमार देवलोको मे जाता हुआ और मनुष्य-भव प्राप्त करता हुआ अन्त मे महाविदेह क्षेत्र मे सिद्ध होगा जबकि धनपति कुमार इसी जन्म मे निर्वाण को उपलब्ध हो गया ।

॥ षष्ठ अध्ययन समाप्त ॥

सप्तम अध्ययन

महाबल

१—सत्तमस्स उक्खेवो ।

१—सातवे अध्याय का उत्क्षेप पूर्ववत् ही समझ लेना चाहिये ।

२—महापुरं नयरं । रत्तासोग उज्जाणं । रत्तपाओ जक्खो । बले राया । सुभद्दा देवी । महब्बले कुमारे । रत्तवईपामोक्खाण पचसयाणं रायवरकन्नगाण पाणिग्गहणं । तित्थयरागमण जाव पुव्वभवो । मणिपुर नयर । नागदत्ते गाहावई । इन्दपुरे अणगारे पडिलाभिए जाव सिद्धे । निक्खेवो ।

२—हे जम्बू ! महापुर नामक नगर था । वहाँ रक्ताशोक नाम का उद्यान था । उसमे रक्त-पाद यक्ष का आयतन था । नगर मे महाराज बल का राज्य था । सुभद्रा देवी नाम की उसकी रानी थी । महाबल नामक राजकुमार था । उसका रक्तवती प्रभृति ५०० श्रेष्ठ राजकन्याओ के साथ विवाह किया गया ।

उस समय तीर्थङ्कर भगवान् श्री महावीर स्वामी पधारे । तदनन्तर महावल राजकुमार का भगवान् से श्रावकधर्म अङ्गीकार करना, गणधर देव का भगवान् से उसका पूर्वभव पूछना तथा भगवान् का प्रतिपादन करते हुए कहना—

गौतम ! मणिपुर नाम का नगर था । वहाँ नागदेव नाम का गाथापति रहता था । उसने इन्द्रदत्त नाम के अनगार को पवित्र भावनाओ से निर्दोष आहार का दान देकर प्रतिलम्भित किया तथा उसके प्रभाव से मनुष्य आयुष्य का बन्ध करके यहाँ पर महाबल के रूप मे उत्पन्न हुआ । तद-नन्तर उसने श्रमणदीक्षा स्वीकार कर यावत् सिद्धगति को प्राप्त किया ।

निक्षेप—उपसहार भी पूर्ववत् जानना चाहिये ।

॥ सप्तम अध्ययन समाप्त ॥

—

अष्टम अध्ययन

भद्रनन्दी

१—अट्ठमस्स उक्खेवो ।

१—अष्टम अध्याय का उत्क्षेप पूर्व की भांति ही समझ लेना चाहिये ।

२—सुघोसं नयरं । देवरमण उज्जाणं । वीरसेणो जक्खो । अज्जुणो राया । तत्तवई देवी । भद्दनन्दी कुमारे । सिरिदेवी पामोक्खाणं पंचसयाण रायवरकन्नगाणं पाणिग्गहण जाव पुव्वभवे । महाघोसे नयरे । धम्मघोसे गाहावई । धम्मसीहे अणगारे पडिलाभिए जाव सिद्धे । निक्खेवो ।

२—सुघोप नामक नगर था । वहाँ देवरमण नामक उद्यान था । उसमे वीरसेन नामक यक्ष का यक्षायतन था । सुघोप नगर मे अर्जुन नामक राजा राज्य करता था । उसके तत्त्ववती नाम की रानी थी और भद्रनन्दी नाम का राजकुमार था । उसका श्रीदेवी आदि ५०० श्रेष्ठ राजकन्याओ के साथ पाणिग्रहण हुआ । किसी समय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी का वहा पदार्पण हुआ । भद्रनन्दी ने भगवान् की देशना से प्रभावित होकर श्रावकधर्म अङ्गीकार किया । श्री गौतम स्वामी ने उसके पूर्वभव के सम्बन्ध मे पृच्छा की और भगवान् ने उत्तर देते हुए फरमाया--

हे गौतम ! महाघोप नगर था । वहाँ धर्मघोप नाम का गाथापति रहता था । उसने धर्मसिंह नामक मुनिराज को निर्दोष आहार के दान से प्रतिलाभित कर मनुष्य-भव के आयुष्य का वन्ध किया और यहाँ पर उत्पन्न हुआ । यावत् साधुधर्म का यथाविधि अनुष्ठान करके श्री भद्रनन्दी अनगार ने वन्धे हुए कर्मों का आत्यतिक क्षय कर मोक्ष पद को प्राप्त किया ।

निक्षेप—उपसहार पूर्ववत् समझना चाहिये ।

विवेचन—सुवाहुकुमार और भद्रनन्दी के जीवन मे इतना ही अन्तर है कि सुबाहुकुमार देवलोक आदि अनेको भव कर के महाविदेह क्षेत्र से सिद्ध होगे जब कि भद्रनन्दी इसी भव मे मुक्ति को प्राप्त कर लेते हैं ।

।। अष्टम अध्ययन समाप्त ।।

नवम अध्ययन

महाचन्द्र

१—नवमस्स उक्खेवो ।

१—नवम अध्ययन का उत्क्षेप यथापूर्व जान लेना चाहिये ।

२—चम्पा नयरी । पुण्णभद्दे उज्जाणे । पुण्णभद्दो जक्खो । दत्ते राया । रत्तवई देवी । महचंदे कुमारे जुवराया । सिरीकन्तापामोक्खाणं पचसयाणं रायवरकन्नगाणं पाणिग्गहणं जाव पुव्वभवो । तिगिच्छिया नयरी । जियसत्तू राया । धम्मवीरिए अणगारे पडिलाभिए जाव सिद्धे ।

२—हे जम्बू ! चम्पा नाम की नगरी थी । वहाँ पूर्णभद्र नामक सुन्दर उद्यान था । उसमे पूर्णभद्र यक्ष का यक्षायतन था । वहाँ के राजा का नाम दत्त था और रानी का नाम रक्तवती था । उनके युवराज पदासीन महाचन्द्र नामक राजकुमार था । उसका श्रीकान्ता प्रमुख ५०० श्रेष्ठ राजकन्याओ के साथ पाणिग्रहण हुआ था ।

एक दिन पूर्णभद्र उद्यान मे श्रमण भगवान् महावीर स्वामी का पदार्पण हुआ । महाचन्द्र ने उनसे श्रावको के वारह व्रतो को ग्रहण किया । गणधर देव श्री गौतम स्वामी ने उसके पूर्वभव के सम्वन्ध मे जिज्ञासा प्रकट की । भगवान् महावीर स्वामी ने उत्तर देते हुए फरमाया—

हे गौतम ! चिकित्सिका नाम की नगरी थी । महाराजा जिनशत्रु वहाँ राज्य करते थे । उसने धर्मवीर्य अनगार को प्रासुक—निर्दोष आहार पानी का दान देकर प्रतिलम्भित किया, फलत मनुष्य-आयुष्य को वान्धकर यहाँ उत्पन्न हुआ । यावत् श्रामण्य-धर्म का यथाविधि अनुष्ठान करके महाचन्द्र मुनि बन्धे हुए कर्मों का समूल क्षय कर परमपद को प्राप्त हुए ।

इन सब के जीवनवृत्तान्तो मे मात्र नामगत व स्थानगत भिन्नता के अतिरिक्त अर्थगत कोई भेद नही है ।

निक्षेप—उपसहार—पूर्ववत् समझ लेना चाहिये ।

॥ नवम अध्ययन समाप्त ॥

दशम अध्ययन

वरदत्त

१—दसमस्स उक्खेवो।

१—दशम अध्ययन की प्रस्तावना पूर्व की भाति ही जाननी चाहिये।

२—एवं खलु, जम्बू! तेणं कालेण तेण समएण साएयं नामं नयरं होत्था। उत्तर-कुरु उज्जाणे। पासामिओ जक्खो। मित्तनन्दी राया। सिरिकन्ता देवी। वरदत्ते कुमारे। वरसेणा-पामोक्खाण पंचदेवीसयाण रायवरकन्नगाण पाणिग्गहण। तित्थयरागमण। सावगधम्म। पुव्वभव-पुच्छा। सयदुवारे नयरे। विमलवाहणे राया। धम्मरुई नाम अणगारं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता पडिलाभिए समाणे मणुस्साउए निवद्धे। इहं उप्पन्ने। सेस जहा सुवाहुस्स कुमारस्स। चिन्ता जाव पव्वज्जा। कप्पन्तरिओ जाव सव्वट्ठसिद्धे। तओ महाविदेहे जहा दढपइन्नो जाव सिज्झिहिइ बुज्झिहिइ, मुच्चिहिइ, परिणिव्वाहिइ सव्वदुक्खामत काहिइ।

'एवं खलु, जम्बू! समणेणं भगवया महावीरेण जाव सपत्तेण सुहविवागाण दसमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पन्नत्ते।'

सेव भन्ते! सेवं भते! सुहविवागा।

२—हे जम्बू! उस काल तथा उस समय मे साकेत नाम का एक विख्यात नगर था। वहाँ उत्तरकुरु नाम का सुन्दर उद्यान था। उसमे पाशमृग नामक यक्ष का यक्षायतन था। उस नगर के राजा मित्रनन्दी थे। उनकी श्रीकान्ता नाम की रानी थी। (उनका) वरदत्त नाम का राजकुमार था। कुमार वरदत्त का वरसेना आदि ५०० श्रेष्ठ राजकन्याओ के साथ पाणिग्रहण-सस्कार हुआ था। तदनन्तर किसी समय उत्तरकुरु उद्यान मे श्रमण भगवान् महावीर स्वामी का पदार्पण हुआ। वरदत्त ने देशना श्रवण कर भगवान् से श्रावकधर्म अङ्गीकार किया। गणधर श्रीगौतम स्वामी के पूछने पर भगवान् श्री महावीर ने वरदत्त के पूर्वभव का वृत्तान्त इस प्रकार फरमाया—

हे गौतम! शतद्वार नाम का नगर था। उसमे विमलवाहन नामक राजा राज्य करता था। उसने एकदा धर्मरुचि अनगार को आते हुए देखकर उत्कट भक्तिभावो से निर्दोष आहार का दान कर प्रतिलाभित किया। उसके पुण्यप्रभाव से शुभ मनुष्य आयुष्य का वन्ध किया। वहाँ की भवस्थिति को पूर्ण करके इसी साकेत नगर मे महाराजा मित्रनन्दी की रानी श्रीकान्ता की कुक्षि से वरदत्त के रूप के उत्पन्न हुआ।

शेष वृत्तान्त सुवाहुकुमार की तरह ही समझ लेना चाहिये। अर्थात् भगवान् के विहार कर जाने के बाद पौपध-शाला में पोपधोपवास करना, भगवान् के पास दीक्षित होने वालो को पुण्यशाली वतलाना और भगवान् के पुन पधारने पर दीक्षित होने का सकल्प करना। यह सब सुवाहुकुमार व वरदत्त कुमार दोनो के जीवन मे समान ही है। तदनन्तर दीक्षित होकर सयमव्रत का

पालन करते हुए मनुष्य-भव से देवलोक और देवलोक से मनुष्यभव, देवलोको मे भी बीच-बीच के एक एक देवलोक को छोड़कर—सुबाहु के समान ही गमनागमन करते हुए अन्त मे सुबाहुकुमार की ही तरह महाविदेह क्षेत्र मे जन्म लेकर, वहाँ पर चारित्र की सम्यक् आराधना से कर्मरहित होकर मोक्षगमन भी समान ही समझना चाहिये।

वरदत्त कुमार का जीव स्वर्गीय तथा मानवीय, अनेक भवो को धारण करता हुआ अन्त में सर्वार्थसिद्ध विमान मे उत्पन्न होगा, वहाँ से च्यव कर महाविदेह क्षेत्र मे उत्पन्न हो, दृढप्रतिज्ञ की तरह सिद्धगति को प्राप्त करेगा।

हे जम्बू ! इस प्रकार यावत् मोक्षसम्प्रात श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने सुखविपाक के दशम अध्ययन का अर्थ प्रतिपादन किया है, ऐसा मैं कहता हूँ।

जम्बू स्वामी—भगवन् ! आपका सुखविपाक का कथन, जैसे कि आपने फरमाया है, वैसा ही है, वैसा ही है।

॥ दशम अध्ययन समाप्त ॥

॥ सुखविपाक समाप्त ॥

॥ विपाकश्रुत समाप्त ॥

परिशिष्ट

विशिष्ट-शब्द-सूची

विशिष्ट–शब्द सूची

[प्रस्तुत परिशिष्ट मे उन्ही शब्दो को सगृहीत किया गया है, जो वहु प्रचलित नही हैं। प्रत्येक पृष्ठ के सामने वह पृष्ठाङ्क अकित किया गया है, जिस पृष्ठ पर उस शब्द का प्रयोग हुआ है। प्रस्तुत सस्करण अर्थ-सहित है ही, अतएव शब्दो का अर्थ सामने लिखित पृष्ठ पर देखा जा सकता है।

ग्रन्थ मे एक-एक शब्द अनेकानेक स्थलो पर प्रयुक्त हुआ है, किन्तु यहाँ उन सव स्थलो का उल्लेख करना आवश्यक न समझ कर केवल एक स्थल का ही उल्लेख किया गया है।]

अनध्यायकाल

[स्व० आचार्यप्रवर श्री आत्मारामजी म० द्वारा सम्पादित नन्दीसूत्र से उद्धृत]

स्वाध्याय के लिए आगमो मे जो समय बताया गया है, उसी समय शास्त्रो का स्वाध्याय करना चाहिए। अनध्यायकाल मे स्वाध्याय वर्जित है।

मनुस्मृति आदि स्मृतियो मे भी अनध्यायकाल का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। वैदिक लोग भी वेद के अनध्यायो का उल्लेख करते हैं। इसी प्रकार अन्य आर्ष ग्रन्थो का भी अनध्याय माना जाता है। जैनागम भी सर्वज्ञोक्त, देवाधिष्ठित तथा स्वरविद्या सयुक्त होने के कारण, इन का भी आगमो मे अनध्यायकाल वर्णित किया गया है, जैसे कि—

दसविधे अतलिक्खिते असज्झाए पण्णत्ते, त जहा—उक्कावाते, दिसिदाघे, गज्जिते, निग्घाते, जुवते, जक्खालित्ते, धूमिता, महिता, रयउग्घाते।

दसविहे ओरालिते असज्झातिते, त जहा—अट्ठी, मस, सोणिते, असुतिसामते, सुसाणसामते, चदोवराते, सूरोवराते, पडने, रायवुग्गहे, उवस्सयस्स अतो ओरालिए सरीरगे।

—स्थानाङ्ग सूत्र, स्थान १०

नो कप्पति निग्गथाण वा, निग्गथीण वा चउहिं महापाडिवएहिं सज्झाय करित्तए, त जहा—आसाढपाडिवए, इदमहापाडिवए, कत्तिअपाडिवए, सुगिम्हपाडिवए। नो कप्पइ निग्गथाण वा निग्गथीण वा, चउहिं सभाहिं सज्झाय करेत्तए, त जहा—पडिमाते, पच्छिमाते, मज्झण्हे, अड्ढरत्ते। कप्पइ निग्गथाणं वा निग्गथीण वा, चाउक्काल सज्झाय करेत्तए, त जहा—पुव्वण्हे, अवरण्हे, पओसे, पच्चूसे।

—स्थानाङ्ग सूत्र, स्थान ४, उद्देश २

उपरोक्त सूत्रपाठ के अनुसार, दस आकाश से सम्बन्धित, दस औदारिक शरीर से सम्बन्धित, चार महाप्रतिपदा, चार महाप्रतिपदा की पूर्णिमा और चार सन्ध्या, इस प्रकार बत्तीस अनध्याय माने गए हैं। जिनका सक्षेप मे निम्न प्रकार से वर्णन है, जैसे—

आकाश सम्बन्धी दस अनध्याय

१. **उल्कापात-तारापतन**—यदि महत् तारापतन हुआ है तो एक प्रहर पर्यन्त शास्त्र-स्वाध्याय नही करना चाहिए।

२. **दिग्दाह**—जब तक दिशा रक्तवर्ण की हो अर्थात् ऐसा मालूम पडे कि दिशा मे आग सी लगी है, तब भी स्वाध्याय नही करना चाहिए।

३-४ गर्जित-विद्युत्—गर्जन और विद्युत प्राय ऋतु स्वभाव से ही होता है। अत आर्द्रा से स्वाति नक्षत्र पर्यन्त अनध्याय नही माना जाता।

५. निर्घात—विना वादल के आकाश मे व्यन्तरादिकृत घोर गर्जन होने पर, या बादलो सहित आकाश मे कडकने पर दो प्रहर तक अस्वाध्याय काल है।

६. यूपक—शुक्ल पक्ष मे प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया को सन्ध्या की प्रभा और चन्द्रप्रभा के मिलने को यूपक कहा जाता है। इन दिनो प्रहर रात्रि पर्यन्त स्वाध्याय नही करना चाहिए।

७. यक्षादीप्त—कभी किसी दिशा मे विजली चमकने जैसा, थोडे थोडे समय पीछे जो प्रकाश होता हे वह यक्षादीप्त कहलाता है। अत आकाश मे जव तक यक्षाकार दीखता रहे तव तक स्वाध्याय नही करना चाहिए।

८ धूमिका कृष्ण—कार्तिक से लेकर माघ तक का समय मेघो का गर्भमास होता है। इसमे धूम्र वर्ण की सूक्ष्म जलरूप धुध पडती है। वह धूमिका-कृष्ण कहलाती है। जव तक यह धुध पडती रहे, तब तक स्वाध्याय नही करना चाहिए।

९. मिहिकाश्वेत—शीतकाल मे श्वेत वर्ण का सूक्ष्म जलरूप धुन्ध मिहिका कहलाती है। जव तक यह गिरती रहे, तव तक अस्वाध्याय काल है।

१० रज उद्घात—वायु के कारण आकाश मे चारो ओर धूलि छा जाती है। जव तक यह धूलि फैली रहती है, स्वाध्याय नही करना चाहिए।

उपरोक्त दस कारण आकाश सम्वन्धी अस्वाध्याय के है।

औदारिक सम्बन्धी दस अनध्याय

११-१२-१३ हड्डी मांस और रुधिर—पचेद्रिय तिर्यच की हड्डी मास और रुधिर यदि सामने दिखाई दें, तो जव तक वहां से यह वस्तुएँ उठाई न जाएँ तव तक अस्वाध्याय है। वृत्तिकार आस पास के ६० हाथ तक इन वस्तुओ के होने पर अस्वाध्याय मानते है।

इसी प्रकार मनुष्य सम्वन्धी अस्थि मास और रुधिर का भी अनध्याय माना जाता है। विशेषता इतनी है कि इनका अस्वाध्याय सौ हाथ तक तथा एक दिन रात का होता है। स्त्री के मासिक धर्म का अस्वाध्याय तीन दिन तक। वालक एव वालिका के जन्म का अस्वाध्याय क्रमश सात एव आठ दिन पर्यन्त का माना जाता है।

१४ अशुचि—मल-मूत्र सामने दिखाई देने तक अस्वाध्याय है।

१५. श्मशान—श्मशानभूमि के चारो ओर सौ-सौ हाथ पर्यन्त अस्वाध्याय माना जाता है।

१६ चन्द्रग्रहण—चन्द्रग्रहण होने पर जघन्य आठ,मध्यम बारह और उत्कृष्ट सोलह प्रहर पर्यन्त स्वाध्याय नही करना चाहिए।

१७. सूर्यग्रहण—सूर्यग्रहण होने पर भी क्रमश आठ, वारह और सोलह प्रहर पर्यन्त अस्वाध्यायकाल माना गया है।

१८. पतन—किसी बडे मान्य राजा अथवा राष्ट्र पुरुष का निधन होने पर जब तक उसका दाहसस्कार न हो तब तक स्वाध्याय न करना चाहिए। अथवा जब तक दूसरा अधिकारी सत्तारूढ न हो तब तक शनै शनै स्वाध्याय करना चाहिए।

१९. राजव्युद्ग्रह—समीपस्थ राजाओ मे परस्पर युद्ध होने पर जब तक शान्ति न हो जाए, तब तक और उसके पश्चात् भी एक दिन-रात्रि स्वाध्याय नही करे।

२०. औदारिक शरीर—उपाश्रय के भीतर पचेन्द्रिय जीव का वध हो जाने पर जब तक कलेवर पडा रहे, तब तक तथा १०० हाथ तक यदि निर्जीव कलेवर पडा हो तो स्वाध्याय नही करना चाहिए।

अस्वाध्याय के उपरोक्त १० कारण औदारिक शरीर सम्बन्धी कहे गये है।

२१-२८. चार महोत्सव और चार महाप्रतिपदा—आषाढपूर्णिमा, आश्विन-पूर्णिमा, कार्तिक-पूर्णिमा और चैत्र-पूर्णिमा ये चार महोत्सव है। इन पूर्णिमाओ के पश्चात् आने वाली प्रतिपदा को महाप्रतिपदा कहते है। इनमे स्वाध्याय करने का निषेध है।

२९-३२. प्रातः, सायं, मध्याह्न और अर्धरात्रि—प्रात सूर्य उगने से एक घडी पहिले तथा एक घडी पीछे। सूर्यास्त होने से एक घडी पहले तथा एक घडी पीछे। मध्याह्न अर्थात् दोपहर मे एक घडी आगे और एक घडी पीछे एव अर्धरात्रि मे भी एक घडी आगे तथा एक घडी पीछे स्वाध्याय नही करना चाहिए।

—

श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर

अर्थसहयोगी सदस्यों की शुभ नामावली

महास्तम्भ

१ श्री सेठ मोहनमलजी चोरडिया, मद्रास
२ श्री सेठ खीवराजजी चोरडिया, मद्रास
३. श्री सायरमलजी जेठमलजी चोरडिया, बैंगलोर
४. श्री एस. किशनचन्दजी चोरडिया, मद्रास
५ श्री गुमानमलजी चोरडिया, मद्रास
६ श्री कवरलालजी बेताला, गोहाटी
७ श्री पुखराजजी शिशोदिया, ब्यावर
८ श्री प्रेमराजजी भवरलालजी श्रीश्रीमाल, दुर्ग
९ श्री गुलाबचन्दजी मागीलालजी सुराणा, सिकन्दराबाद
१० श्री जे. दुलीचन्दजी चोरडिया, मद्रास
११. श्री एस बादलचन्दजी चोरडिया, मद्रास
१२ श्री एस रतनचन्दजी चोरडिया, मद्रास

स्तम्भ

१ श्री जसराजजी गणेशमलजी सचेती, जोधपुर
२ श्री अगरचन्दजी फतेचन्दजी पारख, जोधपुर
३ श्री पूसालालजी किस्तूरचदजी सुराणा, बालाघाट
४ श्री मूलचन्दजी चोरडिया, कटगी
५ श्री तिलोकचदजी सागरमलजी सचेती, मद्रास
६ श्री हीराचन्दजी चोरडिया, मद्रास
७ श्री वर्द्धमान इन्डस्ट्रीज, कानपुर
८ श्री एस सायरचन्दजी चोरडिया, मद्रास
९. श्री एस. रिखबचन्दजी चोरडिया, मद्रास
१० श्री आर परसनचन्दजी चोरडिया, मद्रास
११ श्री अन्नराजजी चोरडिया, मद्रास
१२ श्री दीपचन्दजी बोकडिया, मद्रास
१३ श्री मिश्रीलालजी तिलोकचन्दजी सचेती, दुर्ग

सरक्षक

१, श्री हीरालालजी पन्नालालजी चोपडा, ब्यावर
२ श्री दीपचदजी चन्दनमलजी चोरडिया, मद्रास
३ श्री ज्ञानराजजी मूथा, पाली
४ श्री खूबचन्दजी गादिया, ब्यावर
५ श्री रतनचदजी उत्तमचदजी मोदी, ब्यावर
६ श्री पन्नालालजी भागचन्दजी बोथरा, चागाटोला
७ श्री मिश्रीलालजी धनराजजी विनायकिया, ब्यावर
८ गी प्रेमराजजी जतनराजजी मेहता, मेडता
९ श्री जडावमलजी माणकचन्दजी बेताला, बागलकोट
१० श्री वस्तीमलजी मोहनलालजी बोहरा (K G F) एव जाडन
११ श्री केशरीमलजी जवरीलालजी तालेरा, पाली
१२ श्री नेमीचदली मोहनलालजी ललवाणी, चागाटोला
१३ श्री विरदीचदजी प्रकाशचदजी तालेरा, पाली
१४. श्री सिरेकँवर बाई धर्मपत्नी स्व श्री सुगनचद जी झामड, मदुरान्तकम
१५ श्री थानचदजी मेहता, जोधपुर
१६ श्री मूलचदजी सुजानमलजी सचेती, जोधपुर
१७ श्री लालचदजी मोहनलालजी कोठारी, गोठन
१८ श्री भेरुदानजी लाभचदजी सुराणा, धोवडी तथा नागौर
१९ श्री रावतमलजी भीकमचदजी पगारिया, बालाघाट
२० श्री सागरमलजी नोरतमलजी पीचा, मद्रास
२१ श्री धर्मीचदजी भागचदजी बोहरा, झूंठा

२२ श्री मोहनराजजी बालिया, अहमदाबाद
२३ श्री चेनमलजी सुराणा, मद्रास
२४ श्री गणेशमलजी धर्मीचदजी काकरिया, नागौर
२५ श्री बादलचदजी मेहता, इन्दौर
२६ श्री हरकचदजी सागरमलजी बेताला, इन्दौर
२७ श्री सुगनचन्दजी बोकडिया, इन्दौर
२८ श्री इन्दरचदजी बैद, राजनादगाव
२९ श्री रघुनाथमलजी लिखमीचदजी लोढा, चागा-टोला
३० श्री भवरलालजी मूलचदजी सुराणा मद्रास
३१ श्री सिद्धकरणजी शिखरचन्दजी बैद, चागाटोला
३२ श्री जालमचदजी रिखबचदजी बाफना, आगरा
३३ श्री भवरीमलजी चोरडिया, मद्रास
३४ श्री हीरालालजी पन्नालालजी चोपडा, अजमेर
३५ श्री घेवरचदजी पुखराज जी, गोहाटी
३६ श्री मागीलालजी चोरडिया, आगरा
३७ श्री भवरलालजी गोठी, मद्रास
३८ श्री गुणचदजी दल्लीचदजी कटारिया, वेल्लारी
३९ श्री अमरचदजी बोथरा, मद्रास
४० श्री छोगमलजी हेमराजजी लोढा, डोडीलोहारा
४१ श्री मोहनलालजी पारसमलजी पगारिया, बेंगलोर
४२ श्री जडावमलजी सुगनचदजी, मद्रास
४३ श्री पुखराजजी विजयराजजी, मद्रास
४४ श्री जबरचदजी गेलडा, मद्रास
४५ श्री सूरजमलजी सज्जनराजजी महेता, कुप्पल
४६ श्री लूणकरणजी रिखबचदजी लोढा, मद्रास

सहयोगी सदस्य

१ श्री पूनमचदजी नाहटा, जोधपुर
२, श्री अमरचदजी बालचदजी मोदी, ब्यावर
३ श्री चम्पालालजी मीठालालजी सकलेचा, जालना
४ श्री छगनीबाई विनायकिया, ब्यावर
५ श्री भवरलालजी चोपडा, ब्यावर
६ श्री रतनलालजी चतर, ब्यावर
७ श्री जवरीलालजी अमरचन्दजी कोठारी, ब्यावर
८ श्री मोहनलालजी गुलाबचन्दजी चतर, ब्यावर
९ श्री बादरमलजी पुखराजजी बट, कानपुर
१० श्री के पुखराजजी बाफना, मद्रास
११ गी पुखराजजी बोहरा, पीपलिया
१२ श्री चम्पालालजी बुधराजजी बाफणा, ब्यावर
१३ श्री नथमलजी मोहनलाल लूणिया, चण्डावल
१४ श्र. मागीलाल प्रकाशचन्दजी रुणवाल, वर
१५ श्री मोहनलालजी मगलचदजी पगारिया, रायपुर
१६ श्री भवरलालजी गौतमचन्दजी पगारिया, कुशालपुरा
१७ श्री दुलेराजजी भवरलालजी कोठारी, कुशालपुरा
१८ श्री फूलचन्दजी गौतमचन्दजी काठेड, पाली
१९ श्री रूपराजजी जोधराजजी मूथा, दिल्ली
२० श्री पन्नालालजी मोतीलालजी सुराणा, पाली
२१ श्री देवकरणजी श्रीचन्दजी डोसी, मेडतासिटी
२२ श्री माणकराजजी किशनराजजी, मेडतासिटी
२३ श्री अमृतराजजी जसवन्तराजजी मेहता, मेडतासिटी
२४ श्री बी गजराजजी बोकडिया, सलेम
२५ श्री भवरलालजी विजयराजजी काकरिया, विल्लीपुरम्
२६ श्री कनकराजजी मदनराजजी गोलिया, जोधपुर
२७ श्री हरकराजजी मेहता, जोधपुर
२८ श्री सुमेरमलजी मेडतिया, जोधपुर
२९ श्री घेवरचन्दजी पारसमलजी टाटिया, जोधपुर
३० श्री गणेशमलजी नेमीचन्दजी टाटिया, जोधपुर
३१ श्री चम्पालालजी हीरालालजी बागरेचा, जोधपुर
३२ श्री मोहनलालजी चम्पालाल गोठी, जोधपुर
३३ श्री जसराजजी जवरीलाल धारीवाल, जोधपुर
३४ श्री मूलचन्दजी पारख, जोधपुर
३५ श्री आसुमल एण्ड क०, जोधपुर
३६ श्री देवराजजी लाभचदजी मेड़तिया, जोधपुर

३७ श्री घेवरचदजी किशोरमलजी पारख, जोधपुर
३८ श्री पुखराजजी वोहरा, (जैन ट्रान्सपोर्ट क) जोधपुर
३९ श्री वच्छराजजी सुराणा, जोधपुर
४० श्री ताराचदजी केवलचदजी कर्णावट, जोधपुर
४१ श्री मिश्रीलालजी लिखमीचदजी सॉड, जोधपुर
४२ श्री उत्तमचदजी मागीलालजी, जोधपुर
४३ श्री मागीलालजी रेखचदजी पारख, जोधपुर
४४ श्री उदयराजजी पुखराजजी सचेती, जोधपुर
४५ श्री सरदारमल एन्ड क , जोधपुर
४६ श्री रायचदजी मोहनलालजी, जोधपुर
४७ श्री नेमीचदजी डाकलिया, जोधपुर
४८ श्री घेवरचदजी रूपराजजी, जोधपुर
४९ श्री मुन्नीलालजी, मूलचदजी, पुखराजजी गुलेच्छा, जोधपुर
५० श्री सुन्दरवाई गोठी, महामन्दिर
५१. श्री मागीलालजी चोरडिया, कुचेरा
५२ श्री पुखराजजी लोढा, महामदिर
५३. श्री इन्द्रचन्दजी मुकन्दचन्दजी, इन्दौर
५४ श्री भवरलालजी वाफणा, इन्दौर
५५ श्री जेठमलजी मोदी, इन्दौर
५६ श्री भीकचदजी गणेशमलजी चौधरी, धूलिया
५७ श्री सुगनचदजी सचेती, राजनादगाँव
५८ श्री विजयलालजी प्रेमचदजी गोलेच्छा, राजनादगॉव
५९ श्री घीसूलालजी लालचदजी पारख, दुर्ग
६० श्री आसकरणजी जसराज जी पारख, दुर्ग
६१ श्री ओखचदजी हेमराज जी सोनी, दुर्ग
६२ श्री भवरलालजी मूथा, जयपुर
६३ श्री सरदारमलजी सुराणा, भिलाई
६४ श्री भवरलालजी डू गरमलजी काकरिया, भिलाई न ३
६५ श्री गणेशमलजी हेमराजजी सोनी, भिलाई न ३
६६ श्री रावतमलजी छाजेड, भिलाई न. ३
६७ श्री हीरालालजी हस्तीमलजी, भिलाई न. ३
६८ श्री पुखराजजी छल्लाणी, करणगुलि
६९ श्री प्रेमराजजी मिट्ठालालजी कामदार, चावडिया
७० श्री भवरलालजी माणकचदजी सुराणा, मद्रास
७१ श्री भवरलालजी नवरतनमलजी साखला, मेट्टूपालियम
७२ श्री सूरजकरणजी सुराणा, लाम्वा
७३ श्री रतनलालजी लखपतराजजी, जोधपुर
७४ श्री हरकचदजी जुगराजजी वाफना, वैंगलोर
७५ श्री लालचदजी मोतीलालजी गादिया, वैगलोर
७६ श्री सम्पतराजजी कटारिया, जोधपुर
७७ श्री पुखराजजी कटारिया, जोधपुर
७८ श्री चिम्मनसिंहजी मोहनसिंहजी लोढा, व्यावर
७९ श्री अखेचदजी लूणकरणजी भण्डारी, कलकत्ता
८० श्री बालचदजी थानमलजी सुरट (कुचेरा), कलकत्ता
८१ श्री चन्दनमलजी प्रेमचदजी मोदी, भिलाई
८२ श्री तिलोकचदजी प्रेमप्रकाशजी, अजमेर
८३ श्री सोहनलालजी सोजतिया, थावला
८४ श्री जीवराजजी भवरलालजी, चोरडिया भैरुदा
८५ श्री माँगीलालजी मदनलालजी, चोरडिया भैरुदा
८६ श्री जीवराजजी पारसमलजी कोठारी, मेडता सिटी
८७ श्री भीवराजजी वागमार, कुचेरा
८८ श्री गगारामजी इन्दरचदजी बोहरा, कुचेरा
८९ श्री फकीरचदजी कमलचदजी श्रीश्रीमाल, कुचेरा
९० श्री सोहनलालजी लूणकरणजी सुराणा, कुचेरा
९१ श्री प्रकाशचदजी जैन, नागौर (भरतपुर)
९२ श्री भवरलालजी रिखवचदजी नाहटा, नागौर
९३ श्री गूदडमलजी चम्पालालजी, गोठन
९४ श्री पारसमलजी महावीरचदजी वाफना, गोठन
९५ श्री घीसूलालजी, पारसमलजी, जवरीलालजी कोठारी, गोठन
९६ श्री मोहनलालजी धारीवाल, पाली
९७. श्री कानमलजी कोठारी, दादिया

९८ श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रावकसघ, दल्ली-राजहरा
९९ श्री जवरीलालजी शातिलालजी सुराणा, बुलारम
१०० श्री फतेराजजी नेमीचदजी कर्णावट, कलकत्ता
१०१ श्री रिद्धकरणजी रावतमलजी भुरट, गोहाटी
१०२ श्री जुगराजजी बरमेचा, मद्रास
१०३ श्री कुशालचदजी रिखबचदजी सुराणा, बुलारम
१०४ श्री माणकचदजी रतनलालजी मुणोत, नागौर
१०५ श्री सम्पतराजजी चोरडिया, मद्रास
१०६ श्री कुन्दनमलजी पारसमलजी भण्डारी, बैंगलोर
१०७ श्री रामप्रसन्न ज्ञान प्रसार केन्द्र, चन्द्रपुर
१०८. श्री तेजराज जी कोठारी, मागलियावास
१०९ श्री अमरचदजी चम्पालालजी छाजेड, पादु बडी
११० श्री माँगीलालजी शातिलालजी रुणवाल, हरसोलाव
१११ श्री कमलाकवर ललवाणी धर्मपत्नी श्री स्व. पारसमलजी ललवाणी, गोठन
११२ श्री लक्ष्मीचदजी अशोककुमारजी श्रीश्रीमाल, कुचेरा
११३ श्री भवरलालजी मागीलालजी वेताला, डेह
११४ श्री कचनदेवी व निर्मलादेवी, मद्रास
११५ श्री पुखराजजी नाहरमलजी ललवाणी, मद्रास
११६ श्री चादमलजी धनराजजी मोदी, अजमेर
११७ श्री माँगीलालजी उत्तमचदजी बाफणा, बैंगलोर
११८ श्री इन्दरचदजी जुगराजजी बाफणा, बैंगलोर
११९ श्री चम्पालालजी माणकचदजी सिघी, कुचेरा
१२० श्री सचालालजी बाफना, औरगाबाद
१२१ श्री भूरमलजी दुल्लीचदजी बोकडिया, मेडता सिटी
१२२ श्री पुखराजजी किशनलालजी तातेड, सिकन्दराबाद
१२३ श्रीमती रामकु वर धर्मपत्नी श्रीचादमलजी लोढा, बम्बई
१२४ श्री भीकमचन्दजी माणकचन्दजी खाबिया, (कुडालोर), मद्रास
१२५ श्री जीतमलजी भडारी, कलकत्ता
१२६ श्री सम्पतराजजी सुराणा, मनमाड
१२७ श्री टी पारसमलजी चोरडिया, मद्रास
१२७ श्री चम्पालालजी भण्डारी, कलकत्ता
१२८. श्री मिश्रीलालजी सज्जनलालजी कटारिया, सिकन्दराबाद
१२९ श्री पुखराजजी पारसमलजी ललवाणी, बिलाडा
१३० श्री वर्द्धमान स्था जैन श्रावक सघ बगडीनगर